ब्रह्मचर्य

कब, क्यों और कैसे ?

श्री हित प्रेमानंद गोविंद शरण जी महाराज



Radhe Radhe
Hare KRISHNA

ब्रह्मचर्य

कब, क्यों और कैसे ?

श्री हित प्रेमानंद गोविंद शरण जी महाराज

प्रकाशक

श्रीहित राधा केलि कुंज ट्रस्ट

वाराहघाट, परिक्रमा मार्ग

वृन्दावन-281121, जिला-मथुरा (उ.प्र.)

Website: www.radhakelikunj.com, www.bhajanmarg.com

पुस्तक का नाम :- ब्रह्मचर्य : कब, क्यों और कैसे ?

आईएसबीएन : 978-81-980039-1-1

प्रथम संस्करण : 25,000 प्रतियां

शरद पूर्णिमा

7 अक्टूबर 2025

श्री हित राधा केलि कुंज ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित

वाराह घाट, परिक्रमा मार्ग वृन्दावन - 281121, मथुरा (यूपी)

Website: www.radhakelikunj.com, www.bhajanmarg.com

प्रस्तावना

'ब्रह्मचर्य' भारतीय वांग्मय का प्रसिद्ध आश्रम है। वैदिक काल से प्रचलित संस्कृत शब्द "ब्रह्मचर्य" का अर्थ है "ब्रह्म (ईश्वर) में आचरण करना।" दूसरे अर्थ में सभी इंद्रियों को शारीरिक, मानसिक और वाचिक रूप से संयमित करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि किसी भी व्यक्ति को ब्रह्मचर्य कब, क्यों और कैसे धारण करना चाहिए?

ब्रह्मचर्य, मानव जीवन का मूल स्तंभ है। चाहे वह व्यक्ति गृहस्थ हो या संन्यासी, लौकिक उन्नति की इच्छा रखता हो या आत्मिक जागरण की — ब्रह्मचर्य उसके लिए अनिवार्य है। इसके बिना न तो पूर्ण स्वास्थ्य संभव है, न मन की स्थिरता, और न ही आत्म-साक्षात्कार या भगवत् प्राप्ति।

आज का युग भौतिकवाद और अनियंत्रित जीवन शैली से ग्रस्त है। ऐसे समय में यह पुस्तक "ब्रह्मचर्य :- कब, क्यों और कैसे?" विद्यार्थियों, युवाओं, गृहस्थों, महिलाओं व विरक्तों — सभी के लिए एक सार्थक दिशा और प्रेरणा प्रदान करती है। यह पुस्तक न केवल ब्रह्मचर्य के शास्त्रीय सिद्धांतों को प्रस्तुत करती है, अपितु उन युवाओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी है जो दुराचार, हस्तमैथुन, स्वप्नदोष जैसी मानसिक एवं शारीरिक दुर्बलताओं से जूझ रहे हैं।

यह पुस्तक पूज्य महाराजश्री के सत्संग, एकांतिक वार्तालाप, तथा शास्त्रों व महापुरुषों के वचनों के सार से संकलित की गई है। पूज्य महाराजश्री से पूछे गए वास्तविक प्रश्नों और उनके उत्तरों के माध्यम से, यह पुस्तक समस्याग्रस्त लोगों को व्यावहारिक समाधान और आंतरिक बल प्रदान करने का कार्य करती है। यह एक प्रकाशदीप के समान है — जो शुद्ध जीवन, संयम, पुरुषार्थ और आत्मोत्कर्ष के मार्ग को आलोकित करता है।

प्रथम खण्ड — ब्रह्मचर्य की गौरवशाली महिमा और शास्त्रों में वर्णित सिद्धांतों को उजागर करता है— कि ब्रह्मचर्य को कब, क्यों और कैसे धारण करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल यौन संयम ही नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक जीवनशैली है —जिसमें इन्द्रिय-निग्रह, मानसिक शुद्धता, विचारों में स्थिरता और आत्मनियंत्रण का समावेश होता है। यह संयम, संतुलन और समत्व का नाम है। शास्त्रों में ब्रह्मचर्य को महान तपस्या के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वेद, उपनिषद और स्मृतियों में इसे आत्म-साक्षात्कार की अनिवार्य शर्त माना गया है। "**ब्रह्मचर्य ही जीवन है, और वीर्य-नाश ही मृत्यु।**" यह वाक्य केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और वैज्ञानिक सत्य को दर्शाता है — कि जहाँ ब्रह्मचर्य है, वहाँ ओज, तेज, मेधा और आत्मबल है; और जहाँ इसका लोप है, वहाँ दुर्बलता, भ्रम और पतन है। इसलिए ब्रह्मचर्य न केवल जीवन की उन्नति का मार्ग है, बल्कि यह स्वयं जीवन का सार है।

द्वितीय खण्ड — में ब्रह्मचर्य धारण करने के उपाय व दिनचर्या बताई गयी हैं, इसमें बताया गया है कि कब से हम ब्रह्मचर्य धारण कर सकते हैं, और कैसे उसको पुष्ट कर सकते हैं। गृहस्थ या ब्रह्मचारी, जो भगवत् मार्ग का पथिक है वह किस प्रकार अपने दैनिक जीवन को संयमित, अनुशासित और सात्त्विक बनाए, ताकि वह ब्रह्मचर्य की साधना में स्थिर रह सके। दिनचर्या, आहार-विहार, विचारों की शुद्धता, संगति का चयन, और योग-ध्यान-स्वाध्याय जैसे अंगों के माध्यम से ब्रह्मचर्य को कैसे पुष्ट किया जा सकता है — इसका व्यवस्थित निर्देश इस खण्ड में वर्णित है।

तृतीय खण्ड —में कामवेग की प्रबलता का प्रभाव हर क्षेत्र के प्राणियों में पाया गया है। चाहे वह बालक हो या युवा, पुरुष हो या स्त्री सभी इससे प्रभावित हैं। साथ में यह भी बताया है कि कोई भी बालक-बालिका, स्त्री-पुरुष, गृहस्थ-विरक्त सब जहां हैं वहीं रहकर ब्रह्मचर्य का पालन कर अपनी लौकिक और पारलौकिक उन्नति कर सकते हैं।

चतुर्थ खण्ड — में पूज्य सद्गुरुदेव श्री हित प्रेमानंद गोविंद शरण जी महाराज से साधकों व श्रद्धालुओं द्वारा ब्रह्मचर्य के विषय में पूछे गए महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर संकलित किए गए हैं। ये प्रशन केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि आज के समाज

में व्याप्त व्यापक समस्याओं के प्रतिबिंब हैं — विशेषतः ब्रह्मचर्य के संदर्भ में युवाओं की उलझन, भ्रांतियां और जिज्ञासाएं।

ब्रह्मचर्य को लेकर समाज में अनेक भ्रांतियां फैली हुई हैं। युवा पीढ़ी इसके वास्तविक अर्थ, उद्देश्य और महत्ता से अनभिज्ञ है। प्राचीन काल की गुरुकुल परंपरा में जहाँ वेद, शास्त्र और व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ ब्रह्मचर्य की विधिवत शिक्षा दी जाती थी, वहीं आज की टेक्नोलॉजी-केंद्रित शिक्षा प्रणाली ने आध्यात्मिक ज्ञान को पीछे धकेल दिया है। 21वीं सदी का युवा तकनीकी रूप से दक्ष होकर भी आत्मिक रूप से शून्य होता जा रहा है।

इस स्थिति में यह पुस्तक — **"ब्रह्मचर्य : कब, क्यों और कैसे?"** — आध्यात्मिक पुनर्जागरण की ओर एक प्रकाश-स्तम्भ है। यह पुस्तक न केवल शास्त्रसम्मत मार्गदर्शन देती है, बल्कि व्यावहारिक समाधानों द्वारा युवाओं को आत्म-नियंत्रण और आत्म-विकास की राह भी दिखाती है।

श्री हित राधा केलि कुंज ट्रस्ट द्वारा '**सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय**' अर्थात् **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः** की भावना को दृष्टिगत रखते हुए इस पुस्तक में पूज्य सद्गुरुदेव श्री हित प्रेमानंद गोविंद शरण जी महाराज के उपदेशों से, साधकों के साथ उनके एकांतिक वार्तालाप से और ब्रह्मचर्य विषय के अन्य सिद्धांतों एवं महापुरुषों द्वारा मिले लिखित और वाचिक उपदेशों को संकलित कर लिपिबद्ध किया है, ताकि आज की युवा पीढ़ी इसे पढ़कर और ब्रह्मचर्य को धारण कर अपने जीवन को एक नई दिशा दे और इसी जन्म में भजन मार्ग पर प्रशस्त हो आत्म साक्षात्कार या भगवत् प्राप्ति कर सके।

*****

विषय सूची

प्रथम खण्ड :
ब्रह्मचर्य कब और क्यों ?
और उसके नाश से सर्वनाश कैसे ?

द्वितीय खण्ड :
ब्रह्मचर्य रहने के उपाय
कब, क्यों और कैसे ?

तृतीय खण्ड :
कामवेग की प्रबलता
जहाँ हो, जैसे हो, वैसे ब्रह्मचर्य!

चतुर्थ खण्ड :
प्रश्नोत्तरी
साधकों द्वारा ब्रह्मचर्य विषयक पूछे गए महत्वपूर्ण प्रश्नों पर श्रीहित प्रेमानंद गोविंद शरण जी महाराज के उत्तर

प्रथम खण्ड

ब्रह्मचर्य कब और क्यों ? और उसके नाश से सर्वनाश कैसे ?

ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं, ब्रह्मचर्यं परं बलम्।
ब्रह्मचर्यं परं ब्रह्म, ब्रह्मचर्ये प्रतिष्ठितम्।।
— भगवान् धन्वन्तरि

ब्रह्मचर्य का अर्थ और महिमा

ब्रह्मचर्य क्या है? ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ क्या है? ब्रह्मचर्य क्यों धारण करना चाहिए? ब्रह्मचर्य रक्षण से क्या लाभ होगा? ऐसे अनेकों प्रश्न हैं जिनके उत्तर प्रत्येक मनुष्य समझना चाहता है। ब्रह्मचर्य को सही ढंग से समझने के लिए सब से पहले इसका शास्त्रीय सिद्धांत समझना अनिवार्य है।

ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों से बना है— '**ब्रह्म**' और '**चर्य**'। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ है ईश्वर, वेद, ज्ञान, वीर्य और 'चर्य' शब्द से अर्थ है चिंतन, उपार्जन, अध्ययन, रक्षण अर्थात् ईश्वर का चिंतन, वेदों का अध्ययन, ज्ञान का उपार्जन और वीर्य रक्षण करना।

सामान्यत: आज के समय में ब्रह्मचर्य से केवल वीर्य रक्षा का अर्थ ही लिया जाता है परंतु पूर्ण ब्रह्मचर्य तो यह है कि "**भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः**" (यजुर्वेद २५/२१)

अर्थात् कानों से सदा भद्र (उत्तम) श्रवण करें, आँखों से सदा भद्र देखें, जीभ से पवित्र पदार्थों का ही सेवन करें, नाक से दिव्य गंध लें, हाथों से सत्कर्म करें, पैरों से भगवान के मंदिरों एवं तीर्थों में जाएं, मन से विषयों का चिंतन भी न करें। तात्पर्य यह है कि इंद्रिय मात्र का संयम ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है।

महर्षि व्यास ने योगदर्शन का भाष्य करते हुए कहा है -

"ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।"

यह अत्यंत दु:ख का विषय है कि जिस भारतवर्ष में कभी ब्रह्मचर्य ही जीवन की रीढ़ हुआ करता था, जहाँ ब्रह्मचारियों का गौरवपूर्ण स्थान था — आज वही भारत ब्रह्मचर्य के अभाव से जर्जर होता जा रहा है। जिस भूमि ने कभी वीर्य-शक्ति, संयम और आत्मबल के बल पर ऋषियों, मुनियों और महान आत्माओं को जन्म दिया, आज वही भूमि वीर्यहीनता और सत्वहीनता के कारण मानसिक, नैतिक और आत्मिक पतन की ओर बढ़ रही है।

आज देश के लाखों बालक-बालिकाएँ आधुनिकता और विकृत मनोरंजन के प्रभाव में पड़कर किशोरावस्था में ही आत्मसंयम खो बैठते हैं। गलत आदतों, असंयमित आचरण और अशुद्ध विचारों के कारण वे युवावस्था में पहुँचने से पहले ही अपनी अमूल्य वीर्यशक्ति को नष्ट कर बैठते हैं। परिणामस्वरूप वे बुद्धि, बल, तेज, ओज और उत्साह से हीन हो जाते हैं, और जीवन की दौड़ में पिछड़ने लगते हैं। यह स्थिति न केवल व्यक्तिगत पतन है, बल्कि राष्ट्रीय ऊर्जा, प्रतिभा और भविष्य के लिए भी एक गंभीर संकट है। ब्रह्मचर्य का पुनर्जागरण ही इस संकट से उबरने का मार्ग है — यही शारीरिक, मानसिक और आत्मिक पुनरुत्थान की कुंजी है।

संयम, नियम, साधना, सुख और मनुष्यत्व का व्यापक क्षय हो रहा है। देश के युवाओं की सुरक्षा केवल ब्रह्मचर्य से ही संभव है। प्रत्येक व्यक्ति में आत्मिक, मानसिक और शारीरिक तीन प्रमुख शक्तियाँ विद्यमान होती हैं, जिनका संरक्षण ईश्वर, वेद और वीर्य की समुचित रक्षा से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।

ईश्वर का संबंध आत्मिक शक्ति से, वेद ज्ञान का मानसिक शक्ति से और वीर्य रक्षण का संबंध शारीरिक शक्ति से है। ईश्वर शक्ति के बिना, आत्मिक शक्ति नहीं बढ़ सकती, वेद ज्ञान के बिना मानसिक शक्ति नहीं बढ़ सकती और वीर्य रक्षण के बिना शारीरिक शक्ति स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए *'आत्मिक शक्ति'*, *'मानसिक तेज'* और *'शारीरिक वीर्य'* को सदा सुरक्षित रखना, कभी भी भोगों में गिरा कर उसका क्षय न होने देना, यही ब्रह्मचर्य का कठिन तप है।

"न किन्निदभ्दयाप्रोति, ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।" (सूक्ति)

अर्थात्, ब्रह्मचर्य-व्रत में स्थित रहने से तनिक भी भय नहीं रहता।

धर्मशास्त्रों के अनुसार, मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चारों आश्रमों का उद्देश्य जीवन के विभिन्न चरणों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति को संतुलित रूप से साधना है।

इनमें प्रथम आश्रम 'ब्रह्मचर्य आश्रम' कहलाता है। यह जीवन का प्रारंभिक चरण होता है, जो विद्या-अधिगम, आत्मानुशासन और धर्म के बीज बोने का समय होता है। इस काल में व्यक्ति गुरुकुल में रहकर गुरु से वेद, शास्त्र, आचार और संयम का ज्ञान प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य आश्रम का मुख्य उद्देश्य है — जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति में एक मजबूत नैतिक और बौद्धिक आधार तैयार करना।

इसके बाद गृहस्थाश्रम आता है, जो समाज में कर्तव्यों का पालन करते हुए धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि का समय होता है। फिर वानप्रस्थ आश्रम, जिसमें सांसारिक जिम्मेदारियों से विमुख होकर व्यक्ति मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। अंततः संन्यास आश्रम में पूर्ण वैराग्य के साथ केवल मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का ध्येय रह जाता है।

बह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है अर्थात् ब्रह्मचर्य ही जीवन का मूल है, और वीर्य का नाश ही वास्तविक मृत्यु है। ब्रह्मचर्य न केवल इस लोक और परलोक के समस्त सुखों का आधार है, अपितु यह चारों पुरुषार्थों — धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — का भी मूल है। यही ब्रह्मचर्य मुक्ति का द्वार खोलने वाला महान साधन है। वीर्य मनुष्य के शरीर और चेतना की अत्यंत बलशाली, दुर्लभ और अमूल्य संपदा है। इसी दिव्य शक्ति के संरक्षण से मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है, और इसके नाश से वह अधःपतन की ओर बढ़ता है। वीर्य की रक्षा से ओज, तेज, धैर्य, बुद्धि, स्मृति और आत्मबल की वृद्धि होती है।

जिस पुरुष ने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया, वह बाह्य रूप से चाहे जितना सफल दिखाई दे, परंतु आत्मिक और चारित्रिक दृष्टि से कभी भी उच्च पद को प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य के बिना न तो आत्मसाक्षात्कार संभव है, न ही स्थायी शांति और मोक्ष की प्राप्ति। इसलिए कहा गया है : ब्रह्मचर्य ही जीवन की ऊँचाइयों की सीढ़ी है, और यही सच्चे अर्थों में आत्मविकास का प्रथम चरण है।

अतः निःसंदेह ब्रह्मचर्य ही हमारी समस्त विद्या, वैभव, सौभाग्य और आध्यात्मिक प्रकाश का मूल कारण है। यही वह शक्ति है जो हमें श्रेष्ठता, आत्मस्वातंत्र्य और पूर्ण उन्नति की ओर अग्रसर करती है।

ब्रह्मचर्य के दो प्रकार बताए गए हैं — '**नैष्ठिक**' और '**उपकुर्वाण**'। जो व्यक्ति जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह '**नैष्ठिक ब्रह्मचारी**' कहलाता है। ऐसा ब्रह्मचारी आजीवन अविवाहित रहकर आत्मसंयम, साधना और ज्ञान में रत रहता है। उसका जीवन पूर्णतः त्याग, तपस्या और आत्मनियंत्रण पर आधारित होता है। शास्त्रों में ऐसे ब्रह्मचारी को देवतुल्य, पूज्य और उच्चकोटि का सिद्ध महापुरुष कहा गया है।

वहीं, जो ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहकर शिक्षा और विद्या प्राप्ति के काल में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, और विद्या समाप्त होने के पश्चात गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, उसे '**उपकुर्वाण ब्रह्मचारी**' कहा जाता है। यह ब्रह्मचर्य सीमित काल के लिए होता है, किंतु इस अवधि में भी उसे पूर्ण संयम और आचार का पालन करना आवश्यक होता है।

दोनों ही प्रकार के ब्रह्मचारी, अनुशासन, संयम और चरित्रबल के प्रतीक होते हैं, किंतु नैष्ठिक ब्रह्मचारी का स्थान विशेष रूप से उच्च माना गया है, क्योंकि वह जीवन के परम लक्ष्यों — आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष — की ओर निरंतर अग्रसर रहता है।

छान्दोग्योपनिषद् में ब्रह्मचर्य के महत्व को विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है, जहाँ इसे केवल एक नियम नहीं, बल्कि आत्मोन्नति की महान साधना के रूप में वर्णित किया गया है। इस उपनिषद् में ब्रह्मचर्य के तीन स्तरों का उल्लेख मिलता है — **कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम।** कनिष्ठ ब्रह्मचारी वह होता है जो आंशिक रूप से संयम का पालन करता है। कनिष्ठ ब्रह्मचर्य में ब्रह्मचारी 24 वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रियत्व धारण करता है, और इतने काल तक वेदों का अध्ययन करता है। 'कनिष्ठ ब्रह्मचर्य' के सिद्ध होने पर ब्रह्मचारी को '**वसु-ब्रह्मचारी**' कहा जाता है। 28 वर्ष के ब्रह्मचर्य से वह परम ऐश्वर्यशील हो जाता है।

मध्यम ब्रह्मचारी, वह है जो एक निर्धारित काल तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है यानि 44 वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है। 'मध्यम ब्रह्मचारी' के सिद्ध होने पर इसको '**रुद्र ब्रह्मचारी**' भी कहा जाता है। इससे तात्पर्य है कि जो 44 वर्ष के ब्रह्मचर्य से रह रहा है, वह अत्यंत पराक्रम प्राप्त कर लेता है।

उत्तम ब्रह्मचारी वह होता है जो जीवनभर पूर्ण निष्ठा और संकल्प के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करता है। ऐसा ब्रह्मचारी आत्मसंयम, तप, विवेक और साधना के मार्ग पर अडिग रहता है। उत्तम ब्रह्मचारी 48 वर्षों तक या आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर के नियमपूर्वक साधना करता है। उसके प्राण आदित्य रूप होकर शरीर में ज्ञान को प्रकाशित कर देते हैं। और 'उत्तम ब्रह्मचारी' के सिद्ध हो जाने पर उसे **'आदित्य ब्रह्मचारी'** कहा जाता है। वह 48 वर्ष के ब्रह्मचर्य से उत्कट तेजस्वी हो जाता है।

अतः वसु ब्रह्मचारी को ऐश्वर्य, रुद्र ब्रह्मचारी को ऐश्वर्य व पराक्रम और आदित्य ब्रह्मचारी को ऐश्वर्य, पराक्रम तथा तेज़ तीनों प्राप्त होते हैं। वसु ब्रह्मचारी के मुख पर इन्द्र की सी कान्ति, रुद्र ब्रह्मचारी के मुख पर महादेव की सी गुरुता और आदित्य ब्रह्मचारी के मुख पर सूर्य की सी ज्योति होती है।

"ब्रह्मचर्य तपोत्तमम्।" ब्रह्मचर्य ही परम तप है।

(महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 245, श्लोक 7)

शरीर, मन और वचन से सब अवस्थाओं में, सर्वदा और सर्वत्र मैथुन (सम्भोग) त्याग के नाम को ब्रह्मचर्य कहा जाता है।

त्रिविध ब्रह्मचर्य -

कायेन मनसा वाचा, सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन-त्यागो, ब्रह्मचर्य प्रचक्षते।।

(महामुनि याज्ञवल्क्य)

महामुनि याज्ञवल्क्य के अनुसार, ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है — कायिक, मानसिक और वाचिक।

- **कायिक ब्रह्मचर्य** वह है जिसमें व्यक्ति अपने शरीर से पूर्ण संयम का पालन करता है — इंद्रियों का दमन, शारीरिक वासनाओं पर नियंत्रण और शुद्ध आचरण इसका मुख्य अंग हैं।

- **मानसिक ब्रह्मचर्य** में मन को कामनाओं, कल्पनाओं और विकारों से मुक्त रखा जाता है। यह आंतरिक पवित्रता और विचारों की निर्मलता पर आधारित होता है।
- **वाचिक ब्रह्मचर्य** का अर्थ है वाणी में संयम — अश्लील, उन्मत्त, अथवा कामोत्पादक भाषण से दूर रहना, तथा वाणी को सदा सत्य, प्रिय और हितकारी बनाना।

जो व्यक्ति इन तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य का एक साथ पालन करता है, वही वास्तव में 'सम्पूर्ण ब्रह्मचारी' कहलाता है। ऐसा ब्रह्मचारी न केवल बाह्य रूप से संयमी होता है, बल्कि अंतरतम स्तर पर भी पूर्णतः पवित्र और साधना में रत होता है। याज्ञवल्क्य मुनि के मत में यही ब्रह्मचर्य का सर्वोच्च आदर्श है — जो जीवन को तेज, तप और तत्त्वज्ञान की ओर ले जाता है।

बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो शारीरिक (कायिक) ब्रह्मचर्य का पालन तो कर लेते हैं, परंतु मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का पालन करना उनके लिए अत्यंत कठिन हो जाता है। कारण यह है कि कायिक ब्रह्मचर्य का स्वरूप अपेक्षाकृत स्थूल (सामान्य रूप से प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला) होता है, और उसका पालन बाह्य रूप से संभव प्रतीत होता है। जबकि मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का स्वरूप सूक्ष्म होता है, जिसका अनुशासन अंतरतम स्तर पर किया जाना आवश्यक है।

शास्त्रों में 'मानसिक ब्रह्मचर्य' को उत्तम, 'वाचिक ब्रह्मचर्य' को मध्यम और 'कायिक ब्रह्मचर्य' को अधम (निम्नतम) कहा गया है। इसका कारण यह है कि ब्रह्मचर्य का वास्तविक मूल मन में स्थित होता है। यदि मन वासनाओं से विक्षिप्त है, तो केवल शारीरिक संयम से आत्मिक शुद्धि संभव नहीं है।

मन, वचन और कर्म — इन तीनों का आपस में अत्यंत घनिष्ठ संबंध है।

मन में जो भाव उत्पन्न होते हैं, वही वाणी के माध्यम से व्यक्त होते हैं और अंततः कर्म के रूप में प्रकट होते हैं। अतः यदि मन वश में नहीं है, तो वाणी और शरीर का संयम भी अधिक दिनों तक टिक नहीं सकता। सच्चा ब्रह्मचारी वही है,

जिसके मन, वचन और शरीर — तीनों पूर्णरूपेण संयमित, पवित्र और साधनामय हों।

ब्रह्मचर्य का मूल प्राण तत्व है — *वीर्य*।

वीर्य ही जीवन की सर्वोच्च शक्ति है, यही आत्मबल, ओज, तेज और चेतना का स्रोत है। इससे बढ़कर कोई शक्ति नहीं मानी गई। यदि शरीर से वीर्य का क्षय हो जाए, तो यह शरीर केवल मिट्टी का ढेर मात्र रह जाता है — चेतना और शक्ति से रहित।

जैसे बिना तेल के दीपक बुझ जाता है, वैसे ही वीर्यविहीन शरीर शक्तिहीन, रोगग्रस्त और निस्तेज हो जाता है। वीर्य ही वह दिव्य तत्त्व है, जिसके बल पर शरीर स्थिर रहता है, मन नियंत्रित होता है और आत्मा उच्चतर साधना की ओर अग्रसर होती है।

इसलिए शास्त्रों में कहा गया है कि वीर्य की रक्षा ही ब्रह्मचर्य है, और इसकी रक्षा ही जीवन की रक्षा है। जो अपने वीर्य की रक्षा करता है, वही आत्मरक्षा, आत्मविकास और आत्मसाक्षात्कार की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

ब्रह्मचर्य की महिमाः-

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः ।।

भगवान शिव कहते हैं - "ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य धारणा यही उत्कृष्ट तप है, इससे बढ़ कर तपस्या तीनों लोकों में दूसरी कोई नहीं हो सकती। अखण्ड वीर्य धारण करने वाला पुरुष इस लोक में मनुष्य रूप में प्रत्यक्ष देवता ही है।"

ब्रह्मचर्य की महिमा इतनी महान है कि उसका पूर्ण वर्णन शब्दों में कर पाना संभव नहीं है। इसकी महत्ता को जितना कहा जाए, उतना कम है। यह एक ऐसा दिव्य व्रत है, जिसकी गूंज वेदों, उपनिषदों और महान ऋषियों के जीवन में स्पष्ट

सुनाई देती है। परन्तु दुर्भाग्यवश, आज का समाज इस पवित्र व्रत को लगभग विस्मृत कर चुका है।

ब्रह्मचर्यमय जीवन ही वास्तविक पुरुषार्थमय जीवन है।

यह न केवल आत्मविकास की दिशा में प्रथम कदम है, बल्कि जीवन की लौकिक और पारलौकिक उन्नति का मूल आधार भी है। ब्रह्मचर्य के बिना न नैतिकता की स्थापना संभव है, न आत्मशुद्धि और न ही मोक्ष की प्राप्ति। ब्रह्मचर्य ही वह दुर्लभ आंतरिक शक्ति है, जो मनुष्य को षड अंत:विकारों - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर — जैसे भीतरी शत्रुओं से विजयी बनाती है। यह एक ऐसा रक्षा-कवच है जो साधक को हर प्रकार के मानसिक और आत्मिक पतन से बचाता है।

यह व्रत पारलौकिक आनन्द के द्वार खोलने वाला है, और ऐसा अक्षय, अमृतमय आनन्द प्रदान करता है, जिसकी तुलना सांसारिक सुखों से नहीं की जा सकती। वास्तव में, ब्रह्मचर्य का पालन वही कर सकता है जो आत्मबोध, आत्मनियंत्रण और आत्मोत्थान के पथ पर अग्रसर होना चाहता है।

हनुमान जी महाराज इतने बड़े महावीर कैसे बने? उन्होंने अपने इस ब्रह्मचर्य रूपी शस्त्र के द्वारा ही अद्वितीय बल तथा शौर्य प्राप्त किया। उनका अपार बल, साहस और आत्मविश्वास ब्रह्मचर्य की दृढ़ साधना का ही फल था।

पांडवों तथा कौरवों के पितामह भीष्म ने ब्रह्मचर्य के पालन की प्रतिज्ञा से अपने पिता से इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त करके मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि ब्रह्मचर्य के महत्व से भली-भांति परिचित थे। वे जानते थे कि यही एकमात्र ऐसा साधन है, जो व्यक्ति को लौकिक और पारलौकिक दोनों ही क्षेत्रों में महान बना सकता है। इसी कारण उन्होंने सदा ब्रह्मचर्य की महिमा का स्तुति-गान किया और इसे जीवन की सर्वोच्च तपस्या माना।

शास्त्रों में "ब्रह्मचारी" शब्द का प्राचीनतम उल्लेख —

"**ब्रह्मचारी**" शब्द का सबसे पहला प्रयोग *ऋग्वेद* में मिलता है। वहाँ कहा गया है —

**"ब्रह्मचारी चरति वेदिदूषः स देवानां भवत्येकमग्निः।
तेन जायामन्वविन्ददबृहस्पतिः सोमेन नीतां जुहवं न देवाः॥"**
(ऋग्वेद – 10.109.5)

इस मंत्र में *ब्रह्मचारी* को वह बताया गया है जो वेदों के अभ्यास में संलग्न रहता है, और जिसकी तपश्चर्या देवताओं तक को प्रभावित करती है।

अथर्ववेद में "ब्रह्मचर्य आश्रम" की महिमा बताते हुए कहा गया है कि —

ब्रह्मचर्य के बल से ही देवताओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी, और यही ब्रह्मचर्य–शक्ति पूरे विश्व की रक्षा करती है।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।"
(अथर्ववेद – 11.15.19)

मनुस्मृति में ब्रह्मचर्य के नियमों को विस्तार से बताया गया है। वहाँ कहा गया है कि —

ब्रह्मचारी को वेदाध्ययन की अवधि तक गुरु के समीप रहकर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

**षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा।।**
(मनुस्मृति – 3.1)

अर्थात्, कोई ब्रह्मचारी वेदों के अध्ययन के लिए गुरु के पास 36, 18 या 9 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रह सकता है।

शास्त्रों में यह भी कहा गया है —

"ब्रह्मचर्याश्रयो ज्येष्ठः, श्रेष्ठश्चैव तथाविधम्।"

अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम को श्रेष्ठ और आदरणीय माना गया है, क्योंकि यही तप, ज्ञान और आत्मसंयम का मूल आधार है।

ब्रह्मचर्य धारण करने के लाभ —

1) आरोग्य जीवन —

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।"

(संस्कृत श्लोक)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम साधन आरोग्य (स्वस्थ शरीर और मन) ही है। अगर शरीर स्वस्थ नहीं है तो न धर्म का पालन संभव है, न धन कमाया जा सकता है, न सुख भोगे जा सकते हैं, और न ही मोक्ष की ओर बढ़ा जा सकता है। इसलिए कहा गया है कि स्वास्थ्य ही जीवन के सभी लक्ष्यों की सर्वोत्तम नींव है। ब्रह्मचर्य से ही प्रचुर धन प्राप्त किया जा सकता है। व्यभिचारी पुरुष का भौतिक धन नष्ट हो सकता है किन्तु ब्रह्मचारी अपनी दृढ़ नियम-निष्ठा से जो अलौकिक धन इकट्ठा करता है, वह कभी समाप्त नहीं होता।

समदोषः समामिश्र समधातु मलः क्रिया।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थइतिअभिधीयते।।

(महर्षि सुश्रुत, सुश्रुत संहिता)

जिस मनुष्य के तीनों दोष (वात, कफ और पित्त), अग्नि (जठराग्नि), धातु (रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और वीर्य), मल और मूल आदि उचित अवस्था में हो, जिसकी आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न तथा अपने-अपने कार्यों में लगे हों, वह पुरुष स्वस्थ कहलाता है।

किन्तु आज अधिकतर लोग स्वस्थ श्रेणी में नहीं आते है। किसी में वात-विकार, किसी में कफ का कोप, किसी में पित्त की विकृति, किसी की अग्नि बिगड़ी हुई है, किसी के रसादि धातुओं में क्षीणता, किसी का मल दूषित और किसी के मूत्र अनियमित हैं, इन सब बुरे लक्षणों का एकमात्र कारण ब्रह्मचर्य का अभाव है। एक वीर्य-क्षय से अनेक दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए जहां ब्रह्मचर्य नहीं, वहां स्वास्थ्य नहीं।

2) ब्रह्मचर्य से अपूर्व मेधा —

"मेधा देवैस्सवै रुपास्या।" (श्रुति)

मेधा वह शारीरिक शक्ति है जिसकी सभी विद्वान लोग उपासना करते हैं।

"मेधा दिव्या वरा शक्ति, ब्रह्मचर्येणा गृह्यते।"

मेधा वह पवित्र और श्रेष्ठ शक्ति है जो वीर्य रक्षणा से ग्रहण की जाती है। मेधा वास्तव में ईश्वरीय शक्ति है, इसके बिना सब व्यर्थ है। इस मनुष्य शरीर में मस्तिष्क सबसे श्रेष्ठ स्थान माना गया है, वह मेधा शक्ति इसी विहार क्षेत्र में विचरण करती है। ब्रह्मचारी पुरुषों की मेधा अत्यन्त तीव्र होती है। उनके मस्तिष्क में सदैव उन्नत विचारप्रवाह प्रवाहित होता रहता है। वीर्य रक्षा से मस्तिष्क बहुत प्रबल हो जाता है।

3) ब्रह्मचर्य से दीर्घायु —

"दीर्घायुब्रह्मचर्यया।" (सूक्ति)

ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने से मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त होती है।

यो विभर्ति दाक्षायणां हिरणयं
स देवेषु कुरुते दीर्घमायुः
स मानुवेषु कुरुते दीर्घमायुः।

(यजुर्वेद)

जो अपने शरीर में अनुपम वीर्य को सुरक्षित रखता है, वह दीर्घायु प्राप्त करता है। अपने वीर्य को सुरक्षित रखने वाला पुरुष, ज्ञानी हो या अल्पज्ञ, उसे दोनों अवस्थाओं में दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। यह वीर्य विद्वान लोगों के आत्मतेज और उनके दिव्य गुणों को विस्तरित करता है।

सतयुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग में मनुष्य का आयुबल विशेष होता था, लेकिन अब कलियुग के कारण कम हो गया है। अन्य युगों में ब्रह्मचर्य के पालन

विशेष रूप से किया जाता था, चाहे वो गृहस्थ हो या विरक्त हो। सब धर्मनिष्ठ, सत्पुरुष और सदाचारी महापुरुष थे, जो ब्रह्मचर्य का विधिवत पालन करते थे और दीर्घकाल तक जीवित रहते थे।

4) ब्रह्मचर्य से उत्साह एवं साहस —

यदि संसार से उत्साह और साहस लुप्त हो जाएं, तो यह जीवन नीरस और जड़वत हो जाएगा। उसी प्रकार यदि मनुष्य के भीतर ये दोनों शक्तियाँ कार्य करना बंद कर दें, तो वह केवल एक जीवित शव के समान बन जाता है—न जीवन में गति रहती है, न उद्देश्य। उत्साह और साहस का निवास हृदय में होता है। जिस मनुष्य का हृदय जितना दृढ़ और बलिष्ठ होता है, वह उतना ही अधिक उत्साही, निर्भीक और कार्यक्षम होता है। परंतु यह हृदयबल स्वयं उत्पन्न नहीं होता, यह संचित होता है—ब्रह्मचर्य के पालन से। ब्रह्मचर्य ही वह आधार है, जो हृदय को सत्व, शक्ति और संकल्प से पुष्ट करता है। जिसने अपने वीर्य की रक्षा की है, उसके व्यक्तित्व में स्वतः ही उत्साह, आत्मबल और साहस की छाया दिखाई देती है।

उसका चेहरा तेजस्वी, उसकी आँखों में बिजली-सी चमक, उसका स्वर प्रभावशाली और उसकी उपस्थिति प्रेरणादायक होती है। इसके विपरीत, वीर्य-क्षय करने वाला, विषयासक्त और व्यभिचारी पुरुष प्रायः दुर्बल, निरुत्साही और भीरु स्वभाव का होता है। उसमें आत्मविश्वास की कमी होती है, और वह जीवन के संघर्षों से भागता रहता है। इसलिए कहा गया है कि वीर्य-रक्षण ही सच्चे उत्साह, साहस और आत्मबल का मूल स्रोत है।

5) ब्रह्मचर्य से उत्तम सन्तान प्राप्ति —

सबके मन में यही अभिलाषा रहती है कि सन्तान हो और वंश-वृद्धि हो। सन्तान अच्छी हो और संसार में यश फैलाए। यह सोचना कोई बुरी बात नहीं है, परन्तु बहुत ही कम लोग नियमपूर्वक सन्तान उत्पन्न करते होंगे। ऐसे कितने शिशु हैं जो गर्भ में ही दम तोड़ देते हैं या गर्भपात होता जाता है, इन सब दोषों का कारण ब्रह्मचर्य का पालन न होना है।

हमारे ऋषि-मुनि मनवांछित सन्तान उत्पन्न करते थे। वे सन्तान की इच्छा से ही मैथुन में प्रवृत्त होते थे। वीर्य रक्षण के प्रताप से वह शक्ति उन्हें प्राप्त थी कि वे कभी भी निष्फल नहीं होते थे। उनकी संतानें भी उत्तम आचार-विचार वाली होती थीं, तथा स्वस्थ और दीर्घायु होती थीं।

अत: जिसकी जैसी मानसिक वृत्ति रहती है वैसी ही उसकी संतान होती है। यदि मनोनुकूल सन्तान उत्पन्न करना है, यदि संतान को उत्तम और सद्‌गुणी बनाना है, तो ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यंत आवश्यक है।

6) ब्रह्मचर्य से रोग शान्ति –

देश में स्वस्थ पुरुषों और स्त्रियों की संख्या उंगलियों पर गिनने योग्य हो गई है। बहुत से लोग स्वस्थ रहने के लिए विभिन्न प्रयास करते रहते हैं, पर फिर भी वे अस्वस्थ ही रहते हैं। उनका निस्तेज और निर्बल शरीर हमेशा रोगों में ही घिरा रहता है। वे सब ब्रह्मचर्य-च्युत होकर ही अपना जीवन बिता रहे हैं। व्यभिचार और इन्द्रिय-लोलुपता बहुत बढ़ती जा रही है। एक पुरुष जो पूर्ण निष्ठा से ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे ऐसे ही सहज में कोई रोग नहीं लगते, वह वीर्य का महत्व समझता है।

प्राचीन काल में लोगों को प्राय: रोग होते ही नहीं थे, वे संयमयुक्त रहनी रहते थे, उनका आहार-विहार भी शुद्ध एवं पवित्र होता था। किन्तु आजकल ब्रह्मचर्य का नाश आम बात हो गई, तभी सब सर्वनाश की ओर बढ़ रहे हैं। आज के युवा ब्रह्मचर्ययुक्त आहार-विहार को छोड़ कर प्रकृति के विरुद्ध चलते हैं। शरीर को सुन्दर और सुडौल बनाने के लिए अनेकों औषधियों का सेवन करते हैं, जिससे वे अनेकों बीमारियों से घिर जाते हैं। आयुर्वेद में कहा गया है कि एक वर्ष तक नियमित ब्रह्मचर्य के पालन से भयंकर रोगों को नष्ट किया जा सकता है।

अत: वीर्य रक्षा करना अति आवश्यक है। स्वस्थ जीवन जीने का मूल मंत्र - ब्रह्मचर्य का पालन करना है।

7) ब्रह्मचर्य से ब्रह्मज्ञान —

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। 39।।

(गीता 4/39)

अर्थात् वे जिनकी श्रद्धा अगाध है, और जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है, वे दिव्य ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इस दिव्य ज्ञान के द्वारा वे शीघ्र ही परम शांति को प्राप्त कर लेते हैं। ब्रह्मज्ञान के बिना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती। हमारे ऋषियों ने ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए अनेक मार्ग निश्चित किए हैं। छान्दोग्योपनिषद में इन्द्र-विरोचन संवाद है। उसमें ब्रह्मचर्य से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का समर्थन किया गया है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से निश्चयपूर्वक यह इच्छित आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य के बिना ब्रह्मज्ञान का अनुभव नहीं किया जा सकता।

8) ब्रह्मचर्य और अध्यात्म —

आध्यात्मिक जीवन की नींव ब्रह्मचर्य पर टिकी है। यह केवल एक नैतिक अनुशासन नहीं, बल्कि साधक की आत्मिक उन्नति के लिए अत्यंत आवश्यक आधार है। यदि कोई व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, तो वह गहरे और स्थायी आध्यात्मिक अनुभवों को प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल शारीरिक संयम नहीं है, बल्कि विचार, वाणी और व्यवहार में भी पवित्रता और नियंत्रण रखना है। यह इन्द्रियों की दिशा को भीतर की ओर मोड़ने की कला है — जहाँ ऊर्जा बिखरती नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार की दिशा में केंद्रित होती है।

इन्द्रिय-संयम, अर्थात् इन्द्रियों को अपने नियंत्रण में रखना, अध्यात्म का मेरुदण्ड है — ठीक वैसे ही जैसे शरीर के लिए रीढ़ की हड्डी आवश्यक होती है। इसके बिना साधना स्थिर नहीं हो सकती। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का दृढ़तापूर्वक पालन करता है, वही अपनी आंतरिक शक्ति को जाग्रत कर पाता है और योग के मार्ग पर सच्ची प्रगति कर सकता है। ऐसा व्यक्ति ही एक सच्चा योगी बन सकता है, क्योंकि योग का मूल तत्व ही आत्म-नियंत्रण और पवित्रता है। ब्रह्मचर्य कोई

बाध्यता नहीं, बल्कि आध्यात्मिक विकास की अनिवार्य शर्त है। इसके बिना न तो ध्यान की गहराई मिलती है, न ही आत्म–ज्ञान का प्रकाश। ब्रह्मचर्य, आध्यात्मिक जीवन की अनिवार्य नींव है।

एक सच्चा ब्रह्मचारी ही वास्तविक रूप से भक्ति का विकास कर सकता है, आत्मज्ञान अर्जित कर सकता है और योगाभ्यास में सिद्धि प्राप्त कर सकता है। अष्टांग योग का पहला चरण यम है, और यमों में ब्रह्मचर्य का विशेष स्थान है। ब्रह्मचर्य के बिना न योग संभव है, न मन की एकाग्रता। ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति को आलस्य, चंचलता, विक्षेप और मानसिक अशांति अधिक सताती है, जिससे उसकी साधना बाधित होती है।

पतंजलि योगसूत्र (2.30) के अनुसार —

"**अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह**" — ये पाँच यम हैं। ये जीवन के नैतिक और आत्मिक अनुशासन के आधार स्तम्भ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य का स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यही साधक के भीतर आत्मबल और दिव्य ऊर्जा को संचित करने का साधन बनता है।

जो साधक आत्म–साक्षात्कार की ओर अग्रसर होना चाहता है, उसे ब्रह्मचर्य का पालन अत्यंत दृढ़ता से करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि वह कामोत्तेजक वस्तुओं, दृश्यों, श्रवण, पठन या मानसिक कल्पनाओं से स्वयं को पूर्णतः बचाए। साथ ही, स्त्रियों तथा स्त्री–मोह में पड़े पुरुषों का संग भी ब्रह्मचर्य के लिए बाधक माना गया है, अतः ऐसे संसर्ग से भी दूर रहना आवश्यक है।

पतंजलि ऋषि, पतंजलि योगसूत्र (2.38) में कहते है:-

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"

अर्थात् जब ब्रह्मचर्य पूर्णतः स्थिर और दृढ़ हो जाता है, तब साधक में असाधारण शक्ति का उदय होता है — उसकी मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक और आत्मिक शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं। वह सामान्य जनों की तुलना में किसी भी क्षेत्र में उत्कृष्ट सिद्ध होता है।

इसी संदर्भ में महर्षि पतंजलि आगे कहते हैं:-

"कायेन्द्रियसिद्धिः शुद्धिक्षयात्तपसः" (2.43)

तपस्या द्वारा — जिसमें व्रत, उपवास, और इन्द्रिय-निग्रह सम्मिलित हैं – शरीर और इन्द्रियों के दोषों का क्षय होता है। परिणामस्वरूप योगी का शरीर शुद्ध, स्वस्थ, हल्का और सिद्ध हो जाता है। यह भी स्पष्ट रूप से बताता है कि ब्रह्मचर्य और तप ही योग की सच्ची नींव हैं।

*****

वीर्य की उत्पत्ति, स्थान और महत्व

वीर्य क्या है? वीर्य वह दिव्यशक्ति है जिसके आधार पर शरीर, संसार और जीवन-व्यवस्था टिकी हुई है। यह केवल शारीरिक द्रव्य नहीं, बल्कि जीवन-ऊर्जा का स्रोत, चेतना का संवाहक और मानव अस्तित्व की मूल आधारशिला है। शरीर की क्रियाशीलता, चेतना और स्फूर्ति का मूल स्रोत यही है। यदि शरीर से वीर्य तत्व को पूर्णतः अलग कर दिया जाए, तो यह शरीर केवल माटी का निष्क्रिय ढेर बनकर रह जाता है। इसलिए जब वीर्य इतना महत्वपूर्ण और मूलभूत तत्व है, तो यह जानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि वास्तव में वीर्य है क्या?

वीर्य प्राणमयी शक्ति है — यह जीवन का सार, प्राणों का प्राण, और चमकदार नेत्रों की चमक है। वीर्य रक्त का सार-तत्व है। शास्त्रों और आयुर्वेद के अनुसार, एक बूंद वीर्य बनाने के लिए चालीस बूंद रक्त की आवश्यकता होती है। इससे इसके महत्व और मूल्य का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। वीर्य शरीर में अंडकोषों की कोशिकाओं द्वारा निर्मित होता है। यह रक्त से निर्मित होकर शरीर को तेज, ओज, बल और रंग प्रदान करता है।

यह केवल संतानोत्पत्ति का माध्यम नहीं, बल्कि शरीर, मन और आत्मा — तीनों को पुष्ट करने वाला अत्यंत सूक्ष्म और दिव्य तत्त्व है। इसलिए वीर्य की रक्षा, केवल स्वास्थ्य की नहीं, संपूर्ण जीवन की रक्षा है।

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्।
रसासृक्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।।

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र (वीर्य), ये सात पदार्थ स्वयं स्थित रहकर मनुष्यों की देह को धारण करते हैं। इसी से इनका नाम धातु है, मनुष्य जो कुछ भी खाता-पीता वह शरीर में जाकर सबसे पहले रस की उत्पत्ति करता है, और उसी से क्रमशः अन्य धातुएं बनती हैं।

वीर्योत्पत्ति के विषय में आयुर्वेद के ग्रंथ सुश्रुत में वर्णन मिलता है:-

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसन्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः।।

अर्थात् खाए हुए भोजन से सबसे पहले रस निर्मित होता है, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद (चर्बी), मेद की हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से अन्तिम धातु वीर्य बनता है, जिसे शुक्र भी कहते हैं। सबका सार पदार्थ 'वीर्य' ओजस रूपी महान तेज बनकर सम्पूर्ण शरीर में चमकने लगता है।

एक धातु के पचकर दूसरी धातु बनने में पांच दिन लगते हैं। सार पदार्थ तो शरीर में रह जाता है और पाचन की प्रत्येक क्रिया में बचा हुआ कूड़ा-कचरा, मल, मूत्र, पसीना, मैल, नाखून और दाढ़ी आदि के बालों के रूप में बाहर निकल जाता है। वीर्य बनते ही उसकी पाचन क्रिया रुक जाती है और वह सार पदार्थ ओजस के रूप में शरीर में स्थित रहता है।

इस प्रकार रस से लेकर वीर्य बनने में प्रत्येक धातु में पांच दिन के हिसाब से छः धातुओं के पाचन में तीस दिन लगते हैं। आज के खाए हुए पदार्थ का तीसवें दिन वीर्य बनता है। प्रतिदिन पक्का एक सेर खाने वाला मनुष्य भी एक महीने में तीस सेर ही पदार्थ खाता है। उपयुक्त हिसाब से तीस सेर खुराक से एक महीने में डेढ़ तोला वीर्य बनता है, यह महीने भर की कमाई है। और एक बार के स्त्री-पुरुष सहवास में डेढ़ तोले से कम वीर्य नहीं जाता। अब विचारणीय बात यह है कि पुरुष महीने भर की कमाई एक क्षण में गँवा देता है।

शास्त्रों में कहा है-

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बल पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः।।

वीर्य, सौम्य, श्वेत, स्निग्ध, बल और पुष्टिकारक, गर्भ का बीज, शरीर का श्रेष्ठ सार और जीवन का प्रधान आश्रय है। वीर्य सबके शरीर में उसी प्रकार व्यापक है, जैसे दूध में घी और गन्ने के रस में गुड़ व्यापक रहता है। इसलिए जैसे दूध में से मक्खन निकालने के लिए दूध को मथना और गन्ने में से गुड़ निकालने के लिए गन्ने को निचोड़ना पड़ता है, वैसे ही एक बूंद वीर्य को निकालने के लिए

शरीर को मथना पड़ता है। जैसे घी निकालने के बाद दूध सारहीन, निस्तेज हो जाता है और गन्ने का रस निकालने के बाद वह खोखला व चूर-चूर हो जाता है, वैसे ही वीर्य के निकलने से शरीर भी सारहीन, निस्तेज, खोखला हो जाता है। शरीर की तमाम नस-नाड़ियां ढीली पड़ जाती हैं।

वीर्य के पतन में ही मनुष्य का पतन है, और वीर्य के धारण में ही मनुष्य का जीवन है। 'वीर्यधारण' को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं- "वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्"।

शरीर में ओजस् धातु का होना ही जीवन का कारण है। हमारे शरीर में वीर्य से अलग 'ओज' 'ओजस' नाम का पदार्थ और भी होता है। इसी ओज से शरीर की शक्ति स्थिर रहती है। इस ओज का निर्माण भी वीर्य से होता है। जिसके शरीर मे जितनी अधिक मात्रा में वीर्य होगा, उसमें उतनी प्रचुर मात्रा में ओज मिलेगा। ओज वीर्य का निष्कर्ष रूप है।

वाग्भट्ट कहते हैं — (11/37.38)

ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।
हृदयस्थमदि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम्।।
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टि पुष्टि बलोदयाः।
यन्नाशे नियतो नाशो यंस्मिस्तिष्ठति जीवनम्।।
निष्पाधन्ते यतो भाव विविधा देहसंश्रयाः।
उत्साह प्रतिभाधैर्यलावण्यसुकुमारताः।।

"**ओजस्**" वह शक्ति है जो रस से लेकर शुक्र तक की सातों धातुओं के परिष्कृत सार से उत्पन्न होती है। यह मूलतः हृदय में स्थित होता है, किंतु पूरे शरीर में व्याप्त रहता है। ओजस् की वृद्धि से शरीर में तुष्टि (संतोष), पुष्टि (पुष्टता) और बल की उत्पत्ति होती है, जबकि इसके क्षीण हो जाने पर जीवन का अंत निश्चित होता है। वास्तव में, ओजस् ही जीवन की आधारशिला है।

इसी से उत्साह, प्रतिभा, धैर्य, लावण्य और सुकुमारता जैसे गुण प्रकट होते हैं। प्रश्न यह उठता है कि यह अमूल्य ओजस् उत्पन्न कहां से होता है?

महर्षि सुश्रुत कहते हैं —

रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलभिति।

रस से लेकर शुक्र तक सातों धातुओं का जो परम तेजस्वी अंश है, वही ओजस् कहलाता है — और यही ओजस् वास्तव में बल का मूल है।

अब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से सामने आता है कि यह ओजस् वास्तव में कैसा होता है और इसका निवास स्थान कहां है?

शाङ्र्गधर कहते हैं —

ओजः सर्वशरीरस्थं शीतं स्थिरं सितम्।
सोमात्मकं शरीरस्थ बलपुष्टिकरं मतम्।।

अर्थात् ओजस् सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होता है। यह स्निग्ध, शीतल, स्थिर, श्वेतवर्णीय, सोमस्वरूप तथा शरीर को बल और पुष्टि प्रदान करने वाला माना गया है।

इससे स्पष्ट होता है कि ओजस् का मूल स्रोत वीर्य ही है। वीर्य से ही ओजस् की उत्पत्ति होती है, और यही कारण है कि वीर्य को जीवनधारण का प्रधान आधार माना गया है। वास्तव में, यही जीवनशक्ति का मूल स्तंभ और स्थायित्व का प्रमुख अवलम्बन है।

शिव संहिता में कहा है — (4.88)

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्धुधारणात्।
तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्।।

अर्थात् "बिन्दु के पतन से मृत्यु होती है, और बिन्दु को धारण करने में ही जीवन का रहस्य छिपा है। इसलिए व्यक्ति को अत्यंत सावधानी और प्रयासपूर्वक बिन्दु यानी वीर्य की रक्षा करनी चाहिए।

भगवान शिव भी इसी बिन्दु धारण — अर्थात् ब्रह्मचर्य — के महान प्रभाव से इतने शक्तिशाली और तेजस्वी बने कि वे हलाहल विष का पान करने के बाद भी पूर्णतः स्वस्थ और अडिग रह सके।

अतः ब्रह्मचर्य ही वह दिव्य साधना है जो व्यक्ति को अतुलनीय बल, ऊर्जा और अमरत्व की ओर ले जाती है।

भगवान् शिव स्वयं कहते हैं — शिव संहिता (4.90)

"सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले।
यस्त प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशीऽभवेत्।।"

अर्थात् जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण ब्रह्मांड में मेरी इतनी महिमा उत्पन्न हुई है, उस बिन्दु (वीर्य) के संरक्षण से इस जगत में ऐसा कौन सा कार्य होगा जो सिद्ध न हो सके?

इससे यह स्पष्ट होता है कि वीर्य बिन्दु की रक्षा और उससे संचित शक्ति से सभी कार्य पूर्ण होते हैं और यही परम सफलता का मूल है।

मन, प्राण और वीर्य का आपसी संबंध —

मनुष्य का मन अपने आप में गतिशील नहीं होता, वह प्राण के स्पंदनों और वासनाओं के कारण सक्रिय और क्रियाशील बनता है। जहां मन अंतर्मुख होकर शांति में लीन होता है, वहां प्राण भी स्थिर रहता है। और जब प्राण शांत हो जाता है, तब मन स्वतः अंतर्लीन हो जाता है। इस प्रकार, मन और प्राण व्यक्ति के जीवन में छाया की तरह एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए, अंतरंग साथी हैं।

यदि मन और प्राण को संयमित न किया जाए, तो सभी इन्द्रियाँ—चाहे वे ज्ञानेन्द्रियाँ हों या कर्मेन्द्रियाँ—बिना रोक-टोक सक्रिय हो जाती हैं। विशेष रूप से जब व्यक्ति के भीतर कामवासनाओं की उत्तेजना उत्पन्न होती है, तब प्राण अधिक उग्र होकर चलायमान हो जाता है। इस स्थिति में संपूर्ण शरीर, मन के आदेशों का पालन करने लगता है, जैसे सैनिक अपने सेनापति के निर्देशों का पालन करता है।

प्राण की गति वीर्य को भी गति देती है, जिससे वीर्य नीचे की ओर प्रवाहित होने लगता है। यदि वीर्य का नाश हो जाए, तो प्राण भी अस्थिर और विक्षुब्ध हो जाता है। प्राण के असंतुलित होते ही मन भी विचलित हो जाता है, और व्यक्ति मानसिक रूप से अधीर, अशांत एवं दुर्बल अनुभव करता है।

इसके विपरीत, जब प्राण को स्थिर कर लिया जाता है, तो मन भी शांत हो जाता है। और यदि वीर्य को भी स्थिर रखा जाए—उसका संरक्षण किया जाए—तो मन की स्थिरता तथा शक्ति और अधिक प्रगाढ़ हो जाती है। इसी प्रकार, दृष्टि को यदि एक बिंदु पर स्थिर किया जाए तो मन भी स्थिरता की ओर अग्रसर होता है।

अतः जीवन में प्राण, वीर्य और दृष्टि—इन तीनों पर संयम और नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। यही वे शक्तियाँ हैं जो व्यक्ति को न केवल शारीरिक और मानसिक रूप से उन्नत बनाती हैं, बल्कि आत्मिक स्तर पर भी उसे उच्च अवस्थाओं तक ले जाती हैं। अतः इस प्राणभूत सत्त्व—वीर्य—के महत्व और उपयोगिता को भली-भांति समझकर उसका संरक्षण करना ही जीवन की सच्ची साधना है।

"वीर्य परम शक्ति है, वीर्य ही परम धन है, और वीर्य में ही ईश्वर का साक्षात वास है।"

भगवद्गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है—"**पौरुषं नृषु**", अर्थात् *"मैं मनुष्यों में पुरुषत्व (वीर्य शक्ति) के रूप में विद्यमान हूं।"* यह कथन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि वीर्य कोई सामान्य द्रव्य नहीं, बल्कि जीवन, विचार, बुद्धि, और चेतना का सार है।

वीर्य वह दिव्य तत्व है जो न केवल शरीर को पोषण देता है, बल्कि आत्मबल, ओज, तेज और विवेक की नींव भी रखता है। अतः इसकी रक्षा करना, अपने जीवन की रक्षा करने के समान है। इसका अपव्यय करना स्वयं को कमजोर करना है—शारीरिक रूप से भी, मानसिक रूप से भी, और आत्मिक रूप से भी।

इसलिए इस परम सत्व की रक्षा करें, इसे संभालकर रखें, और क्षणिक सुख के लिए इसे नष्ट न करें। यही जीवन का आधार है, यही आत्मशक्ति का स्रोत है।

वीर्य का वैज्ञानिक सिद्धांत —

उपनिषदों और आयुर्वेदिक ग्रंथों में वीर्य को जीवन का मूल आधार माना गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है—

"अन्नाद् रेतः, रेतसः पुरुषः।"

अर्थात् अन्न से वीर्य उत्पन्न होता है और वीर्य से ही मनुष्य की सृष्टि होती है। इसी प्रकार अग्निवेश संहिता में स्पष्ट उल्लेख है—

"शुक्रायत्तं च जीवितम्।"

अर्थात् मनुष्य का जीवन वीर्य पर निर्भर है।

आधुनिक विज्ञान भी इस शास्त्रीय सत्य की पुष्टि करता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों में यह सिद्ध हो चुका है कि मानव शरीर में अनगिनत सूक्ष्म जीवाणु (micro-organisms) विद्यमान हैं। रक्त, मल और वीर्य—इन तीनों में भी असंख्य जीवाणु पाए जाते हैं। वीर्य में उपस्थित ये सूक्ष्म जीवाणु अत्यंत सक्रिय, बलशाली, कान्तिमान् और प्रभावशाली होते हैं। इनकी उपस्थिति से शरीर में जीवन-शक्ति, ऊर्जा, रोग-प्रतिरोधक क्षमता और दीर्घायुता बनी रहती है।

एक बूंद वीर्य में भी करोड़ों की संख्या में जीवाणु होते हैं। जब बार-बार वीर्य का अपव्यय होता है, तो शरीर की वह सूक्ष्म जीवन-ऊर्जा धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और नैतिक रूप से दुर्बल होने लगता है। दीर्घकालीन वीर्य-नाश से शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है और अकाल मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है।

यदि ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वीर्य की रक्षा की जाए, तो वही सूक्ष्म जीवाणु शरीर को बलशाली, ओजस्वी, तेजस्वी और दीर्घायु बना देते हैं। यही कारण है कि महान वैज्ञानिकों और विचारकों ने भी ब्रह्मचर्य के महत्व को स्वीकार किया है। उनका मानना है कि यदि वीर्य का संरक्षण किया जाए, तो मनुष्य न केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ रहेगा, बल्कि मानसिक रूप से भी सशक्त और संतुलित जीवन व्यतीत कर सकता है।

जो व्यक्ति विषय-वासना में लिप्त होकर निरंतर वीर्य-नाश करता है, वह धीरे-धीरे दुर्बल, रोगग्रस्त, उदास और नि:संतान या नपुंसक तक बन सकता है। वीर्य न केवल जीवन की स्थिरता का आधार है, बल्कि यही सन्तानोत्पत्ति का प्रमुख कारण भी है। अत: इसका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

जीवो बसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः।
वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणोयति क्षयं क्षणात्।।

"जीवो वसति सर्वत्र देहे, परंतु विशेषतः वीर्य, रक्त और मल में निवास करता है।"

अर्थात् जीव तत्व – जीवनशक्ति सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, किन्तु यह विशेष रूप से वीर्य, रक्त और मल में सशक्त और सक्रिय रूप से निवास करती है। जब इन तीनों में से विशेषकर वीर्य का क्षय होता है, तो जीवनशक्ति क्षणभर में कमज़ोर हो जाती है। इसके फलस्वरूप शरीर, मन और आत्मा तीनों ही धीरे-धीरे पतित होने लगते हैं।

इसलिए प्राचीन शास्त्रों में बार-बार इस बात पर जोर दिया गया है कि *वीर्य की रक्षा करना, जीवन की रक्षा करने के समान है*। वीर्य मात्र एक शारीरिक द्रव्य नहीं, अपितु यह जीवन का मूल सत्त्व, चेतना का स्रोत, और ओज तथा आत्मबल का आधार है।

वीर्य के पकने की अवधि —एक आयुर्वैदिक दृष्टिकोण

महामान्य भोज द्वारा वर्णित एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयुर्वैदिक सूत्र में धातुओं के परिपाक का क्रम और काल स्पष्ट किया गया है :

"धातौ रसदौ मज्जान्ते, प्रत्येकं कमतो रसः।
अहो रात्रात्स्वयं पंच, सार्ध दण्डन्च तिष्ठति।।"

अर्थात्, शरीर की प्रथम धातु *रस* से लेकर अंतिम धातु *मज्जा* तक, प्रत्येक धातु में रस का सार पाँच दिन-रात तथा डेढ़ घड़ी (लगभग 36 मिनट) तक स्थित रहता है। इस प्रकार, प्रत्येक धातु को पोषण प्रदान करते हुए रस अन्ततः *वीर्य* के रूप में परिणत होता है।

इस गणना के अनुसार, 30 दिन और 9 घड़ी में रस, क्रमशः सभी छह धातुओं – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, और मज्जा – को पोषित करता हुआ **वीर्य** का निर्माण करता है। आयुर्वेदाचार्यों का भी यह सर्वसम्मत मत है कि **एक मास** के उपरांत पुरुष शरीर में वीर्य तथा स्त्री शरीर में रज की उत्पत्ति होती है।

महर्षि सुश्रुत ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है —

"एवं मासेन रसः शुक्रो भवति पुंसां स्त्रीणांचार्तव मिति।"

(सुश्रुत संहिता)

अर्थात्, रस धातु एक मास में परिपक्व होकर पुरुषों में *शुक्र* (वीर्य) और स्त्रियों में *आर्तव* (रज) का निर्माण करता है।

इस प्रकार, शरीर में धातुओं के क्रमिक पोषण और परिपाक के पश्चात् 30 दिन के उपरांत एवं 40 दिन से पूर्व अन्तिम धातु- वीर्य का बनना सर्वसम्मत है — यह तथ्य हमारे प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों द्वारा प्रमाणित एवं मान्य है।

अब यह **प्रश्न** होता है कि यदि एक मास तक वीर्य नहीं बनता, तो इससे पहले सम्भोग करने से बाहर क्यों निकलता है? इसका उत्तर यह है कि वीर्य का तो शरीर में कभी अभाव नहीं रहता। जिस दिन इसका अभाव हो जाएगा, उस दिन मनुष्य जी नहीं सकता। इसका कारण यह है कि वीर्य केवल एक अंतिम परिणति नहीं, अपितु सतत् चलने वाली जैविक प्रक्रिया का परिणाम है।

प्रत्येक मनुष्य भोजन करता है। जो कुछ आहार किया जाता है, उससे सदैव रसादि सातों धातुएं क्रम से बनती रहती हैं। सातों धातुओं की सात प्रकार की क्रियाएं निरंतर होती हैं। इस नियम से वीर्य भी सदा बनता है, तो फिर ऊपर का मत मिथ्या है? नहीं। उसका अभिप्राय यह है कि निरंतर बनने वाली धातु परिपक्व नहीं होती, जो धातु अविराम काम करती रहती है, वह एक मास के पश्चात् भली-भांति पक जाती है। एक मास के पश्चात् मनुष्य का वीर्य और स्त्री का रज भी सर्वांगों को पुष्ट करता हुआ, उचित अवस्था को पहुंच जाता है।

एक मास से पहले मैथुन का निषेध क्यों किया गया है? वह इसलिए कि इससे पहले वीर्य के बाहर निकलने से सब धातुओं में क्षीणता आ जाती है। धातुओं में क्षीणता आ जाने से, शरीर के सब अवयव निर्बल हो जाते हैं, और रोगों की उत्पत्ति होती है।

एक मास के पश्चात् वीर्य का पकना अत्यंत स्वाभाविक है। इसका प्रमाण यह है कि स्त्रियों का ऋतु काल भी एक मास के पश्चात् ही आता है। यदि वह

बात प्राकृतिक न होती, तो ऐसा क्यों होता? परमात्मा ने स्त्रियों को गर्भधारण करने के लिए तथा पुरुषों को गर्भाधान के लिए ही बनाया है। प्रधानतया मैथुन का भी उद्देश्य यही है।

बलवान मनुष्य के शरीर में आहार की रसादि क्रियाएं शीघ्रता से होती रहती हैं। इसलिए उसका वीर्य भी कुछ पहले ही पक जाता है। पर दुर्बल मनुष्य का वीर्य और भी अधिक दिन में पकता है। इसका कारण यह है कि उसके शरीर में आहार की रसादि क्रियाएं देर में होती हैं। यही बात स्त्रियों के रज के सम्बन्ध में भी पूर्ण रीति से घटती है।

एक मास के उपरांत उत्पन्न वीर्य व रज के लाभ और महत्त्वः

1. **उच्च जीवन-शक्तिः**- एक मास के संयम के बाद जो वीर्य अथवा रज उत्पन्न होता है, वह अत्यंत प्रबल जीवनी-शक्ति से युक्त होता है, जो शरीर व मन को बलवान बनाता है।
2. **संयम का महत्वः**- इस प्रकार के शक्तिशाली वीर्य और रज को केवल गर्भाधान जैसे उद्देश्यपूर्ण कार्यों में ही उपयोग में लाना चाहिए, अन्यथा इसे व्यर्थ में नष्ट करना उचित नहीं है।
3. **रक्षण का लाभः**- यदि इनकी तत्काल आवश्यकता नहीं है, तो इन्हें शरीर में ही संरक्षित रखना उत्तम माना जाता है, जिससे जीवनशक्ति बनी रहती है।
4. **गुणों में वृद्धिः**- इस अमूल्य वीर्य और रज के प्रभाव से व्यक्ति की कान्ति, आयु, शारीरिक व मानसिक शक्ति, बुद्धि, क्षमा, सहनशीलता, प्रेमभाव, तेजस्विता और विनम्रता में वृद्धि होती है।
5. **ब्रह्मचर्य का चमत्कारः**- यदि कोई व्यक्ति एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है, तो उसके शरीर में अपार मात्रा में वीर्य संचित हो जाता है, जिससे वह असाधारण कार्यों को भी करने में सक्षम हो जाता है।

वीर्य का स्थान और परिमाण —

श्लोक (वैद्यक-शास्त्र):-

"शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं, बल पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भबीजं वपुः सारो, जीवस्याश्रय मुत्तमम्।।"

भावार्थ:- शुक्र अर्थात वीर्य सौम्य स्वभाव का, श्वेत वर्ण का, स्निग्ध (चिकना), बल और पुष्टि प्रदान करने वाला होता है। यह गर्भ का बीज, शरीर का सारतत्त्व और जीवन का सर्वोत्तम आश्रय माना गया है।

वीर्य (शुक्र) को प्राचीन वैद्यक शास्त्रों में जीवन की मूल ऊर्जा माना गया है। यह न केवल संतति का बीज है, बल्कि पूरे शरीर का सारतत्त्व और जीवनी शक्ति का प्रमुख स्रोत भी है। इसके गुणों में सौम्यता, श्वेतता, चिकनाहट, बलवर्धकता और पोषण देने की क्षमता विशेष रूप से मानी गई है।

वर्तमान समय में वीर्य के स्थान और उसकी मात्रा को लेकर अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ फैल गई हैं। इस कारण अनेक लोग मानसिक भ्रम और चिंता का शिकार हो जाते हैं। अत: यहाँ महर्षियों द्वारा वर्णित तथ्यों के आधार पर इन भ्रांतियों का निराकरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे सत्य का बोध हो और आत्मविश्वास बना रहे।

अत: शास्त्रों के अनुसार, वीर्य सम्पूर्ण शरीर के पोषक धातुओं का सार है और यह मूलत: श्रोणि (पेल्विक) क्षेत्र में स्थित होता है। यह अस्थि, मज्जा एवं अन्य सात धातुओं के परिपाक (परिष्करण) के बाद उत्पन्न होता है, अत: इसे "शरीर का सार" कहा गया है।

और आधुनिक विज्ञान के अनुसार, वीर्य (Semen) मुख्यत: अंडकोष (Testes) में उत्पन्न होता है, जहाँ शुक्राणु (Sperm) बनते हैं। यह वृषण (testicles), शुक्रवाहिनी (vas deferens), मूत्रमार्ग (urethra) और प्रोस्टेट ग्रंथि जैसे अंगों के सहयोग से बाहर आता है। वीर्य केवल शुक्राणु नहीं होता, इसमें 95% तरल पदार्थ होते हैं जो शुक्राणुओं को पोषण और गतिशीलता प्रदान करते हैं।

"यथा पयसि सर्पिस्तु, गूढ़श्चेक्षौ रसो यथा।
एवं हि सकले काये, शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्।।"

(वैद्यक शास्त्र)

अर्थात् जैसे दूध में घी और गन्ने में रस छिपा रहता है, वैसे ही वीर्य भी समस्त शरीर में सूक्ष्म रूप से व्याप्त होता है। यह बाहर से दिखाई नहीं देता, लेकिन यह सम्पूर्ण शरीर में विद्यमान रहता है।

जब शरीर ऐसा अन्न या आहार लेना बंद कर देता है जिससे वीर्य की उत्पत्ति और रक्षा होती है, तब शरीर भीतर से रिक्त होने लगता है — उसकी शक्ति, चमक और स्थिरता कम हो जाती है।

यदि वीर्य केवल किसी एक स्थान पर स्थित पदार्थ होता, तो उसके ह्रास या संरक्षण का प्रभाव केवल उसी अंग तक सीमित रहता। किंतु ऐसा नहीं है — जब वीर्य की हानि होती है, तो उसका प्रभाव पूरे शरीर, मन और मस्तिष्क पर देखा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वीर्य सम्पूर्ण शरीर की शक्ति और चेतना का सार है।

अतः वीर्य कोई साधारण पदार्थ नहीं, बल्कि यह शरीर की संचित ऊर्जा, पोषण और जीवन-तत्त्व का सबसे गहन रूप है। इसका संरक्षण सम्पूर्ण स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन और आत्मबल के लिए अत्यंत आवश्यक है।

"पृथक् स्वप्रसृतं प्रोक्तम् ओजो मस्तिष्क रेतसाम्।
द्वावज्जली तु स्तन्यस्य, चत्वारो रजसस्त्रियाः ।।"

(वृद्ध वाग्भट्ट)

भावार्थः- ओज (तेज), मस्तिष्क (मज्जा) और वीर्य — इन तीनों का औसत परिमाण पुरुष के अपने हाथ की एक अंजुली (चुल्लू) के बराबर होता है। स्त्रियों के शरीर में, स्तन्य (दूध) का परिमाण दो अंजुली और रज का लगभग चार अंजुली माना गया है।

स्वस्थ पुरुष और स्त्री के शरीर में उपर्युक्त वर्णित परिमाण में ओज, मस्तिष्कीय तरल, वीर्य, दूध और रज होते हैं। यह सामान्य शारीरिक स्थिति का संकेतक है। अस्वस्थ या पोषणहीन शरीर में यह मात्रा स्वाभाविक रूप से कम हो सकती है।

कुछ प्राचीन मतों और परंपरागत वैद्यकीय गणनाओं के अनुसार —

लगभग **४० मुट्ठी आहार से १ बूँद रक्त**, और **४० बूँद रक्त से १ बूँद वीर्य** उत्पन्न होता है। अर्थात्, वीर्य शरीर का अत्यंत परिष्कृत और अमूल्य तत्त्व है, जो बहुत अधिक मात्रा में आहार और ऊर्जा खर्च करने के बाद ही बनता है।

कुछ भारतीय वैज्ञानिकों का अनुमान है कि:-

- **तोला (लगभग १२ ग्राम) वीर्य बनाने में लगभग १ सेर (९३० ग्राम) रक्त**,
- और उस रक्त को उत्पन्न करने हेतु लगभग **१ मन (लगभग ४० किलोग्राम) आहार** की आवश्यकता होती है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीर्य केवल एक द्रव्य नहीं, बल्कि शरीर की संपूर्ण पोषण प्रणाली का गहनतम निष्कर्ष है। इसका प्रभाव केवल यौनशक्ति तक सीमित नहीं, बल्कि यह समस्त इन्द्रियों, मस्तिष्क, स्मृति, साहस, और जीवनीशक्ति को सक्रिय बनाए रखता है। जिस वीर्य को शरीर इतनी लंबी प्रक्रिया से, अथक प्रयास से बनाता है —यदि उसे अनावश्यक, असंयमित या अज्ञानवश नष्ट कर दिया जाए, तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और मूर्खता क्या हो सकती है?

अत: जो लोग अपनी रक्षा चाहते हैं, वे सावधान हो कर मन, वचन, कर्म से अपने वीर्य की रक्षा करें।

वीर्य का परिमाण —

आयुर्वेदिक मान्यता:-

- प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख है कि अत्यंत संयम से उत्पन्न वीर्य की एक बूँद, 40 बूंद रक्त से बनती है।
- यह विचार कि वीर्य अत्यंत कीमती और परिश्रम से बनने वाला तत्त्व है वीर्य की पोषक प्रक्रिया और महत्त्व को दर्शाता है।

वैज्ञानिक तथ्य:-

- सामान्यत: एक बार स्खलन में 2 से 5 मिलीलीटर वीर्य निकलता है, जिसमें लगभग 2 से 5 करोड़ शुक्राणु हो सकते हैं।
- परंतु शरीर लगातार इसे उत्पन्न करता रहता है। एक स्वस्थ पुरुष कुछ ही दिनों में पुन: पूर्ण वीर्य उत्पादन कर सकता है।
- इसका यह अर्थ नहीं कि वीर्य की हानि घातक है, लेकिन अत्यधिक या अनियमित स्खलन शारीरिक व मानसिक थकान उत्पन्न कर सकता है।

वीर्य का वैज्ञानिक महत्त्व —

- वीर्य में केवल संतान उत्पत्ति की क्षमता ही नहीं है, बल्कि इसमें कई प्रकार के एंजाइम, प्रोटीन, विटामिन, और खनिज होते हैं।
- यह पुरुष हार्मोन टेस्टोस्टेरोन से भी जुड़ा होता है, जो यौन शक्ति, मांसपेशियों की वृद्धि, हड्डियों की मजबूती और मानसिक ऊर्जा के लिए आवश्यक है। अतः आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान दोनों ही वीर्य को शरीर का एक महत्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं।
- इसके संरक्षण से न केवल यौन स्वास्थ्य बल्कि मानसिक स्थिरता, स्मरण शक्ति, और आत्मबल में भी वृद्धि होती है। अतः वीर्य को नष्ट करने के प्रति लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए। संयम, संतुलन और उचित जीवनशैली से यह ऊर्जा दीर्घकाल तक सुरक्षित रह सकती है।

सम्भोग से वीर्य-स्खलन —

"कृत्स्न देहस्थितं शुक्रं, प्रसन्न मनसस्तथा।
स्त्रीषु व्यायच्छतः श्चापि, हर्षात्तत्सम्प्रवर्तते।।"

(वैद्यक शास्त्र)

समस्त शरीर में रहने वाला वीर्य, प्रसन्नचित्त वाले पुरुष के स्त्री–सहवास से प्रवृत्त होता है। अर्थात् एकत्र होकर बाहर निकल जाता है। इसका कारण एक प्रकार का इन्द्रिय–सम्बन्धी आनन्द (उद्रेक) है। यही बात स्त्रियों के सम्बन्ध में भी घटती है। पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध होने पर उनका भी धातुपात होता है।

इस प्रक्रिया का मूल कारण काम–भावना से उत्पन्न मानसिक व इन्द्रियजन्य उत्तेजना (उद्रेक) होती है। यह उत्तेजना शरीर के भीतर स्थित अग्नि (ऊर्जा) और वायु (प्रेरक शक्ति) को सक्रिय करती है, जो वीर्य को केंद्रित कर बाहर की ओर ले जाती है। जैसे दही को लगातार मथने से उसमें छिपा हुआ घी धीरे–धीरे सतह पर आकर एकत्र हो जाता है और फिर अलग निकलता है, उसी तरह सम्भोग की प्रक्रिया में शरीर के सभी अंगों में व्याप्त वीर्य संघर्षण (friction), वायु और मानसिक हर्ष के कारण एकत्र होकर अंततः बाहर आ जाता है।

"द्वयङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे, वस्तिद्वारस्य चाप्यधः।
मूत्रस्त्रोतः पथे शुक्रं, पुरुषस्य प्रवर्तते।।"

(आयुर्वेद शास्त्र)

अर्थात् पुरुष के शरीर में वीर्य, मूत्रमार्ग के द्वारा बाहर निकलता है। यह मार्ग, दाएँ पार्श्व की ओर से दो अंगुल नीचे स्थित मूत्र-प्रवेश द्वार के नीचे होता है। स्त्रियों के संदर्भ में भी यह समझना आवश्यक है कि वीर्य या रज-स्राव केवल पुरुष के साथ शारीरिक संबंध (सम्भोग) की स्थिति में ही स्वाभाविक रूप से होता है। सामान्य स्थिति में या बिना सहवास के स्त्रियों में इस प्रकार का धातुपात नहीं होता।

पुरुष और स्त्री दोनों के लिए सम्भोग ही वास्तविक, स्वाभाविक और शारीरिक दृष्टि से उचित वीर्य-स्खलन का कारण है। इसके विपरीत — हस्तमैथुन, रात्रि स्वप्न (अगर अत्यधिक), या अन्य किसी मानसिक/शारीरिक उत्तेजना से जो वीर्य बाहर आता है — वह स्वाभाविक न होकर, शरीर के लिए हानिकारक माना गया है।

शास्त्रों और स्वास्थ्य विज्ञान दोनों में यह स्पष्ट कहा गया है कि शारीरिक संबंध भी तभी लाभदायक होता है, जब वह संयमित, उचित समय पर, और मानसिक संतुलन के साथ किया जाए। अति या असमय किया गया सम्भोग भी शरीर को क्षीण कर सकता है।

वीर्य - शरीर का सार और जीवन का आधार

वीर्य केवल एक जैविक तत्व नहीं, बल्कि संपूर्ण शरीर का सार और जीवनी शक्ति का मूल स्त्रोत है। यह न केवल शरीर को पोषण देता है, बल्कि मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक स्थिरता का भी आधार है। इसके कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण और व्यापक हैं, जो नीचे विस्तार से प्रस्तुत हैं -

- वीर्य ही हृदय को पुष्ट तथा कर्तव्यशील बनाता है।
- वीर्य से ही समस्त अंगों में जीवनी-शक्ति संचालित होती रहती है।
- वीर्य से ही मस्तिष्क शांत और विचार शक्ति सम्पन्न रहता है।
- वीर्य से ही दृष्टि तथा श्रवण-शक्ति स्थिर रहती है।

- वीर्य से ही निर्भयता, स्वतंत्रता, उत्साह, साहस तथा पराक्रम आदि गुण बढ़ते हैं।
- वीर्य से ही आलस्य, रोग, निर्बलता, कलुषता, दम्भ, अज्ञान तथा अविनय आदि दुर्गुण दूर किए जा सकते हैं।
- वीर्य के बिना सभी कार्य असिद्ध हो जाते हैं।
- वीर्य ही सन्तानोत्पत्ति का मूल है।
- वीर्य मनुष्य की सुन्दरता, सभ्यता, पवित्रता, धैर्य, पुण्य तथा सद्व्यवहार का कारण है।
- कहने का सारांश यह है कि शरीर में वीर्य ही सब कुछ कार्य करता है। इसकी हीनता से सारे व्यापार हीन हो जाते हैं।

अत: वीर्य ही शरीर की मूलधारा है। यह शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में सफलता, स्वास्थ्य और संतुलन का आधार है। इसकी क्षति जीवन की हर दिशा में दुर्बलता, असंतुलन और विफलता को जन्म देती है।

*****

वीर्य नाश — सर्वनाश

स्वयं भगवान शिव ने *शिव संहिता* में कहा है – "बिंदु (वीर्य) का पतन ही मृत्यु है, और इसी बिंदु का संरक्षण ही जीवन है।" यदि इस अमूल्य बिंदु का संरक्षण किया जाए, तो संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है जो सिद्ध न हो सके।

'शुक्रायत्तं चलं पुंसः' —

मनुष्य की शारीरिक शक्ति का आधार वीर्य होता है।

बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का मत है कि इस सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में कोई न कोई सार तत्व अवश्य होता है। उसी तरह, मनुष्य के शरीर का भी एक सर्वोच्च सार है — **वीर्य**। इसके बिना शरीर एक क्षण भी सक्रिय नहीं रह सकता। जो व्यक्ति ज्ञानी और विवेकशील होते हैं, वे इस अनमोल रत्न की पूरी सावधानी और प्रयास के साथ रक्षा करते हैं।

किन्तु आजकल के युवा केवल क्षणिक मनोरंजन के लिए इस **अनमोल रत्न** को व्यर्थ गंवा देते हैं। चाहे वे पुरुष हों या स्त्रियाँ, पलभर की शारीरिक सुख-संतुष्टि के लिए अपने जीवन की सबसे मूल्यवान संपत्ति — **वीर्य** — को नष्ट कर बैठते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि **वीर्य का नाश ही सर्वनाश का कारण बनता है।**

किसी भी राष्ट्र का भविष्य, उसकी प्रगति और गौरव की वृद्धि उसी देश के युवाओं पर निर्भर करती है। वास्तव में, युवा किसी देश की सबसे बड़ी पूँजी होते हैं — और युवाओं के शरीर में मौजूद यह अमूल्य तत्व, वीर्य, उसी पूँजी की असली धरोहर है। यही युवा आगे चलकर राष्ट्र निर्माण, उसकी उन्नति और वैभव के सशक्त स्तंभ बनते हैं। इसलिए, किसी देश का कल उसी के युवाओं की उच्च दृष्टि, सोच और आचरण पर आधारित होता है।

किन्तु अत्यंत दुःख की बात है कि आज के युवा स्वयं अपने ही हाथों से अपने जीवन की बुनियाद और सबसे मूल्यवान धरोहर को नष्ट कर रहे हैं — और दुर्भाग्यवश, इस गंभीर विषय पर किसी का विशेष ध्यान नहीं है। केवल संतजन, गुरुदेव और आत्मसिद्ध महापुरुष ही इस तेजस्वी ओजस्वरूप '**वीर्य**' की रक्षा का संदेश देते हैं।

वहीं दूसरी ओर, आधुनिक विचारधारा के लोग वीर्य को निकालने की सलाह देते हैं, मानो यह कोई सामान्य बात हो। जिस वीर्य को शरीर ने पूरे 30 दिनों की मेहनत से संचित किया होता है, उसे वे क्षण भर में व्यर्थ कर देने की बात करते हैं — बिना इसके दीर्घकालिक परिणामों को समझे।

वीर्य नाश का मूल कारण है — मैथुन।

हमारे शास्त्रों में आठ प्रकार के मैथुन का वर्णन किया गया है, और इनसे बचना ही **ब्रह्मचर्य** कहलाता है। यह श्लोक इसका स्पष्ट वर्णन करता है —

"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च।।

एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यं तदनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः।।"

अर्थात्, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले साधकों के लिए जिन आठ मैथुनों से बचना आवश्यक है, वे इस प्रकार हैं:

1. किसी स्त्री का बार-बार स्मरण करना या उस पर विशेष रूप से विचार करना।
2. स्त्रियों के सौंदर्य, गुण या अंगों की कल्पना करना, उनके बारे में श्रृंगार रस से युक्त गीत गाना या ऐसे ग्रंथों का अध्ययन करना।
3. स्त्रियों के साथ मनोरंजन के लिए ताश, चैपड़ जैसे खेल खेलना।
4. किसी स्त्री को वासना भरी दृष्टि से देखना या घूरना।
5. स्त्रियों से बार-बार मिलना, उनके साथ एकांत में बातचीत करना।

6. किसी स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा से मानसिक संकल्प करना; अश्लील चित्र, फिल्में, नाटक या वीडियो देखना और उनकी कल्पना में खो जाना।
7. वासना के वश होकर किसी स्त्री को पाने के लिए पापपूर्ण प्रयास करना।
8. शारीरिक रूप से सहवास करना — चाहे वह पराई स्त्री के साथ ही क्यों न हो।

इन सभी प्रकार के व्यवहार को शास्त्रों ने **मैथुन** कहा है, और इससे बचना ही सच्चा ब्रह्मचर्य है। ये आठ प्रकार के मैथुन विद्वानों द्वारा बताए गए हैं, और भगवत् मार्ग पर चलने वाले साधकों को इन सभी से सावधानीपूर्वक बचना चाहिए।

यूनान (ग्रीस) के महान दार्शनिक सुकरात से एक बार किसी ने प्रश्न किया,

"मनुष्य को स्त्री-सहवास कितनी बार करना चाहिए?"
सुकरात ने उत्तर दिया, "पूरे जीवन में केवल एक बार।"

प्रश्नकर्ता ने फिर पूछा, "यदि एक बार में संतुष्टि न हो तो?"
सुकरात बोले, "तो फिर वर्ष में एक बार।"

फिर पूछा गया, "यदि उतने में भी मन न माने?"
उत्तर मिला, "तो महीने में एक बार कर लें।"

प्रश्न फिर उठा, "अगर तब भी इच्छा शांत न हो?"
सुकरात ने कहा, "तो महीने में दो बार किया जा सकता है, लेकिन ध्यान रहे, इससे आयु घटेगी और मृत्यु जल्दी आएगी।"

अंत में पूछा गया, "और अगर तब भी मन न माने तो?"
तब सुकरात ने गंभीर होकर उत्तर दिया,

" तो फिर यही उचित होगा कि पहले अपने कफ़न और अंतिम संस्कार की सारी व्यवस्था घर पर कर लो — फिर जैसा मन चाहे वैसा करो। क्योंकि यह निश्चित नहीं कि मृत्यु कब दस्तक दे दे।"

यह संवाद इस बात को स्पष्ट करता है कि संयम ही दीर्घ जीवन और आत्मिक उन्नति का मार्ग है।

सार यह है कि वीर्य का नाश — सर्वनाश है।

वीर्य का जितना कम क्षय होगा, शरीर उतना ही अधिक स्वस्थ, मजबूत और ऊर्जावान बना रहेगा। इसके विपरीत, जितना अधिक व्यक्ति विषय-भोगों में लिप्त होगा, उसका मन उतना ही अधिक अशांत, मलिन, पतित और दुखी होता चला जाएगा।

परस्त्री के साथ सहवास तो शास्त्रों में पूरी तरह वर्जित है ही, लेकिन ब्रह्मज्ञान की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओं को अपनी पत्नी के साथ भी उन आठ प्रकार के मैथुनों से बचना चाहिए।

क्योंकि वास्तविक सहवास के अतिरिक्त भी यदि कोई व्यक्ति उन मानसिक, दृश्य या स्पर्श के माध्यम से होने वाले मैथुन में लिप्त होता है, तो उसका वीर्य स्खलित न होकर अंडकोषों में जमा होने लगता है, जिससे शरीर में अनेक विकार उत्पन्न होते हैं — जैसे धातु दुर्बलता, स्वप्नदोष, प्रमेह, मूत्र संबंधी रोग आदि।

इसलिए आत्मोन्नति के पथ पर चलने वालों के लिए संयम ही सबसे बड़ी शक्ति है।

आज की आधुनिक सभ्यता में मैथुन के अनेक प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध उपायों का भी प्रचलन बढ़ता जा रहा है। ये उपाय वास्तविक सहवास से भी अधिक घातक होते हैं और तीव्र गति से **वीर्य-नाश** का कारण बनते हैं। परिणामस्वरूप यह पापाचार लगातार बढ़ रहा है, जिसका असर आज के युवाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

शारीरिक और मानसिक रूप से युवा दिन-ब-दिन कमजोर होते जा रहे हैं —

गाल पिचक जाते हैं, चेहरा निस्तेज और पीला पड़ जाता है, स्मरणशक्ति घट जाती है, हृदय दुर्बल हो जाता है, आँखों में जलन रहती है, निरंतर आलस्य, उत्साहहीनता और नींद की कमी जैसी समस्याएँ आम होती जा रही हैं।

सार यह है कि आज का युवा वर्ग मानसिक, शारीरिक और आत्मिक रूप से अनेक नकारात्मकताओं से घिर चुका है। उनका जीवन मानो दुखों का महासागर बन गया है।

इन सभी परेशानियों का एकमात्र समाधान है — ब्रह्मचर्य का पालन।

शास्त्रों में कहा गया है:

"ब्रह्मचर्य के अभ्यास से आयु, तेज, बल, पराक्रम, बुद्धि, संपत्ति, यश, पुण्य और सत्यप्रियता — सभी में वृद्धि होती है।"

"आयुः, तेजः, बलं, वीर्यं, प्रज्ञा, श्रीः, यशः तथा।
पुण्यं च सत्प्रियत्वं च वर्धते ब्रह्मचर्यतः।।"

अतः जो युवा सच में सुख, सफलता और शांति चाहते हैं — उनके लिए ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम मार्ग है।

*****

हस्तमैथुन और उसके दुष्परिणाम

आजकल समाज में पहले अध्याय में बताए गए अष्ट मैथुनों के अतिरिक्त एक और मैथुन नवयुवकों में बड़े भीषण रूप से फैल गया है, जिसे हस्तमैथुन कहते हैं।

हस्तमैथुन का वर्णन –

हस्तमैथुन एक महा भयानक विनाशकारी प्राणघातक रोग है और समग्र विश्व के अधिकतम लोग इससे ग्रसित हैं। कुसंग, कुशिक्षा, दूषित आहार, दूषित वातावरण, सिनेमा, अश्लील साहित्य-चित्र, गंदे विज्ञापन, व्यसन, सोशल मीडिया, पोर्नोग्राफी और मनोरंजन एवं मिथ्या भ्रांति के कारण अज्ञानतावश वह चाहे बालक-बालिकाएं हों, नवयुवक-युवतियां हों, वृद्ध हों, सभी हस्तमैथुन के द्वारा ब्रह्मचर्य का नाश करके अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं। ऐसे लोग न ही गृहस्थ जीवन के लायक रह पाते हैं और न ही विरक्त जीवन के लायक! क्योंकि वीर्य ही शरीर का राजा है और इसके क्षीण होने से शरीर दुर्बल और तेजहीन हो जाता है।

वीर्य की एक भी बूंद निकालने का मतलब है पूरे शरीर को निचोड़ कर रस निकालना, अतः 'वीर्यपात' सब प्रकार से मनुष्य के अधःपतन का मूल है।

सामान्यतः जब पुरुष और महिला अपनी कामेच्छा की संतुष्टि के लिए संभोग करते हैं तो उसे मैथुन कहते हैं, जिसमें पुरुष एवं महिला, दोनों इस क्रिया में भाग लेते हैं, जबकि हस्तमैथुन में केवल एक ही व्यक्ति अपने हाथों से जननांगों को स्पर्श कर, सहलाकर काम सुख की अनुभूति करता है, जो संभोग के समय उसे होती है, उस क्रिया को हस्तमैथुन कहते हैं।

हस्तमैथुन से वीर्यपात मनुष्य को निकृष्ट भावना से युक्त कर देता है, उत्साहहीन और खोखला कर देता है। आरोग्य ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों का मूल यही है।

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् 1.14)

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का उत्तम साधन आरोग्य ही है। वीर्यवान पुरुष ही आरोग्यवान होता है।

चरक संहिता में लिखा है...

आहारस्य परं धाम, शुक्रं तद्-रक्ष्यमात्मनः।
क्षये यस्य बहून रोगान्मरणं वा नियच्छति।।

(चरक संहिता)

'मनुष्य के भोजन का सबसे उत्कृष्ट अंश वीर्य है, अतएव यत्न सहित उसकी रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि वीर्य के क्षय होने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, और इसका अंतिम परिणाम मृत्यु है।

अतः हमारे शास्त्रों की यह स्पष्ट आज्ञा है-

'अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्य स्खलनं विहाय
वीर्यं शरीरं संरक्ष्य ऊर्ध्वरेताः सततं भव।

'हाथ से शिश्नेन्द्रिय के द्वारा वीर्य-स्खलन नहीं करो अपितु वीर्य को शरीर में रक्षित कर ऊर्ध्वरेता बनो।

शरीर के भीतर 'मनोवहा' (manovahā) नामक एक नाड़ी है, इस नाड़ी के साथ शरीर की संपूर्ण नाड़ियों का सम्बन्ध है। काम भाव जागृत होते ही ये सब नाड़ियां कांप उठती हैं और शरीर के पैर से सिर तक के सारे यंत्र हिल जाते हैं, फिर रक्त का व संपूर्ण शरीर का मंथन होकर वीर्य उनसे अलग होकर नष्ट होने लगता है।

नव-किशोरावस्था —

शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में चार संज्ञाएं रहती हैं - आहार, निद्रा, भय और मैथुन...

आहार की संज्ञा/इच्छा जन्म से रहती है, भय और निद्रा भी जन्म से ही प्रगट में दिखती है, बच्चा डरता है और निद्रा का सुख भी लेता है। मैथुन की संज्ञा भी भीतर रहती है लेकिन वो जन्म के समय नहीं दिखती, बच्चा जब बड़ा होने लगे,

तब उद्दीपन होती है जब वह आठ साल का हो जाए, तब मैथुन भाव भी धीरे-धीरे प्रकट होने लगता है।

नवकिशोर अवस्था के बच्चे इस हस्तमैथुन की बीमारी से सबसे ज्यादा पीड़ित हैं। कुछ बच्चों को घर में ही अपने माता-पिता के साथ कम समय बिताने को मिलता है, और ज्यादातर उन्हें घर के नौकरों के साथ ही अपना समय बिताना पड़ता है। पेरेन्ट्स के व्यस्त होने के कारण उनकी परवरिश घर के नौकर करते हैं और बहुत से बच्चे छोटी उम्र में ही अपने ही घर में यौन शोषण के शिकार हो जाते हैं। वे विचार उनके मस्तिष्क में रह जाते हैं, जो आगे चलकर गंदी क्रिया में परिणिति हो जाते हैं और वे हस्तमैथुन के जाल में फंस जाते हैं।

दूसरा एक कारण यह भी है कि आजकल स्मार्ट मोबाइल फोन हर किसी बच्चे के हाथ में आ गया है। माता-पिता भी इन बातों पर ज्यादा ध्यान नहीं देते, और कम उम्र में ही बच्चों के हाथ में मोबाइल पकड़ा देते हैं। मोबाइल में वह सारी गंदी बातें, दृश्य, पोर्न वीडियो बड़ी आराम से Search करके देख सकता है।

किशोरावस्था में सेक्स हॉर्मोन का बदलाव आता है, और इसी अवस्था में युवक-युवतियों को स्कूल/कॉलेज में विपरीत लिंगी शरीरों के प्रति काम भाव और आकर्षण होने लगते हैं।

आधुनिक कुछ डॉक्टर्स ऐसा बताते हैं कि हस्तमैथुन से तनाव कम होता है, नींद अच्छी आती है, और अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए अन्य किसी की आवश्यकता भी नहीं रहती, और गर्भ रहने या कोई बीमारी जैसे कि एचआईवी, एसटीडी होने का भी कोई भय नहीं। ऐसी गलत भ्रांतियां अपने मन में पालकर नई उम्र के बच्चे हस्तमैथुन के अंध कूप में गिर रहे हैं।

युवावस्था—

युवा अवस्था पर पहुंचते ही युवाओं के शरीर में टेस्टोस्टरोन/एस्ट्रोजन अपने उच्च स्तर पर पहुंच जाता है, जिससे यौन इच्छाएं बहुत अधिक होने लगती हैं। इस अवस्था में लोग अपने शरीर की काम भावनाओं को अच्छे से समझने और भविष्य में बेहतर यौन अनुभव के लिए भी हस्तमैथुन की क्रिया की तरफ झुक जाते हैं।

मोबाइल/इंटरनेट के माध्यम से कामुकत्ता को उत्तेजित करने वाली पोर्नोग्राफी वेबसाइट्स और वीडियो बड़ी आसानी से उपलब्ध हैं, इसलिए भी हस्तमैथुन का प्रचलन आम हो गया है। बचपन से जो आदत पड़ गई होती है, उसे छोड़ने में असमर्थ होने के कारण भी वे हस्त क्रिया को बार-बार करके आनंद लेते हैं।

प्रौढ़ावस्था —

यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि केवल किशोरावस्था के या नौजवान लड़के-लड़कियां ही नहीं, किन्तु जो विवाहित हैं, मध्यम आयु के वयस्क हैं, ऐसे व्यक्ति भी इस हस्तमैथुन की लत से पीड़ित हैं। इस उम्र के लोगों में हस्तमैथुन की आदत के बहुत से कारण बताए गए हैं। जैसे कि -

- विवाहित जीवन में संभोग की कमी।
- पार्टनर की असहमति या कुछ स्वास्थ्य संबंधी कारण की वजह से भी हस्तमैथुन से अपने कामेच्छा की तृप्ति करता है।
- कभी-कभी पार्टनर के साथ संभोग के सुख से अतृप्त रहने के कारण भी लोग इस क्रिया का सहारा लेते हैं।
- अगर डाइवोर्स हो गया है या पत्नी-पति अलग-अलग रहते हों तो अकेलेपन के चलते मन में जब कामेच्छा जागृत होती है तब हस्तमैथुन से अपनी इच्छा पूरी करते हैं।
- अकेले में गंदी वीडियो देखने की आदत या सिर्फ मनोरंजन के लिए भी हस्तमैथुन की आदत में लिप्त हैं।

हमारे देश में लगभग प्रत्येक आयु/वर्ग के पुरुष और महिलाएं अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए हस्तमैथुन जैसी क्रिया का सहारा लेते हैं।

हस्तमैथुन प्रवृति के कारण —

एक बात तो यहां विचारणीय है कि चाहे बच्चे हों, नौजवान हों, वृद्ध हों, विवाहित हों या अविवाहित, स्त्री हो या पुरुष, सभी इस हस्तमैथुन की आसक्ति के कारण

जानबूझ कर पतन के गड्ढे में कूद रहे हैं और मृत्यु की ओर अपने कदम बढ़ा रहे हैं।

आयुर्वेद और हमारे मनीषियों के वचनों के अनुसार आज के युग में व्यक्ति के जीवन की बहुत सी ऐसी क्रियाएं हैं जो ध्यान में नहीं आती, और ऐसी क्रिया हस्तमैथुन की आदतों का कारण बन जाती है। जैसे कि –

- यदि मूत्रेन्द्रिय की ठीक प्रकार से सफाई न की जाए तो वहां खुजली होने लगती है, और हाथ स्वतः वहां जाने लगता है, परिणामस्वरूप हस्तमैथुन प्रारंभ हो जाता है। इसी पतन से बचने के लिए हमारे गुरूकुल के आचार्य बालकों को उपदेश देते थे कि 'हाथों से इन्द्रिय को स्पर्श मत करना,' कितना उच्च उपदेश था।
- इन्द्रिय के ऊपर दबाव पड़ने से भी व्यक्ति इसकी आदत में पड़ जाता है। उल्टे लेट कर पढ़ने से या उल्टे लेट कर सोने से भी इन्द्रिय पर दबाव पड़ जाता है। दोनों टांगों के बीच में आने वाली सवारियों जैसे- घोड़ा, ऊंट, साइकिल आदि पर चलने से भी कभी-कभी हस्तमैथुन की प्रवृति हो जाती है।
- भोजन भी काम उत्तेजना का एक प्रमुख कारण है, भोजन का मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद में आया है –

"आहार शुद्धौ सत्व-शुद्धिः
सत्व शुद्धौ, ध्रुवा स्मृतिः"

(छान्दोग्य उपनिषद)

"जब आहार शुद्ध होता है तो मन शुद्ध होता है, मन के शुद्ध होने से स्पष्ट स्मृति उत्पन्न होती है।"

हम जो खाते हैं, वह आहार के तीन भाग होते हैं- स्थूल भाग, मध्य भाग और अति सूक्ष्म भाग। जो अन्न खाते हैं उसका स्थूल भाग मल-मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है, मध्य भाग से सप्त धातु-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र आदि धातुएं बनती है, और जो सूक्ष्म भाग है उससे मन बनता है।

इसलिए जैसा अन्न खाते हैं, वैसा मन बनता है, जैसा मन वैसी बुद्धि, जैसी बुद्धि वैसा विचार, जैसे विचार वैसा जीवन, और जैसा जीवन वैसी गति। इसलिए आहार का इतना बड़ा प्रभाव है। मांस, मछली, अंडा, शराब, लहसुन, प्याज, चटपटे मसाले, कड़वे और तीखे रसों का सेवन, चाय और कॉफी शरीर में काम उत्तेजना को बढ़ाते हैं, और फिर उस इच्छा की पूर्ति के लिए हस्तमैथुन किए बिना रहा नहीं जा सकता।

शुक्र कीट नया जीवन उत्पन्न कर सकते हैं। यदि तनिक विवेक से सोचें कि जिस शुक्राणु को हस्तमैथुन के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है यदि वह शुक्राणु शरीर के भीतर ही रहे तो यह मनुष्य के मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक नवजीवन का कितना अच्छा संचार कर सकते हैं।

जिस रज और वीर्य की रक्षा से बड़े-बड़े योगी, मुनि, महात्मा, संत, भक्त, ज्ञानी, विद्वान, वैज्ञानिक, तर्क-शास्त्री उत्पन्न किए जा सकते हैं, उस अमूल्य निधि को केवल मनोरंजन या अतिकामुकता के चक्कर में नष्ट कर दिया जाता है। देश के लिए इससे अधिक दुःखद और सोचनीय बात और क्या हो सकती है?

हस्तमैथुन के दुष्परिणाम —

हस्तमैथुन का परिणाम बड़ा भयंकर होता है। इससे इन्द्रिय की नसें ढीली पड़ जाती हैं। वीर्य स्खलित होने लग जाता है, और तत्पश्चात् स्वप्नदोष भयंकर रूप धारण कर लेता है। वीर्य क्षय से जवानी में ही बुढ़ापे का अनुभव होने लगता है।

हस्तमैथुन से इन्द्रिय की निर्बलता, दृष्टि की कमी, सिर में दर्द, कमर, हाथ, पैर और जोड़ों में दर्द, आंखों के आगे अंधेरा छा जाना, कब्ज, बुद्धिनाश, स्वप्नदोष और प्रमेह जैसी भयानक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर पीला, तेजहीन, रोगी एवं दुर्बल हो जाता है। बार-बार वीर्य निकलने से शरीर को भारी धक्का पहुंचता है, हृदय कमजोर हो जाता है।

हस्तमैथुन से प्रवाहिका नली में जलन होने लगती है। बहुमूत्र की बीमारी लग जाती है। कुछ काल तक निरंतर हस्तमैथुन से इन्द्रिय शिथिल पड़ जाती है। फिर मैथुन में भी उत्तेजना नहीं आती। अंडकोषों पर दबाव पड़ने से उनमें भी दर्द रहने

लगता है। हस्तमैथुन से इन्द्रिय आगे से मोटी और पीछे से पतली हो जाती है। बहुत से व्यक्तियों की इन्द्रियों पर फोड़े-फुंसी निकल आते हैं।

रासायनिक परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि वीर्य में कैल्शियम और फॉस्फोरस बहुत अधिक मात्रा में होता है। जीवन के संचालन के लिए इन दोनों तत्वों का होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। हस्तमैथुन से वीर्यनाश होकर इनकी कमी हो जाती है और शरीर निर्बल हो जाता है।

हस्तमैथुन से मानसिक बीमारी के कारण लोग पागल हो जाते हैं। अस्पतालों में बहुत से पागलों को हस्तमैथुन करते पाया गया है, और यही उनके पागलपन का कारण है। एक बहुत विख्यात डॉक्टर ने कहा था कि प्लेग, चेचक और अन्य घातक व्याधियों से इतनी हानि नहीं पहुंचती जितनी हस्तमैथुन से होती है।

एक अनुभवी वैद्य ने कहा कि जिसे अपना नाश करके जीवित मुर्दा बनना हो, सुंदरता और तेजस्विता का नाश करना हो, रोगी, आलसी और कुरूप बनना हो, तो हस्तमैथुन जैसा, अपने हाथ से अपना नाश करने वाला कोई रामबाण नहीं है।

*****

द्वितीय खण्ड

ब्रह्मचर्य रहने के उपाय कब, क्यों और कैसे ?

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

(भगवद्गीता 2.58)

जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय-विषयों से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

ब्रह्मचर्य रक्षण की दिनचर्या

1. प्रातः जागरण
2. चक्षु: स्नान, उषा:पान और शौच
3. स्नान, संध्या
4. प्राणायाम
5. सत्संग-स्वाध्याय
6. भोजन
7. निद्रा
8. लंगोट बांधना
9. व्यायाम

1) प्रातः जागरण —

मनुस्मृति (4.92) में कहा गया है:

> **"ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।**
> **कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।।"**

अर्थात् व्यक्ति को ब्रह्म मुहूर्त में जागना चाहिए और धर्म तथा अर्थ के विषय में चिंतन करना चाहिए। उसे अपने शरीर में होने वाले कष्टों और उनके कारणों पर विचार करना चाहिए, साथ ही वेदों के तात्विक अर्थ का अध्ययन करना चाहिए।

चाहे कोई विरक्त हो या गृहस्थ, यदि वह जीवन में आत्मिक और नैतिक उन्नति करना चाहता है तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, तो उसे सबसे पहले प्रातः जल्दी उठने की आदत डालनी चाहिए। यह समय रात्रि के अंतिम प्रहर यानी ब्रह्म मुहूर्त (लगभग प्रातः 4 बजे के आसपास) का होता है।

एक अन्य शास्त्रीय वचन में कहा गया है:-

"ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः।।"

अर्थात् दीर्घायु की रक्षा हेतु व्यक्ति को ब्रह्म मुहूर्त में उठना चाहिए। शरीर की देखभाल कर, शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर, शुद्ध और शांत चित्त से ईश्वर का ध्यान तथा अन्य नित्यकर्म करना चाहिए।

प्रातःकाल जल्दी उठने के अनेक लाभ हैं — इससे शरीर स्वस्थ रहता है, रोग दूर रहते हैं, मन प्रसन्न और चित्त एकाग्र होता है, जिससे व्यक्ति अधिक समय तक कार्यक्षम बना रहता है।

ब्रह्मचर्य के अभ्यास में सफलता का पहला कदम हैं प्रातः जागरण।

गोभिल गृह्यसूत्र में भी प्रातः जागरण का महत्व स्पष्ट रूप से बताया गया है:

"प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यक कृत्वा"

अर्थात, व्यक्ति को प्रतिदिन रात्रि के अंतिम प्रहर यानी चौथे पहर में जागकर आवश्यक कार्यों को संपन्न करना चाहिए।

विशेषतः ब्रह्मचारी के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह रात्रि 3:30 बजे तक अवश्य जाग जाए। जागने के तुरंत बाद उसका मन सबसे पहले परमेश्वर के स्मरण में लगे। उसे गुरु द्वारा प्रदत्त नाम मंत्र का जप करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्ममुहूर्त में जप करने का फल कई गुना अधिक होता है।

रात्रि का अंतिम पहर पश्चिम याम ही ब्रह्ममुहूर्त कहलाता है। शास्त्रों में इस समय को अमृतबेला और देवबेला भी कहा गया है। यह विशेष काल है जब 'ब्रह्म', अर्थात् परमात्मा, ईश्वर, भगवान के कोई भी नाम राम, कृष्ण, हरि, शिव, राधा या फिर प्रणव 'ॐ' का स्मरण करने का श्रेष्ठतम अवसर होता है।

इस शुभ समय में साधकजन भक्ति और भजन में डूबे रहते हैं। परम करुणामय भगवान भी इस समय अपने सच्चे श्रद्धालु भक्तों पर आनंद और अमृत की वर्षा करते हैं।

इस समय चित्त की सारी वृत्तियाँ शांत और स्थिर होती हैं, जिससे आत्मा अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाती है और एक अनोखी शांति का अनुभव होता है। प्रकृति भी उस समय अत्यंत शांत, सौम्य और सुंदर होती है चारों ओर शांति, प्रसन्नता और दिव्यता का साम्राज्य छाया रहता है।

यह समय इतना पवित्र होता है कि पाप में रत व्यक्ति का भी मन स्वतः ही कुछ समय के लिए ईश्वर की ओर आकर्षित हो जाता है। संतजन और ब्रह्मचारी इसी काल में पूर्ण एकाग्रता से प्रभु की भक्ति और आत्मिक आनंद का रसपान करते हैं।

इसके विपरीत, जो मनुष्य प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठते, वे धीरे-धीरे स्वास्थ्य, दीर्घायु, बल, ब्रह्मचर्य, और जीवन की सफलता — सब कुछ खो बैठते हैं।

अतः हर वह व्यक्ति जो ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है या आत्मिक और व्यावहारिक उन्नति की इच्छा रखता है — उसे नित्य प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में जागने की आदत अवश्य डालनी चाहिए।

ब्रह्म मुहूर्त में जागना —

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वो ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ उसे ब्रह्म मुहूर्त में जागना चाहिए। ब्रह्म मुहूर्त में जागना केवल एक आध्यात्मिक अभ्यास नहीं, बल्कि हमारी जैविक, मानसिक और ऊर्जात्मक प्रणाली के पूर्ण सामंजस्य का रहस्य है। हमारे ऋषि-मुनि, जो सूक्ष्म विज्ञान के ज्ञाता थे, इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि मानव शरीर की जैविक घड़ी; Biological Clock—जिसे आज विज्ञान Circadian Rhythm; 'सर्कैडियन लय' कहता है—सूर्य-चन्द्रमा की लय से जुड़ी होती है।

ब्रह्म मुहूर्त में जागने पर मेलाटोनिन (नींद का हार्मोन); Melatonin Hormone, अपने न्यूनतम स्तर पर होता है, जिससे सहज जागरण होता है और Pineal Gland; पीनियल ग्लैंड, (तीसरी आंख) का कार्य पूर्ण हो चुका होता है। इसी समय कोर्टिसोल; Cortical Hormone (ऊर्जा व उत्साह देने वाला हार्मोन) धीरे-धीरे बढ़ता है, जो बिना झटके, प्राकृतिक रूप से हमें सक्रिय करता है, यानि नींद से जगाता है।

साथ ही, Acetylcholine जैसे न्यूरोट्रांसमीटर; Neurotransmitter, मस्तिष्क को सींचने, स्मरणशील बनाने और रचनात्मकता के लिए तैयार करते हैं। ब्रह्म मुहूर्त

में शरीर का हार्मोनल संतुलन, श्वास की लय, और मस्तिष्क की तरंगें एक अद्भुत समरसता में होती हैं। स्वर योग के अनुसार दोनों नासिकाएँ संतुलित होकर सुषुम्ना नाड़ी को सक्रिय करती हैं, जो ध्यान और आत्मबोध के लिए सर्वश्रेष्ठ अवस्था है। इस पावन बेला में मन शांत, ग्रहणशील और भीतर के ब्रह्मांड से जुड़ने के लिए पूर्णतः तैयार होता है — यह समय चेतना के सुपर एक्सप्रेसवे पर यात्रा का आरंभ है, जहां बाह्य वातावरण की शुद्धता और आंतरिक स्पंदनों की गहराई अद्वितीय रूप से मिलती हैं।

2) चक्षुः स्नान, उषाः पान और शौच आदि —

चक्षुः स्नान — प्रातः उठकर ईश्वर चिंतन के बाद आँखों का स्नान करना चाहिए।

शुद्ध और ताज़ा जल लेकर उसे पूरी तरह अपने मुख में भर लें, ताकि उसमें और जल मिलाने की आवश्यकता न पड़े। इस जल को मुंह में रखते हुए, शुद्ध जल से बार-बार दोनों आँखों में छींटे मारें। ऐसा करने से जो भी मलिनता या गर्माहट रात में सोते समय आँखों में जमा हो गई हो, वह पूरी तरह से दूर हो जाती है।

इस प्रक्रिया से आँखों की इन्द्रिय को भीतर और बाहर से ठंडक मिलती है, अनावश्यक मल और ऊष्मा खत्म हो जाती है, जिससे दृष्टि तेज होती है।

यह क्रिया रोजाना नियमित रूप से करनी चाहिए। आँखों की ज्योति बनाए रखने के लिए यह अत्यंत लाभकारी उपाय है। यदि इसे श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन किया जाए, तो नेत्र रोगों से बचाव होता है और वृद्धावस्था तक आँखों की चमक बनी रहती है।

उषाःपान — प्रातःकाल लगभग 4 बजे के बाद, शौच (मल-मूत्र त्याग) से पूर्व जो जल पीया जाता है, उसे उषाःपान कहा जाता है।

उषाःपान करने से पहले मुख और नासिका को अच्छी तरह कुल्ला करना आवश्यक होता है। पहले अपनी अंगुली से दांतों को अच्छी तरह रगड़कर साफ करें और फिर दो-तीन बार कुल्ला करें। इसके बाद नाक के दोनों छिद्रों को भी शुद्ध जल से अच्छी तरह धो लें।

उषाःपान दो प्रकार से किया जाता है — पहला, नासिका द्वारा और दूसरा, मुख के माध्यम से। दोनों प्रकार से इसका लाभ होता है।

शुरुआत में पहले मुख से जल पीने की आदत बनानी चाहिए। धीरे-धीरे, किसी विशेषज्ञ की सलाह से नासिका के द्वारा भी जल पीने का अभ्यास किया जा सकता है। यदि किसी को नासिका से जल पीने में असुविधा हो, तो वह मुख से ही जल पीते रहें।

जल पीने के बाद मूत्र त्याग (लघुशंका) अवश्य करें। ध्यान रखें कि मल और मूत्र त्याग से पहले ही उषा:पान करना अनिवार्य है।

उषा:पान के लिए जल हमेशा मीठा और शुद्ध होना चाहिए। गर्मी के मौसम में शाम को रखा हुआ बासी जल भी उपयोगी माना जाता है। बहुत ठंडा या बहुत गर्म पानी पीना हानिकारक होता है।

जिन लोगों को कब्ज की समस्या रहती है, वे शाम को तांबे के पात्र में जल रखकर प्रात: उसका सेवन करें। यह विधि भी लाभकारी होती है।

उषा:पान के लाभ —

आयुर्वेद के शास्त्रों में उषा:पान के अनेक लाभ विस्तार से वर्णित हैं। धन्वन्तरि संहिता में उल्लेख है:-

"जो व्यक्ति सूर्योदय से कुछ पहले आठ अञ्जलि शुद्ध जल पीता है, उसे रोग और बुढ़ापा नहीं छू पाते। वह सदैव स्वस्थ और युवा बना रहता है, तथा उसकी आयु सौ वर्ष से भी अधिक होती है।"

भावप्रकाश में लिखा है कि उषा:पान से बवासीर, सूजन, संग्रहणी ज्वर, पेट से संबंधित अन्य रोग, बुढ़ापा, कुष्ठ रोग, मोटापा (मेदरोग), मूत्र रुकावट, रक्तपित्त, नेत्र, कान, नाक, सिर, कमर, गला आदि स्थानों की पीड़ा, वात, पित्त, कफ और फोड़े जैसे अनेक रोग दूर हो जाते हैं।

विशेष रूप से, चक्षु से सम्बंधित सभी रोगों में उषा:पान अत्यंत लाभकारी होता है और इससे नेत्रों की ज्योति भी बढ़ती है।

इसलिए ब्रह्मचर्य पालन के लिए प्रत्येक स्वस्थ पुरुष और महिला को प्रतिदिन मुख या नासिका के माध्यम से उषा:पान का अमृतमय जल ग्रहण कर अमूल्य स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करना चाहिए।

शौच — जल पीने के बाद पहले लघुशंका (मूत्र त्याग) करें, उसके पश्चात् मल त्याग (शौच) करें। शौच के दौरान मुख और दांत बंद रखना चाहिए और मोबाइल या अन्य किसी चीज़ पर बात नहीं करनी चाहिए। शौच के समय ज़ोर लगाना या खाँसना हानिकारक होता है क्योंकि इससे वीर्य नष्ट हो सकता है। इसलिए जो मल स्वाभाविक रूप से निकलता है, वही ठीक रहता है।

मल या मूत्र रोकने से अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं। ब्रह्मचारी को मल-मूत्र त्याग का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सभी कार्यों को छोड़कर भी सही समय पर शौच जाना अत्यंत आवश्यक है। यदि कभी शौच करने की इच्छा न भी हो, तब भी शौच के लिए जाना चाहिए। भले ही उस समय मल विसर्जन न हो, इससे मल की गर्माहट कम हो जाती है और शरीर को कोई हानि नहीं होती।

किन्तु जो लोग यह सोचकर बैठे रहते हैं कि शौच जाने की इच्छा जब होगी तब जाएंगे, उनका स्वभाव बिगड़ने लगता है। मल की गर्माहट से आंखों की चमक कम होने लगती है, बल और वीर्य भी कमजोर होने लगता है। भोजन में अरुचि होती है और सिर में पीड़ा शुरू हो जाती है।

आयुर्वेद की सुश्रुत संहिता में कहा गया है:-

"आयु का आधार है मल-मूत्र का समय पर त्याग। प्रातःकाल शौच करने से आंतों की गड़गड़ाहट, पेट की सूजन और भारीपन जैसी बीमारियाँ दूर होती हैं।"

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।
तदंत्र कूजनाध्मानोदरगौरव वारणम्।।

(सुश्रुत संहिता। चिकित्सास्थान। अ. 24 श्लोक)

जो लोग प्रातःकाल शौच नहीं करते और देर से मल-मूत्र त्याग करते हैं, उनके पेट में मल भीतर ही सड़कर दुर्गंधयुक्त और विषैले पदार्थ में बदल जाता है। गुदा में कैंची के काटने जैसा तेज दर्द होने लगता है। अपान वायु की गति उल्टी दिशा में चलने लगती है, जिससे मल ऊपर की ओर चढ़कर जठराग्नि (पेट की आग) में जाकर पचता है। इससे शरीर का रक्त दूषित हो जाता है।

शौच खुल कर नहीं हो पाता और पेट में अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होकर तीव्र पीड़ा होती है।

इस प्रकार वायु से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए कहा गया है —

"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपित मलः।"

अर्थात् संसार में जितने भी रोग हैं, उनकी उत्पत्ति मल के कुपित होने से होती है। ऐसा मल जो बाहर निकलते समय इतनी भयंकर दुर्गंध फैलाता है कि लोग उससे दूर भागते हैं, वह भीतर पड़ा हुआ कभी सुगंधित कैसे हो सकता है?

मल-मूत्र रोकने वाला व्यक्ति कैसे सुखी और स्वस्थ रह सकता है, यह विचारने की आवश्यकता है। जो ब्रह्मचारी उपर्युक्त बातों का ध्यान नहीं रखता और मल-मूत्र के त्याग में आलस्य या प्रमाद करता है, वह अपने ब्रह्मचर्य को खो बैठता है।

मल-मूत्र की उष्णता से पूरे शरीर में गर्मी और विष फैल जाता है, जिससे इंद्रियां क्षुब्ध और चंचल हो उठती हैं। इंद्रियों में इस अस्वाभाविक चंचलता और उत्तेजना के कारण मनुष्य रोगी और कामी बन जाता है, जिससे वीर्य दूषित होकर अनेक अनर्थ और रोगों का सामना करना पड़ता है।

समय पर मल-मूत्र का त्याग करना और शौच की सफाई बनाए रखना दैनिक जीवन में स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता, तेज, पराक्रम, स्मृति, बुद्धि जैसे सद्गुणों की वृद्धि का कारण होता है। मल-मूत्र की उष्णता से वीर्य नष्ट हो जाता है, और वीर्य का नाश अपने स्वास्थ्य पर कुल्हाड़ा चलाने के समान है। शास्त्रों में भी इसका उल्लेख है —

'धातुक्षयात् रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः।'

अर्थात वीर्य नाश होने से रक्त और अन्य धातुएं कमजोर, दूषित और नष्ट हो जाती हैं। वीर्य, जो बल का स्रोत है, के बिना जठराग्नि भी मंद होकर अपना कार्य

करना बंद कर देती है। वीर्य और रक्त जैसी धातुओं के प्रवाह से शरीर के अंगों में आवश्यक उष्णता और शक्ति बनी रहती है।

जब ये तत्व कमजोर हो जाते हैं, तो शरीर के सभी कार्य प्रभावित हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे विद्युत की धारा बंद होने पर कारखाना बंद हो जाता है। जठराग्नि का मंद होना और आंतों का दुर्बल पड़ना स्वाभाविक है। जब जठराग्नि और आंतें सही तरह से काम नहीं करतीं, तो मलावरोध या कब्ज जैसी समस्याएं स्थायी रूप ले लेती हैं, जो वीर्य नाश का मुख्य कारण बनती हैं।

जिनके पेट में मल पड़ा रहता है, उन्हें स्वप्नदोष जैसी समस्याएं भी होती हैं। इसलिए मल-मूत्र और अपान वायु के वेगों को रोकना हानिकारक है; इससे कोई लाभ नहीं होता।

'न वेगान् धारयेत्-धीमान् जातान् मूत्र पुरीषयोः।'

(चरक सूत्र ७।२)

अर्थात्, मल, मूत्र, अपान-वायु (पाद), छींक, डकार, जम्हाई आदि प्राकृतिक वेगों को किसी भी स्थिति में ब्रह्मचारी या किसी भी व्यक्ति को रोकना उचित नहीं है। महर्षि पतंजलि ने भी कहा है कि लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान, अहंकार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अतिराग और परधन की इच्छा जैसे वेगों को रोकना चाहिए, विशेषकर जब वे दूसरों को कष्ट पहुंचाएं। लेकिन शारीरिक वेगों जैसे मल-मूत्र आदि को रोकना अति मूर्खता है और ब्रह्मचर्य के लिए बहुत हानिकारक होता है।

इसलिए, ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य की रक्षा के लिए प्रातः और सायं निर्धारित समय पर मल-मूत्र का त्याग करना न केवल ब्रह्मचारियों के लिए, बल्कि सभी के लिए अत्यंत आवश्यक है। यदि शौच न भी हो तो भी दोनों समय शौच के लिए जाना चाहिए, लेकिन जब मल न निकले तो जबरदस्ती या बलपूर्वक निकालने का प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह उचित तरीका नहीं है।

यदि कब्ज की समस्या लगातार बनी रहती है, तो रात में ईसबगोल या त्रिफला का सेवन करना लाभदायक होता है। शौच के पूर्व जल पीना चाहिए और पश्चिमोत्तान आसन, मयूरासन जैसे हल्के व्यायाम और पेट की मालिश करनी

चाहिए ताकि पेट अच्छी तरह सक्रिय हो जाए, फिर शौच के लिए जाना चाहिए। शौच के बाद गुदा द्वार को अच्छी तरह साफ जल से धोना अत्यंत आवश्यक है। चरक संहिता के अध्याय 5, श्लोक 95 में बताया गया है कि पैर और मल मार्ग जैसे नाक, कान, गुदा, उपस्थेन्द्रिय (genitals) आदि अंगों को नियमित रूप से मल-मुक्त और स्वच्छ रखने से बुद्धि, पवित्रता और आयु में वृद्धि होती है।

गुदा द्वार की स्वच्छता का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे वीर्य को शीतलता मिलती है, क्योंकि वीर्य-वाहक नाड़ियाँ यहीं से होकर बाहर निकलती हैं। इससे ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है और मूत्राशय (मसाना), बवासीर सहित गुदा के अन्य रोग दूर रहते हैं।

मल-मूत्र का नियमित त्याग और शरीर के बारह प्रकार के मल की शुद्धि अत्यंत आवश्यक है। वसा (चर्बी), वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नाक का मैल, कान का मैल, कफ, आंसू, आंख का मैल और पसीना — ये सभी मनुष्य के बाह्य मल माने जाते हैं। इन्हें साफ रखने के लिए मनुस्मृति के अध्याय 5, श्लोक 135-136 में बताया गया है कि मूत्रेंद्रि (मूत्र का मार्ग) को एक बार, गुदाद्वार को तीन बार, बांए हाथ को दस बार और दोनों हाथों को सात बार मिट्टी लगाकर स्वच्छ करना चाहिए।

मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि और स्नान —

मूत्रेन्द्रिय के सिरे पर जो छोटा छिद्र होता है, उसके ऊपर प्रतिदिन कई बार ठंडे पानी की बहुत महीन धारा डालनी चाहिए। इसे 2-3 मिनट तक लगातार डालने से बहुत लाभ मिलता है। ठंडी जल की इस धारा से मूत्रेन्द्रिय ठंडा रहता है, जिससे सम्पूर्ण शरीर में भी शांति और ठंडक बनी रहती है।

यदि मूत्रेन्द्रिय में जलन या गर्मी हो जाती है, तो इससे पूरे शरीर में उष्णता और अग्नि उत्पन्न हो जाती है, जो वीर्य नाश का मुख्य कारण बनती है। इसलिए मूत्र त्याग के बाद जननेन्द्रियों को ठंडे जल से धोना आवश्यक है। दिन में कई बार मूत्रेन्द्रिय का स्नान करना अत्यंत लाभदायक होता है।

प्राचीन समय में मूत्र त्याग के समय जल का पात्र साथ ले जाना इसी कारण से था, क्योंकि मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि और स्नान वीर्य की रक्षा का गहरा रहस्य है। इससे स्वप्नदोष, प्रमेह (शौच या मूत्र त्याग के समय वीर्य स्खलन) जैसे रोगों से राहत मिलती है। स्वप्नदोष में भी यह क्रिया अत्यंत फायदेमंद होती है क्योंकि यह मूत्रेन्द्रिय की अनावश्यक जलन को समाप्त कर देती है।

साबुन का प्रयोग —

शौच के बाद हाथों को साबुन से अच्छी तरह धोना चाहिए। पुराने जमाने के लोग आज भी मिट्टी या रज से हाथ धोना पसंद करते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि मिट्टी में प्राकृतिक रूप से दुर्गन्ध दूर करने की अद्भुत क्षमता होती है। वे कहते हैं कि मिट्टी दुर्गन्ध को जितनी दूर कर सकती है, उतनी शक्ति किसी अन्य पदार्थ में नहीं होती।

दन्त रक्षा —

ब्रह्मचारी के लिए प्रातः काल उठने के बाद चक्षु स्नान, उषा:पान और शौच के पश्चात् शरीर के ऊपरी भाग की शुद्धि करनी चाहिए। रात्रि में सोने के बाद जब व्यक्ति जागता है, तो मुँह के अंदर गंदगी जमा होती है, जिससे मुख और दांतों से दुर्गन्ध आने लगती है। इस दुर्गन्ध को दूर करना और दांतों की सफाई करना अत्यंत आवश्यक होता है। ऋषि-मुनि प्रतिदिन दन्तधावन (दातौन) का प्रयोग करते थे।

चरक सूत्र (5.69) के अनुसार:

"आपोथिताग्रं द्वौ कालौ कषायकटुतिक्तकम्।
भक्षयेत् दन्तपवनं दन्तमांसान्यावधयन्।।"

अर्थात्, यदि संभव हो तो दिन में दो बार कषैले, कटु और तिक्त रस प्रधान वृक्ष की दातौन या किसी अच्छे दंतमंजन से ब्रश करके दांतों और मसूड़ों की सफाई करनी चाहिए, जिससे वे स्वस्थ और अभिघात से मुक्त रहें। चूर्ण, तेजोवल्यादि दंत मंजन का भी नियमित उपयोग दांतों की सफाई और स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है।

प्रतिदिन दन्तशोधन (दातौन) करने से जीभ, दांत और मुख के अंदर जमा हुआ मैल साफ हो जाता है, जिससे दुर्गन्ध और कड़वाहट दूर हो जाती है। इससे दूषित कफ बाहर निकलता है, मुख की चिकनाई कम होती है, और खाने में रुचि तथा मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती है। दांतों की सफाई अत्यंत आवश्यक है क्योंकि मुख शरीर का वह अंग है जिससे भोजन पेट तक पहुँचता है, और दांत भोजन को चबाकर पचाने लायक बनाते हैं।

यदि संभव हो तो कटु वृक्षों जैसे करंज, कनेर, मालती, अर्जुन, असन (विजयसार) तथा इनके समान गुण वाले अन्य वृक्षों की दातौन का उपयोग किया जा सकता है। कड़वे वृक्षों में नीम, बबूल और कषैले वृक्षों में खैर, तथा मधुर वृक्षों में महुआ की दातौन श्रेष्ठ मानी जाती है।

3) स्नान—

गुदा तथा अन्य मल द्वारों और चक्षु समेत इन्द्रियों के अलावा शरीर के असंख्य त्वचा-छिद्रों (रोमकूप, मसाने) के माध्यम से निरंतर मल निकलता रहता है, जो पसीने के साथ मिलकर निकलता है। पसीना जल के रूप में भाप बनकर उड़ जाता है, लेकिन मल का हिस्सा त्वचा की सतह पर जमा हो जाता है और छिद्रों के मुख को बंद कर देता है।

इसका स्पष्ट संकेत शरीर से बदबू आना है। यदि इसे ठीक से धोया न जाए, तो समय के साथ त्वचा पर एक पतली झिल्ली जम जाती है, जिससे बालों के रोमकूप बंद हो जाते हैं और शरीर के अंदर से नया मल बाहर निकल नहीं पाता। इससे शरीर में मल जमा होने अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, बाहर की धूल-मिट्टी भी त्वचा पर जमा हो जाती है।

इसलिए इस जमे हुए मल को साफ करने और शरीर को स्वच्छ रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए नियमित स्नान आवश्यक है।

चरक संहिता में लिखा है -

"पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीरबलसन्धानं स्नानमोजस्करं परम्।।९४।।"

(अ0 5 /91)

महर्षि चरक ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ चरक संहिता में बताया है कि स्नान से शरीर पवित्र होता है, वीर्य और आयु बढ़ती है। स्नान से थकावट, पसीना और मल साफ होते हैं, शारीरिक बल बढ़ता है तथा ओज (शक्ति) की वृद्धि होती है।

सुश्रुत संहिता (चिकित्सा अध्याय 24, **श्लोक 57–59)** में बताया गया है कि:

स्नान से नींद, शरीर में जलन, थकावट, पसीना, खुजली और अत्यधिक प्यास जैसी समस्याएं दूर होती हैं। यह हृदय के लिए अत्यंत लाभकारी है और शरीर की मल शुद्धि के सभी उपायों में सबसे श्रेष्ठ माना गया है। स्नान के द्वारा सभी इन्द्रियाँ शुद्ध होती हैं, तंद्रा (नींद जैसा भारीपन) और पाप-प्रवृत्तियाँ नष्ट होती हैं।

स्नान मन को प्रसन्नता प्रदान करता है, पुरुषत्व (ऊर्जा, आत्मबल) को बढ़ाता है, रक्त को शुद्ध और संतुलित करता है तथा पाचन अग्नि को भी तेज करता है।

इसलिए नियमित स्नान केवल शारीरिक सफाई का ही नहीं, बल्कि मानसिक और आत्मिक उन्नति का भी एक आवश्यक अंग है।

स्नान की विधि —

अधिकतर लोग स्नान करते समय बहुत जल्दबाज़ी करते हैं। जैसे ही उन्हें शीतल या गुनगुना, स्वच्छ या अशुद्ध जो भी पानी मिल जाता है, वे कुछ लोटे पानी शरीर पर डालकर स्नान पूरा कर लेते हैं। कई बार तो शरीर पूरी तरह भीगता भी नहीं और वे स्नान समाप्त मान लेते हैं। ऐसा स्नान व्यर्थ होता है और इसका कोई विशेष लाभ नहीं मिलता है।

इसलिए हर ऋतु में, विशेषकर गर्मी के मौसम में, स्नान शुद्ध और पर्याप्त शीतल जल से करना चाहिए, और उसे धीरे-धीरे, पूरे शरीर को अच्छी तरह रगड़ते हुए करना चाहिए। यह *घर्षण स्नान* शरीर से संचित मल, धूल और पसीने की परतों को पूरी तरह हटाता है और शरीर को स्वच्छ, शांत और ठंडा करता है।

गर्मी के दिनों में सभी लोगों को दिन में दो बार स्नान करना चाहिए—यह न केवल स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, बल्कि मानसिक ताजगी भी देता है। विशेष रूप से *ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों* के लिए सभी ऋतुओं में भोजन से पूर्व दिन में दो बार स्नान करना अत्यंत आवश्यक है।

कुछ ब्रह्मचारी तो रात में सोने से पहले भी स्नान करते हैं। इसका विशेष लाभ यह है कि रात्रि में शुद्ध और शांत शरीर के कारण *स्वप्नदोष* जैसी समस्याएं उत्पन्न नहीं होतीं। इस प्रकार नियमित और विधिपूर्वक किया गया स्नान न केवल शरीर की शुद्धि करता है, बल्कि ब्रह्मचर्य की रक्षा में भी सहायक होता है।

स्वप्नदोष और स्नान का संबंध —

स्वप्नदोष से पीड़ित व्यक्ति, चाहे वह गृहस्थ हो या ब्रह्मचारी, उसे *सायंकाल अवश्य स्नान करना चाहिए*। ऐसे लोगों को दिन में दो बार या ज़रूरत पड़ने पर *तीन बार स्नान* करना विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है। इससे स्वप्नदोष की घटनाएं कम हो जाती हैं और कई बार तो केवल नियमित स्नान से ही यह समस्या पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

हर ऋतु में, चाहे पुरुष हों या महिलाएं, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी—*सभी को शीतल जल से स्नान करना चाहिए*। विशेष रूप से ब्रह्मचारियों के लिए गर्म पानी से स्नान *हानिकारक* माना गया है, क्योंकि

"उष्ण जल से स्नान करना वीर्यनाश को आमंत्रण देना है।"

स्नान की शुरुआत हमेशा *नाभि के नीचे* शीतल जल की पर्याप्त धार डालने से करें। मूत्रेन्द्रिय और उसके आसपास के क्षेत्र को भी अच्छी तरह धोना चाहिए, लेकिन उसे रगड़ना या मलना नहीं चाहिए, क्योंकि इससे *वीर्य को नुकसान* पहुंच सकता है।

इस स्थान की सफ़ाई अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इससे शरीर की शुद्धता तो बनी रहती है, साथ ही *ब्रह्मचर्य पालन में भी सहायता* मिलती है।

शास्त्रों में कहा गया है —

"शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यमिति निर्दिशे",

अर्थात् शीतल जल से सिर पर स्नान करना नेत्रों के लिए भी अत्यंत हितकारी होता है।

इसलिए सही विधि से और उचित जल का उपयोग करते हुए किया गया स्नान न केवल शरीर को शुद्ध करता है, बल्कि मानसिक संतुलन और ब्रह्मचर्य की दृढ़ता के लिए भी आवश्यक है।

स्नान का उपयुक्त स्थान —

स्नान के लिए नदी को सर्वश्रेष्ठ स्थान माना गया है। इसके अलावा तालाब और कुएं भी पारंपरिक रूप से स्नान के लिए उपयुक्त माने जाते हैं।

हालांकि आजकल की आधुनिक जीवनशैली और सुविधाओं की सीमाओं के चलते, सभी को नदी, तालाब या कुएं जैसे प्राकृतिक जलस्रोत उपलब्ध नहीं होते। ऐसी स्थिति में बाथरूम में भी स्नान करना स्वीकार्य है। स्नान कहीं भी किया जाए—मुख्य बात यह है कि जल शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल होना चाहिए। यही स्नान का वास्तविक लाभ देता है।

स्नान से जुड़ी कुछ आवश्यक बातें —

1. स्नान करते समय शरीर के सभी अंगों को अच्छी तरह रगड़कर स्नान करना ब्रह्मचारी के लिए अत्यंत लाभकारी है, हालांकि मूत्रेन्द्रिय को रगड़ना नहीं चाहिए। विशेष रूप से पैर की उंगलियों के बीच के भाग को अंगूठे से एक-दो मिनट तक रगड़ने की क्रिया ब्रह्मचर्य रक्षा में मददगार होती है, क्योंकि पांव के अंगूठों की मोटी नसों का संबंध मूत्रेन्द्रिय से होता है। जब इन नसों पर हल्का दबाव पड़ता है तो अनावश्यक उत्तेजना कम हो जाती है। इसी उद्देश्य से ब्रह्मचारी और संन्यासी प्रायः खूँटी वाली खड़ाऊ पहनते हैं, जो इन नसों को संतुलित दबाव देती हैं।

2. स्नान हमेशा भोजन से पहले करना चाहिए, ताकि पाचन क्रिया में बाधा न आए।
3. स्नान करते समय केवल लंगोट या कम वस्त्र पहनें, ताकि शरीर खुला रहे और जल व सफाई का प्रभाव ठीक से हो।
4. वर्षा का जल अत्यंत शुद्ध और हल्का माना गया है। शास्त्रों में उल्लेख है कि ब्रह्मचारी को वर्षा में स्नान का विशेष आनंद लेना चाहिए, विशेषकर शरद ऋतु में वर्षा का जल अति उपयोगी होता है, क्योंकि यह अधिक शुद्ध और शरीर के लिए हितकारी होता है।

संध्या का महत्व —

ब्रह्मचर्य के पालन हेतु दैनिक कार्यों में संध्या और ईश्वर-भक्ति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। स्नान के बाद न केवल ब्रह्मचारी, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह कम-से-कम एक घंटा संध्योपासना में व्यतीत करे।

"ब्रह्म इष्णन् चरति इति ब्रह्मचारी" — अर्थात् जो ब्रह्म की प्राप्ति और अनुसंधान में अपने जीवन को समर्पित करता है, वही सच्चा ब्रह्मचारी है। ऐसा व्यक्ति गुरु की शिक्षा, सत्संग, और स्वाध्याय में निरंतर लगा रहता है।

संध्या का अर्थ पंचमहायज्ञ-विधि में इस प्रकार बताया गया है —

"संध्यायन्ति संध्यायते वा परं ब्रह्म यस्तां सा संध्या"

अर्थात् जो परम ब्रह्म का ध्यान करते हैं या जिसमें परम ब्रह्म का स्मरण हो, वही संध्या है।

शास्त्रों के अनुसार,

"रात्रि और दिन के संधिकाल में, अर्थात् प्रातः और सायं, हर मनुष्य को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए।"

इसलिए संध्या केवल एक अनुष्ठान नहीं, बल्कि आत्मिक उन्नति और ब्रह्मचर्य की रक्षा का सशक्त साधन है।

संध्या से पहले बाह्य शुद्धि (जल आदि से शरीर की सफाई) और भीतरी शुद्धि (राग–द्वेष जैसे मानसिक विकारों का त्याग) आवश्यक है। केवल शरीर की नहीं, अंत:करण की शुद्धता भी उतनी ही ज़रूरी है, क्योंकि यही परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।

ब्रह्मचारी को गुरु द्वारा निर्धारित दिनचर्या का नियमित पालन करना चाहिए। इसमें नाम–जप, मंत्र–जप, शास्त्रों का स्वाध्याय, सत्संग का श्रवण, ध्यान और ईश्वर–चिंतन शामिल हैं। इन अभ्यासों से मन की अशुद्धियाँ दूर होती हैं और अंत:करण शुद्ध होता है।

अनेक साधकों को यह समस्या रहती है कि संध्या के समय मन एकाग्र नहीं होता, उसका मुख्य कारण है — मंत्रों का अर्थ न जानना और चिंतन में गहराई की कमी। अत: संध्या के समय एकाग्रता और समर्पण के साथ साधना करनी चाहिए।

ब्रह्मचारी के लिए नाम–जप और मंत्र–जप ही ब्रह्मचर्य की रक्षा का मुख्य साधन माने गए हैं। यदि रात के समय जप करते हुए थकान या निद्रा आने लगे तो थोड़ी देर गहरी नींद लें, और फिर उठकर पहले की भांति प्रणव (ॐ) या गुरु द्वारा दिए गए मंत्र का जप पुन: प्रारंभ करें।

जब कोई साधक सच्चे हृदय, आत्मा और संपूर्ण सामर्थ्य से परमेश्वर का भजन करता है, तब करुणामय परमात्मा उसे अपने आनंद–सागर में निमग्न कर देता है।

महाभारत के अनुशासन पर्व (अध्याय 104, श्लोक 19) में बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर को दीर्घायु प्राप्ति का रहस्य बताते हुए कहा है—

"ऋषयों ने नित्य संध्या का पालन कर धर्म और दीर्घायु प्राप्त की। इसलिए मनुष्य को प्रात: और सायं काल वाणी पर संयम रखते हुए मौन भाव से संध्या करनी चाहिए।"

इस श्लोक के अनुसार, जो साधक एवं ब्रह्मचारी विधिपूर्वक नियमित रूप से संध्योपासना करते हैं, वे न केवल अपने जीवन को पवित्र बनाते हैं, बल्कि दीर्घायु और आत्मिक शांति भी प्राप्त करते हैं।

नित्य नियम से संध्या, नाम-जप और मंत्र-जप करने से अंत:करण शुद्ध होता है और ब्रह्मचर्य पालन में बल मिलता है।

यह साधना ही मन की स्थिरता, संयम और आत्मिक प्रगति का सशक्त माध्यम है।

4) प्राणायाम —

वीर्य की रक्षा के लिए प्राणायाम को सर्वोत्तम और प्रमुख साधनों में एक माना गया है, क्योंकि मन, प्राण और वीर्य—इन तीनों के बीच अत्यंत गहरा संबंध होता है। प्राण जिस दिशा में चलता है, मन और वीर्य भी उसी ओर प्रवृत्त होते हैं। इसलिए जब प्राणायाम के माध्यम से प्राणों पर नियंत्रण किया जाता है, तो मन पर भी अधिकार स्थापित होता है, और परिणामस्वरूप कुविचारों पर संयम संभव हो जाता है।

प्राणायाम के अभ्यास से वीर्य की ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाती है—यानी शुक्रकोष में स्थित वीर्य ऊपर की ओर खिंचने लगता है। इससे न केवल शारीरिक बल में वृद्धि होती है, बल्कि इन्द्रियों के दोष भी समाप्त होते हैं।

प्राणायाम का एक और महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह बुद्धि में जमे तमोगुणीय मल को दूर करके सत्त्वगुण की वृद्धि करता है, जिससे मन, बुद्धि और आत्मा—तीनों में स्थिरता, शक्ति और पवित्रता आती है।

मन बहुत बलशाली लेकिन अत्यंत चंचल तत्व है। इसे वश में करना उतना ही कठिन है जितना वायु को नियंत्रण में रखना। किंतु जब मन नियंत्रित हो जाए, तो साधक अपने अंतिम लक्ष्य तक आसानी से पहुँच सकता है।

प्राणायाम की विशेष विधियाँ वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाने में सहायक होती हैं। इनसे श्वास-प्रणाली पर नियंत्रण स्थापित होता है, जिसमें फेफड़े प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इस तरह प्राणायाम केवल श्वास का अभ्यास न होकर, *शरीर, मन और वीर्य*—तीनों के संतुलन और शुद्धिकरण का श्रेष्ठ साधन है।

ब्रह्मचारी को केवल लंगोट बांध कर ही आसन में बैठना चाहिए।

विधि – पहले सिद्ध आसन पर बैठ जाएं। उसकी विधि इस प्रकार है कि बांये पैर की एड़ी अण्डकोश और गुदा इन्द्रिय के बीच में जो स्थान है उस पर लगाएं। यह वह स्थान है जिसमें वीर्य वाहक नाड़ियां जाती हैं। इन्हीं में से वीर्य बाहर निकलता है।

इसलिए पैर की एड़ी को इन नाड़ियों पर दबा कर लगाना चाहिए। दांये पैर की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपर लगाएं, दोनों पैरों के गट्टे मिले हुए हों। दोनों पैरों के घुटने भूमि पर लगे हुए हों।

- सिर, (गर्दन) ग्रीवा, मेरूदण्ड (रीढ़ की हड्डी), सब सम रेखा में (एक सीध में) रहने चाहिए। एक कपड़े की छोटी सी गद्दी बना कर गुदा के नीचे रख लो, जिससे वीर्यवाहक नाड़ियों पर अधिक बल पड़े।
- दोनों हाथों को तानकर दोनों घुटनों पर रखो। शरीर खींचा हुआ और छाती तनी हुई हो।
- एक बार पूरा श्वास बाहर निकाल दें। ध्यान रहे, सारा श्वास एक ही बार बाहर निकालें, झटके देकर नहीं। श्वास निकलने से पूर्व नाभि के नीचे से मूत्र-इन्द्रिय को ऊपर की ओर खींचे।
- जब सारा श्वास-हृदय, फेफड़ों और उदरादि का-बाहर निकल जाए, तो पेट को अन्दर की ओर खींचे रहें। बाहर का श्वास यथाशक्ति बाहर ही रोकें। यह बाह्य कुम्भक कहलाता है, धीरे से श्वास छोड़ दें।
- इस प्रकार पहले बाह्य कुम्भक का अभ्यास काफी समय तक करना चाहिए। फिर दूसरे प्राणायाम का अभ्यास यानि आभ्यन्तर कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। एक प्राणायाम की सिद्धि के बाद ही दूसरे प्राणायाम को सिद्ध करें।
- इस प्राणायाम की संख्या 21 तक ले कर जा सकते हैं। इस प्राणायाम को करते हुए जबर्दस्ती न करें।
- शुरू-शुरू में कठिनाई व कष्ट प्रतीत हो सकता है, किन्तु अभ्यास से ठीक हो जाएगा।

- निरंतर अभ्यास से मूलाधार को खींचने से मूत्रेन्द्रिय तथा गुदा खिंची रहेगी और वीर्य भी ऊर्ध्वरेता होना शुरू हो जाएगा।
- यदि केवल मात्र इस सिद्धासन का ही अभ्यास किया जाए, तो वह भी वीर्यरक्षार्थ तथा स्वप्नदोष को दूर करने में अत्यंत हितकर है।

5) सत्संग और स्वाध्याय —

"सत्संगत्वे निःसंगत्वं निःसंगत्वे निर्मोहत्त्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलत्वं निश्चलत्त्वे जीवनमुक्तः।।"

(श्रीमद् शंकराचार्य)

अर्थात् सत्संग से व्यक्ति का आसक्ति से धीरे-धीरे वैराग्य की ओर झुकाव होता है। वैराग्य से मोह का नाश होता है, और जब मोह समाप्त हो जाता है, तब चित्त स्थिर होता है। स्थिर चित्त से आत्मज्ञान प्राप्त होता है, और वही आत्मज्ञान मनुष्य को जीवन-मुक्ति की ओर ले जाता है।

आत्मोन्नति के लिए संसार में अनेक साधन हैं, परंतु उन सभी में *सत्संग* सर्वोत्तम उपाय माना गया है। 'सत्संग' एक अत्यंत सारगर्भित शब्द है। 'सत्' का अर्थ है - परम सत्य, अर्थात् ब्रह्म, और 'संग' का अर्थ है - संगति या मेल। एक अन्य अर्थ में, सत्संग का तात्पर्य है - सत्पुरुषों की संगति।

सत्संग के माध्यम से जीवन में उच्च विचारों का समावेश होता है। इसमें शामिल हैं - पवित्र विचारों का चिंतन, सात्विक भोजन करना, स्वदेशी व शुद्ध वस्त्र पहनना, मधुर व हितकर वाणी बोलना, और सद्वचन सुनना व उनका अनुसरण करना। इस प्रकार सत्संग मन, वचन और कर्म को शुद्ध कर आत्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

सत्संग और कुसंग का प्रभाव —

सत्संग से मनुष्य में दिव्यता का विकास होता है, वह देवतुल्य बन जाता है, जबकि कुसंग मनुष्य को अधोगति की ओर ले जाकर राक्षसी स्वभाव वाला बना देता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं – *"को न कुसंगति पाय नसाई"*, अर्थात् ऐसा कौन है जो कुसंग में पड़कर बर्बाद न हुआ हो।

कुसंग का प्रभाव इतना विनाशकारी होता है कि उसने अनेक गुणवान, शीलवान, प्रतिभाशाली बालक-बालिकाओं और स्त्री-पुरुषों का जीवन बर्बाद कर दिया है। ऐसे में प्राण त्याग देना भी स्वीकार्य हो सकता है, लेकिन दुष्टजनों का संग करना अत्यंत घातक होता है।

प्रकृति का नियम है – *"जैसा संग, वैसा रंग।"* नीच व्यक्ति अपने संपर्क में आने वालों को भी अपनी तरह नीच बना लेते हैं, जबकि सत्पुरुष अपने सान्निध्य में आने वालों को भी महान और पुण्यात्मा बना देते हैं।

सत्संग की महिमा अनंत है, किंतु सच्चे संतों का सान्निध्य प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ होता है। उससे भी अधिक कठिन कार्य है— उन्हें सही रूप में पहचान पाना। सांसारिक वासनाओं में डूबा हुआ मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि के आधार पर संतों का मूल्यांकन करता है, और जब वे उसकी संकीर्ण सोच के अनुसार नहीं होते, तो वह उन्हें असत्य समझकर अस्वीकार कर देता है।

इसलिए, सच्चे संतों की पहचान श्रद्धा, विनम्रता और अंतःकरण की शुद्धता से ही संभव है, न कि मात्र बुद्धि से।

परिणामस्वरूप, ऐसे लोग संतों के संपर्क से मिलने वाले तत्कालिक लाभ से भी वंचित रह जाते हैं। *भक्ति-सूत्र* में नारद जी कहते हैं कि महापुरुषों का संग अत्यंत दुर्लभ, कठिनता से प्राप्त होने वाला और अचूक फल देने वाला होता है।

उन्होंने कहा है:-

"सत्संगः परम तीर्थः, सत्संगः परमं पदम्।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य सत्संगं सततं कुरु।।"

अर्थात् सत्संग ही परम पवित्र तीर्थ है, सत्संग ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य यानि मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग है। इसलिए अन्य सभी चीज़ों को त्यागकर, तन-मन-वाणी से निरंतर सत्संग का आश्रय लेना चाहिए।

इसलिए, मनुष्य को चाहिए कि वह जीवन के अन्य मोह-माया को त्यागकर सच्चे संतों की संगति को सर्वोपरि माने, क्योंकि वही उसे आत्मिक शांति, ज्ञान और मुक्ति की ओर ले जाती है।

सत्संग का प्रभाव और कुसंग से सावधानी —

वेद, पुराण और शास्त्रों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ सत्संग के प्रभाव से पापी, दुष्ट और कुविचारी व्यक्ति भी संत, महात्मा और मुक्त आत्मा बन गए। जैसे पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है, वैसे ही मनुष्य भी सच्चे संतों की संगति पाकर सज्जन और महान बन जाता है।

सत्संग से मन का अज्ञान और अविवेक समाप्त होता है, और उसमें विवेक, ज्ञान और समझदारी का उदय होता है। इससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति की दिशा मिलती है। व्यक्ति सांसारिक मोह-माया से ऊपर उठकर जीवनमुक्तता की ओर अग्रसर होता है। साथ ही, उसमें भगवद्भक्ति, सेवा भावना और कर्तव्यनिष्ठा दृढ़ होती है। भोग-विलास की क्षणभंगुरता को समझकर उसके भीतर वैराग्य जागृत होता है।

इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति कुसंग में पड़ जाता है, तो सदाचरण और संयम बनाए रखना लगभग असंभव हो जाता है। चाहे कोई कितना भी दृढ़चित्त क्यों न हो, उसे यह भ्रम नहीं पालना चाहिए कि वह बुरे संग में रहकर भी अपने धर्म और नैतिकता की रक्षा कर सकेगा।

इसलिए, जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है और अपने जीवन में संयम बनाए रखना चाहता है, उसे चाहिए कि वह हर स्थिति में कुसंग से दूर रहे और सत्संग को अपने जीवन का अंग बनाए।

स्वाध्याय — मन में सात्विक विचार और सत्-चिंतन के लिए शास्त्रों का एवं सद्ग्रंथों का स्वाध्याय अत्यंत आवश्यक है। श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस, श्रीमद भगवद्गीता, अन्य पुराण एवं संतों-भक्तों की वाणी तथा भक्तों के चरित्र अवश्य पढ़ने चाहिए। जहां सन्मित्र (सच्चे मित्र) व संत महात्मा की संगति दुर्लभ

हो वहां सद्ग्रंथ का स्वाध्याय ही अंतःकरण को शुद्ध करने के लिए उत्तम उपाय है। शास्त्रों द्वारा संसार के एक से एक संत-महात्मा की संगति रात-दिन कर सकते हैं। शास्त्र एवं सद्ग्रंथ इस लोक की चिंतामणि हैं।

सद्ग्रंथों के अध्ययन से सब कुचेष्टाएं मिट जाती हैं, संशय मिट जाता है और मन में सद्भाव जागृत होकर परम शांति प्राप्त होती है। शास्त्रों के स्वाध्याय से सत-असत का ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानाग्नि से मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, और वह पापात्मा से पुण्यात्मा और व्यभिचारी से ब्रह्मचारी बन जाता है। ज्ञानानन्द के सामने विषयानन्द फीका पड़ जाता है। बिना शास्त्रों के अनुशीलन (गहन अध्ययन व परीक्षण) के आचरण कभी भी शुद्ध नहीं हो सकता।

भगवत् लीला गायन श्रवण की महिमा कौन नहीं जानता है। यदि अध्ययन करने की सामर्थ्य न हो तो जहां शास्त्र सम्मत, भगवत् कथा, सत्संग हो रहा हो, उनसे श्रवण करना चाहिए, नवधा भक्ति में प्रथम भक्ति श्रवण ही है। इसलिए प्रतिदिन सुबह एवं सायंकाल किसी पवित्र ग्रंथ के पाठ का नियम बना लेना चाहिए। यदि ऐसा निश्चय करें कि पाठ का नियम पूरा हुए बिना भोजन ग्रहण नहीं करेंगे, फिर तो बहुत उत्तम है। प्रतिदिन नियमित पाठ से एक अद्भुत शक्ति जागृत होती है जो मनुष्य को उन्नति के शिखर पर पहुंचा देती है।

गीता एवं रामायण का पाठ करना अत्यंत लाभदायी है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, योगवाशिष्ट, वैराग्यमुमुक्षुप्रकरण, उपदेश-रत्नाकर, ज्ञान वैराग्य प्रकाश, श्रीशंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तर मणिमाला, दासबोध - ये सब ग्रंथ बहुत उपयोगी हैं। इनका नित्य पाठ करना चाहिए। इसके अतिरिक्त बहुत से संतों और आचार्यों की वाणियों का यथाशक्ति अध्ययन करना चाहिए।

जैसे एक ही अन्न और जल रोज खाया और पिया जाता है, वैसे ही जो पढ़ा है, उसे ही बराबर बार-बार पढ़ें और मनन करें, उसे जीवन में धारण करें, तो बहुत शीघ्र लाभ होता है। आजतक जितने महापुरुष हुए उन सब पर इन सद्ग्रंथों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। इनके कारण ज्ञान का कोष संसार में सुरक्षित है। यही कारण है कि तत्ववेत्ता, योगी, साधु, संत, भक्त इनको पढ़कर अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं।

सद्ग्रंथों एवं शास्त्रों के निरंतर स्वाध्याय से कर्मनिष्ठा, प्रसन्नता, धीरता, ज्ञान, भक्ति, प्रेम, सेवा, सद्भावना, दया, आदि दैवीय गुणों की वृद्धि होती है। चिंता, भय, पराधीनता, द्वेष, राग, क्रोध, अहंकार, आदि से रक्षा होती है। मन और मस्तिष्क को दृढ़ता एवं शान्ति मिलती है। मनुष्य उद्यमी और परिश्रमी बन जाता है और उसका अंतःकरण पवित्र होने लगता है।

भगवद्भक्ति का प्रभाव और ईश्वर की कृपा –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।

(भ.गी. 9-30-31)

"यदि कोई व्यक्ति अत्यंत दुराचारी भी हो, लेकिन वह एकनिष्ठ होकर मेरी भक्ति करता है, तो उसे भी साधु के समान मानना चाहिए, क्योंकि उसने अपने जीवन की दिशा को दृढ़तापूर्वक सही मार्ग की ओर मोड़ लिया है।"

"वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और स्थायी शांति को प्राप्त करता है। हे अर्जुन! तुम यह निश्चयपूर्वक घोषणा कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता।"

इसका तात्पर्य यह है कि कोई व्यक्ति चाहे कितना भी पापी या बुरा क्यों न रहा हो, यदि वह सच्चे हृदय से ईश्वर की शरण में आ जाता है और निष्ठापूर्वक भक्ति करने लगता है, तो उसके सारे दोष समाप्त हो जाते हैं। ऐसा भक्त शीघ्र ही सद्गुणों से युक्त होकर शांत, धर्ममय जीवन प्राप्त करता है।

ईश्वर की दृष्टि में भूतकाल का पाप कोई मायने नहीं रखता, यदि वर्तमान में उसका हृदय शुद्ध, संकल्प दृढ़ और भक्ति सच्ची है। यही कारण है कि भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वह यह प्रतिज्ञा करे – *"मेरे सच्चे भक्त का कभी भी पतन नहीं होता।"*

भगवत् चिंतन – मन की शांति और शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय

जो मन पीड़ा और अशांति से संतप्त है या पापों में उलझकर अपवित्र हो गया है, उसे शांत और पवित्र बनाने का सबसे श्रेष्ठ और सहज उपाय *भगवत् चिंतन* है। विशेषकर कलियुग में, जब अन्य साधन कठिन, दुर्लभ और जटिल हो गए हैं, तब ईश्वर का स्मरण ही सबसे सुलभ और प्रभावी मार्ग है।

मन की शुद्धि के लिए हमें प्रतिदिन भगवान के नाम का जाप, ध्यान, उनकी लीलाओं का गायन और उनका स्मरण करना चाहिए। *श्रीमद्भागवत* में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भगवान की लीला-कथाओं का श्रवण मन की पवित्रता के लिए सर्वोत्तम उपाय है, क्योंकि—

अन्य साधन केवल पाप का नाश करते हैं,

परंतु भगवान की कथा सुनने से *पाप की प्रवृत्ति* तक समाप्त हो जाती है।

जैसे-जैसे भक्ति का भाव मन में बढ़ता है, वैसे-वैसे वैराग्य – संसार से विरक्ति – भी अपने आप विकसित होने लगता है।

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।"

—श्रीमद् भगवद्गीता (17.6)

– अर्थात, मनुष्य जैसा चिंतन करता है, वैसा ही वह बन जाता है। उसकी श्रद्धा जिस दिशा में होती है, वही उसका स्वरूप बन जाती है।

सारा खेल मन के चिंतन का है। यदि मन में भगवान की स्मृति है, तो विचार सात्विक, शांत और निर्मल होते हैं। परंतु यदि मन अशुद्ध क्रियाओं, दूषित दृश्यों या गलत विचारों में उलझा रहता है, तो उसमें काम, विकार और अधःपतन की भावना भर जाती है।

इसलिए, मन को ईश्वरमय बनाना ही सच्ची साधना है – जिससे जीवन में शांति, पवित्रता और दिव्यता का संचार होता है।

भाव जैसा, जीवन वैसा –

मनुष्य के विचार ही उसके जीवन का निर्माण करते हैं। जैसा उसका चिंतन होता है, वैसा ही उसका स्वभाव बनता जाता है। व्यक्ति को संसार भी वैसा ही दिखने लगता है जैसा उसका अंत:भाव होता है।

यदि किसी का मन क्रोध से भरा है, तो वह स्वयं क्रोधी बन जाएगा। जो कामनाओं में डूबा है, वह कामी बन जाता है। अभिमान रखने वाला अभिमानी हो जाता है, व्यभिचारी भाव वाला उसी मार्ग पर चल पड़ता है। इसके विपरीत, प्रेमपूर्ण भाव से प्रेमी, ब्रह्मचर्य भाव से ब्रह्मचारी और ईश्वर का चिंतन करने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे ईश्वरीय स्वरूप को प्राप्त करने लगता है।

मनुष्य जैसा ध्यान करता है, वैसा ही वह स्वयं बन जाता है। यदि कोई व्यक्ति दूसरों के दोषों का चिंतन करता है या उनका वर्णन करता है, तो वह भी उन दोषों से ग्रस्त हो जाता है। वहीं, जो दूसरों के सद्गुणों का स्मरण करता है, वह स्वयं भी सद्गुणों से युक्त हो जाता है।

तो जब यह सत्य है कि *जिसका ध्यान किया जाए, मनुष्य तद्रूप बनता है*, तो भगवान के ध्यान, गुणगान और स्मरण से क्या हम भी ईश्वरमय न बन जाएंगे? नि:संदेह, अवश्य बनेंगे।

इसीलिए, जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, उसे चाहिए कि वह प्रतिदिन, सुबह और शाम, नियमपूर्वक भगवद्‌भजन, पूजन, सेवा, स्मरण, नाम-जप और ध्यान जैसे सत्कर्मों को अपने जीवन का अंग बनाए। यही उसकी साधना की सच्ची नींव होगी।

भगवद्‌भक्तिः वैराग्य और शांति का आधार —

शास्त्रों में भगवान ने स्वयं कहा है कि जो मेरी भक्ति करता है, वह अंततः मेरे ही स्वरूप को प्राप्त करता है। परंतु जो स्त्रियों या विषयों (इंद्रिय सुखों) में आसक्त होकर उनकी उपासना करते हैं, वे पुनर्जन्म में स्त्री, पशु या अन्य नीच योनियों में जन्म लेते हैं।

विषयों से *वैराग्य* — यही ब्रह्मचर्य का सार है। और यह विरक्ति सहज रूप से उसी व्यक्ति को प्राप्त होती है, जो भगवद्भक्ति और ईश्वरचिंतन में तल्लीन रहता है।

संक्षेप में कहा जाए, तो भगवद्भजन ही ऐसा सशक्त साधन है जो मनुष्य को विषय-वासना से मुक्त कर सच्चे वैराग्य की ओर ले जाता है। वही घृणित भोगों से घृणा पैदा करता है और वही मनुष्य का सच्चा सौभाग्य तथा शांति का मूल कारण बनता है।

"*दुःखी सदा कः?*" अर्थात् - "सदा दुखी कौन है?"

उत्तर है - जो "*विषयानुरागी,*" जो इंद्रिय-सुखों में लिप्त रहता है, वही सदा दुखी और अभागा रहता है।

भगवान स्वयं गीता में कहते हैं -

"स शान्तिमाप्नोति न कामकामी" (2.70)

अर्थात, जो कामनाओं में डूबा है, वह कभी भी शांति नहीं पा सकता।

दरअसल, विषय भोग की तृष्णा ही समस्त दुखों की जड़ है। और उससे उत्पन्न *वैराग्य* ही समस्त सुखों की एकमात्र कुंजी है। यह वैराग्य न तो दबाव से आता है, न ही त्याग की जबरदस्ती से - बल्कि यह ईश्वर की भक्ति और भगवत्चिंतन से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है, और यही सच्ची मुक्ति और शांति का मार्ग है।

भगवन्नाम और भक्तिः चित्तशुद्धि एवं ब्रह्मचर्य का आधार —

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं —

"प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥"

— जिस प्रकार पक्षी बिना जल के बालू निगलने से भीतर से सुखपूर्वक नहीं रह सकता, उसी प्रकार प्रेम और भक्ति के बिना मन भीतर से निर्मल नहीं हो सकता।

फिर वे कहते हैं:

"सत्य वचन, अधीनता, परतिय मात समान।
इतने में हरी ना मिले तो तुलसीदास जवान॥"

अर्थात् सत्यवचन बोलना, इष्ट गुरु की अधीनता (दासता) स्वीकार करना और पराई स्त्री को माता के समान मानना, यदि इन गुणों को अपनाने के बाद भी किसी को प्रभु हरि के दर्शन न हों, तो तुलसीदास स्वयं इसकी जमानत देने को तैयार हैं।

— सत्य बोलना, विनम्रता और संयम - ये सभी अच्छे गुण हैं, लेकिन केवल इन्हीं से भगवान की प्राप्ति नहीं होती जब तक सच्ची भक्ति न हो।

इसलिए, यदि हमें आत्मोन्नति करनी है, मन को नियंत्रित और शुद्ध करना है, और अपने जीवन को दिव्य और श्रेष्ठ बनाना है, तो हमें प्रतिदिन नियमपूर्वक भगवान का भजन, ध्यान और कीर्तन करना चाहिए। भगवद्भक्ति ही वह श्रेष्ठतम साधन है जो समस्त दुःखों से मुक्ति और चित्तशुद्धि प्रदान करता है। और चित्त की यह शुद्धता ब्रह्मचर्य पालन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

कलियुग में अन्य साधन - जैसे तप, व्रत, योग आदि - मन को वश में करने के लिए अत्यंत कठिन हैं। अतः व्यक्ति को चाहिए कि वह पूरे समर्पण भाव से भगवान की शरण में जाए, और मन, वचन तथा कर्म से स्वयं को भगवान को समर्पित कर दे।

सच्चे गुरुदेव को स्वीकार करके, उनके बताए मार्ग पर चलना चाहिए। गुरु *द्वारा प्रदत्त नाम या मंत्र का निरंतर जप* करना चाहिए। क्योंकि भगवन्नाम में वह दिव्य शक्ति है जो अंतःकरण को शुद्ध कर, मनुष्य को भगवान की शुद्ध भक्ति में लीन कर देती है।

ईश्वर का नाम ही परम है। *नामस्मरण से ही लौकिक और पारलौकिक - दोनों प्रकार की उन्नति संभव है।* जब मन पापपूर्ण विचारों से परेशान हो जाता है, जब अशुद्ध क्रियाओं और चिंताओं से थक जाता है, तब भगवान का नाम ही ऐसी

दिव्य औषधि है, जो तुरंत मन को नकारात्मकता से निकालकर आनंद, शांति और प्रेम में डुबो देती है।

6) भोजन — स्वास्थ्य का मूल आधार

स्वस्थ रहना हर जीव का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी उद्देश्य से हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने अत्यंत सूक्ष्म विवेक के साथ मानव जीवन के लिए अमूल्य नियम निर्धारित किए हैं, जो आज भी पूरी तरह प्रासंगिक हैं।

आयुर्वेद के महान ग्रंथ *चरक संहिता* 11/35 में मानव शरीर के तीन प्रमुख आधार-स्तम्भों का उल्लेख मिलता है:

त्रय उपस्तम्भा इति - आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति ।

अर्थात् - शरीर तीन मुख्य स्तम्भों पर टिका होता है:

1. आहार (भोजन)
2. निद्रा
3. ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन)

इन तीनों में गहरा आपसी संबंध है — यदि एक भी बिगड़ जाए, तो शेष दो भी प्रभावित होने लगते हैं। और इन तीनों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है **आहार**, क्योंकि कहा गया है - *" जैसा अन्न, वैसा मन।"*

भोजन का सीधा प्रभाव न केवल शरीर, बल्कि हमारे मन, विचार और व्यवहार पर भी पड़ता है। इसलिए संतुलित, सात्विक और संयमित भोजन ही एक स्वस्थ, शांत और उन्नत जीवन की नींव है।

आहार की परिभाषा और महत्व —

शास्त्रों में आहार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

"आहरन्ति तस्मात् रसं इति आहारः।"

(काशिका 3 । 3 । 16)

अर्थात्, जिसे ग्रहण करके रस या पोषण मिलता है, वही आहार कहलाता है।

सृष्टि में सभी प्राणियों के शरीर की उत्पत्ति, स्थिरता और विनाश का मुख्य कारण आहार ही है। चरक संहिता में भी स्पष्ट कहा गया है—

"प्राणिनां प्राणमाहारः"

अर्थात्, प्राणियों के जीवन का आधार आहार है।

केवल जीवन ही नहीं, बल्कि शरीर की वृद्धि, बल, रंग-रूप, इन्द्रिय प्रसन्नता, ओजस्विता और उत्तम स्वास्थ्य भी सही और संतुलित आहार पर निर्भर हैं। चाहे वह सबसे छोटी चींटी हो या विशालकाय हाथी, सभी जीवों को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है।

जब भोजन की बात आती है, तो वीर पुरुष की शौर्यता, बुद्धिमान की सोच और कर्मयोगी की कार्यक्षमता भी भोजन के अभाव में कमजोर पड़ जाती है। आजकल लगभग हर व्यक्ति अपनी सारी ऊर्जा भोजन जुटाने में लगा देता है। इस संसार में जो भी व्यस्तता, तनाव और अशांति देखी जाती है, उसका मूल कारण भोजन की प्राप्ति के लिए निरंतर संघर्ष है।

किसान कड़क धूप या सर्दी में खेतों में मेहनत करता है, मजदूर कठोर परिस्थितियों में काम करता है, व्यापारी, नौकर और नेता भी भोजन के लिए अथक प्रयास करते हैं। यही कारण है कि सभी आहार की प्राप्ति हेतु इतने व्यस्त, अशांत, चिंतित और बेचैन हैं।

अब *प्रश्न* उठता है कि मनुष्य को भोजन की आवश्यकता क्यों होती है? हमें भूख क्यों लगती है?

हम हर पल कोई न कोई शारीरिक या मानसिक क्रिया करते रहते हैं। केवल हाथों से काम करना, पैरों से चलना-फिरना या मुँह से बोलना ही क्रिया नहीं है, बल्कि हमारा सांस लेना, सोच-विचार करना भी एक तरह की क्रिया ही है। इन सभी क्रियाओं में हमारे शरीर की ऊर्जा लगातार खर्च होती रहती है और शरीर की ऊष्मा कम होती जाती है।

इस ऊर्जा की कमी को पूरा करने के लिए हमें भोजन और नींद की आवश्यकता होती है। जैसे कपड़ा पहनने से धीरे-धीरे पतला और कमजोर होता जाता है और जब वह फटने लगता है तो हम उसे फेंक देते हैं, ठीक उसी तरह हमारे शरीर की ऊर्जा लगातार घटती रहती है। यदि हम इसे भोजन और नींद से पूरा नहीं करते, तो हमारा शरीर भी कमजोर होकर अंततः बेकार और उपयोगहीन हो जाएगा, जैसे पुराना फटा हुआ कपड़ा।

इसी बात को हम एक और दृष्टिकोण से समझ सकते हैं। हमारा शरीर एक जीवित इंजन की तरह है। जैसे किसी इंजन को चलाने के लिए कोयला, तेल, आग, पानी और भाप की जरूरत होती है, उसी प्रकार हमारे शरीर को सक्रिय और सजीव बनाए रखने के लिए हवा, पानी और भोजन आवश्यक होते हैं।

जिस तरह इंजन अपने उपयोग के बाद धुआं, राख और अन्य बेकार पदार्थ बाहर निकालता है, वैसे ही हमारा शरीर भी बिना उपयोग के तत्वों को मल, मूत्र और पसीने के माध्यम से बाहर निकालता है। इसी शरीर की इस मांग को हम भूख और प्यास के रूप में अनुभव करते हैं। इस भूख-प्यास को हम भोजन और पेय पदार्थों से शांत करते हैं।

इस विवेचना से स्पष्ट होता है कि प्राणी के शरीर का आधार भोजन और पेय ही हैं। हम जो भी शारीरिक या मानसिक कार्य करते हैं, उससे शरीर की शक्ति कम होती है और थकान महसूस होती है। यदि लगातार काम करते रहें और भोजन न करें, तो शरीर कमजोर होकर नष्ट होने लगेगा। इसलिए, इस विनाश से बचने के लिए ही भोजन आवश्यक होता है।

आयुर्वेद शास्त्र ने भोजन को तीन प्रकारों में विभाजित किया है — सात्विक, राजसिक और तामसिक। सात्विक भोजन उन लोगों के लिए रुचिकर होता है जिनमें सत्त्वगुण प्रधान होता है। वहीं रजोगुण वाले व्यक्तियों को राजसिक भोजन और तमोगुण वाले लोगों को तामसिक आहार प्रिय होता है।

प्रत्येक व्यक्ति को हमेशा वह आहार लेना चाहिए जो उसके शरीर के लिए स्वास्थ्यवर्धक हो, जिससे वह निरोगी और शक्तिशाली बना रहे। मिर्च-मसालों

से भरे तीखे, चटपटे, गले हुए, सड़े या बासी भोजन तथा मादक पदार्थ भोजन में कभी भी शामिल नहीं होने चाहिए। क्योंकि मिर्च-मसाले वाला भोजन कामवासना को बढ़ावा देता है और लाल मिर्च तो ब्रह्मचर्य के लिए विशेष रूप से हानिकारक है। इसलिए ब्रह्मचर्य को मानने वालों को इसे धीरे-धीरे त्याग देना चाहिए।

हमें घी, दूध, फल, मेवे जैसे पौष्टिक और सुपाच्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इनसे शरीर के रस, रक्त, वीर्य और अन्य धातुओं का संतुलित विकास होता है और ये हमारे शरीर के लिए आधार बनते हैं। फिर भी, इन लाभकारी पदार्थों का सेवन केवल उतना ही करना चाहिए जितना शरीर के लिए आवश्यक हो और जो आसानी से पच सके। आवश्यकता से अधिक भोजन करने पर आलस्य, भारीपन, पेट फूलना जैसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे शरीर कमजोर होकर रोगों का शिकार हो सकता है।

आवश्यकता से अधिक भोजन करने पर अपचन, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, धातु-संबंधी प्रमेह, स्वप्नदोष जैसे गंभीर रोग शरीर को घेर लेते हैं। क्योंकि प्रतिदिन जो भी हम खाते हैं, उसका सारांश खून बनता है, जबकि शेष अंश मल के रूप में मुँह, कान, नाक और गुदा से बाहर निकल जाता है।

भोजन में सभी छह प्रकार के रसों की अत्यंत आवश्यकता होती है, जिन्हें पूरक रूप से ग्रहण करना आवश्यक है। ये छह रस हैं — खट्टा, मीठा, तीखा, खारी, कड़ुवा और कषाय। इन रसों का वात, पित्त और कफ तीनों दोषों के साथ विशेष संबंध होता है।

- **खट्टा रसः**- यह पाचन में सहायक, बादी-नाशक, मल-मूत्र को निकालने वाला, वात दोष कम करने वाला और अमाशय (stomach) को शांति देने वाला होता है। लेकिन अधिक सेवन से दांत कमजोर हो जाते हैं, कफ नष्ट होकर शरीर ढीला हो जाता है, तथा कंठ, छाती और हृदय में जलन हो सकती है।
- **मीठा रसः**- यह प्यास बुझाने वाला, शरीर का वर्ण निखारने वाला, नेत्र रोग नाशक तथा हड्डी, मांस और वीर्य को बढ़ाने वाला होता है। परंतु

अत्यधिक सेवन से कफ बढ़ता है, पेट में कीड़े होते हैं और श्वास-प्रश्वास संबंधी समस्या हो सकती है।

- **तीखा रस**:- यह पाचन को बढ़ावा देने वाला, कफ और कृमि नाशक तथा रक्त शोधन करने वाला होता है। अधिक मात्रा में लेने से बादी रोग उत्पन्न हो सकता है।
- **खारी रस**:- यह पाचन और मल-मूत्र को साफ करने वाला होता है। लेकिन अधिक सेवन से आंखों को हानि पहुँचती है और रक्त दूषित होता है।
- **कड़ुवा रस**:- यह ज्वर को कम करने वाला, प्यास मिटाने वाला तथा कोढ़ और खुजली में लाभकारी होता है। अधिक सेवन से नसें सख्त हो जाती हैं और भूख कम हो जाती है।
- **कषाय रस**:- यह दस्त रोकने वाला, शरीर को मजबूत बनाने वाला तथा प्रमेह में लाभकारी होता है। परंतु अधिक सेवन से पेट और छाती में दर्द होता है, शरीर कांपने लगता है और कमजोरी आती है।

भोजन में ऊपर बताए गए छह रसों के सम्यक उपयोग के साथ यह भी अत्यंत आवश्यक है कि हम जो आहार ग्रहण करें, वह पूर्ण रूप से शुद्ध हो, क्योंकि आहार का प्रभाव हमारे सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है—

"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः"

अर्थात् भोजन यदि शुद्ध होगा तो मन और आत्मा भी शुद्ध होंगे, और शुद्ध अंतःकरण से स्मरण शक्ति दृढ़ होती है। इसलिए भोजन सदैव शुद्ध और सात्विक होना चाहिए।

आजकल शहरी क्षेत्रों में लोग सस्ते और तात्कालिक स्वाद के लिए गले-सड़े, बासी भोजन और मिर्च-मसालों से भरे चाट-पकौड़े जैसे गर्म, तीखे, चटपटे पदार्थों का सेवन करते हैं, जो स्वास्थ्य पर गंभीर बुरा प्रभाव डालते हैं। अतः इनसे

बचना चाहिए। साथ ही अंडा, मांस, मछली, मद्य (शराब), चाय, कॉफी, बीड़ी, सिगरेट, चुरूट, गांजा, भांग, प्याज, लहसुन जैसे तामसिक और अशुद्ध पदार्थों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार, सुखी जीवन का पहला आधार स्तंभ—'आहार' का विषय संक्षेप में समझ लिया गया। अब हमारे जीवन को सुखी और स्फूर्तिदायक बनाने वाला दूसरा स्तंभ है—निद्रा।

7) निद्रा —

निद्रा क्या है ?

इस संसार के सभी जीव-जंतु—मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति—निद्रा के बिना जीवित नहीं रह सकते। कुछ जीव अपने जीवन का आधा या उससे भी अधिक समय नींद में व्यतीत करते हैं। महर्षि धन्वंतरि ने अपने प्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रन्थ सुश्रुत के शरीर स्थान में लिखा है—

हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत! देहिनाम्।
तमोभिभूते तस्मिस्तु निद्रा विशति देहिनम्।। 34।।

अर्थात्, हे सुश्रुत! मनुष्य की चेतना का मुख्य केन्द्र हृदय अर्थात् मस्तिष्क है, और जब यह मस्तिष्क तमोगुण से प्रभावित हो जाता है, तब निद्रा शरीर को घेर लेती है।

निद्राहेतुस्मः सत्वं बोधने हेत्तरूचयते।
स्वभाव एवं वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते।। 35।।

निद्रा का मूल कारण तमोगुण है, जबकि जागरण के लिए सत्त्वगुण मुख्य कारण है। अर्थात्, जो निद्रा स्वाभाविक रूप से सभी जीवों को आती है, उसे श्रेष्ठ निद्रा माना गया है।

निद्रा की आवश्यकता —

जब कोई प्राणी लगातार कार्य करता रहता है और इतना थक जाता है कि उसका हृदय, मस्तिष्क और पूरा शरीर काम करने में असमर्थ हो जाता है, तब तमोगुण से प्रभावित ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ पुनः स्वस्थ होने के लिए भगवान् उसे पूर्ण विश्राम अर्थात निद्रा प्रदान करते हैं। इसलिए, जब थकावट महसूस हो, तब विश्राम करना अत्यंत आवश्यक होता है। महर्षि चरक कहते हैं—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिकाश्र्य बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च।।

अर्थात्, सुख-दुख, शरीर की पुष्टता या दुर्बलता, बल और कमज़ोरी, शरीर का स्वस्थ या नपुंसक होना, ज्ञान और अज्ञान, यहाँ तक कि जीवन और मृत्यु भी निद्रा के अधीन हैं। हृदय को भी निद्रा से विश्राम मिलता है। साथ ही मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार — अर्थात् अन्तःकरण के ये चार तत्व — भी सुषुप्ति में पूर्ण विश्राम पाते हैं।

निद्रा की उत्पत्ति के कारण —

निद्रा मुख्य रूप से तमोगुण और कफ के प्रभाव से उत्पन्न होती है। यह मन और शरीर के परिश्रम के बाद आती है। इसके अलावा विषाद, बाह्य कारण और रोगों के प्रभाव से भी निद्रा उत्पन्न होती है। रात्रि में स्वाभाविक रूप से जो निद्रा आती है, उसे भूतधात्री कहा जाता है।

निद्रा के प्रकार —

निद्रा के दो भेद होते हैं —

1. वैष्णवी निद्रा, जो स्वाभाविक रूप से रात्रि में आती है, इसे भूतधात्री निद्रा कहते हैं।
2. पाप्मा निद्रा, जो अधर्म और हानिकारक होती है, यह तमोगुण की अधिकता या शरीर के रोगों के कारण आवश्यकता से अधिक होने वाली निद्रा होती है।

निद्रा से पूर्व की आदतें —

निद्रा से पहले हाथ, पैर, सिर आदि को धोना चाहिए। प्रभु का स्मरण, नाम जप और मंत्र जप करते हुए ही शयन करना उत्तम होता है। सोने से पहले मल-मूत्र त्याग कर ही बिछौना लेना चाहिए। जब तक अच्छी नींद न आए, तब तक बिस्तर पर न लेटें।

रात्रि का भोजन हल्का होना चाहिए और भोजन तथा निद्रा के बीच कम से कम ढाई घंटे का अंतर रखें, जिससे स्वप्नदोष से बचा जा सके। स्वप्नदोष से पीड़ित व्यक्ति को अंडकोष को ठंडे पानी से अच्छी तरह धोकर गीला करना चाहिए, साथ ही मूत्रेंद्रिय के अग्रभाग पर ठंडे जल की धारा डालने से लाभ मिलता है।

सोते समय दीपक या बल्ब जलाकर नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि प्रकाश निद्रा में बाधा पहुंचाता है। ब्रह्मचारी या किसी व्यक्ति को उल्टा (मुंह नीचे करके) नहीं सोना चाहिए। एक करवट, विशेषकर बाईं करवट पर सोना उत्तम होता है। यदि पेट में कोई विकार हो तो वाम करवट सोना चाहिए, सीधा या उल्टा सोना उचित नहीं है।

नवयुवकों को 6 घंटे से अधिक नींद नहीं लेनी चाहिए और ब्रह्म मुहूर्त में जागना उत्तम है। ब्रह्मचारी के लिए 4 घंटे की नींद पर्याप्त मानी जाती है।

निद्रा टूटते ही तुरंत बिस्तर छोड़ देना चाहिए और उठते ही धरती माता को प्रणाम करें। फिर गुरु, इष्ट और आचार्य का ध्यान करें, उसके बाद ही बिस्तर छोड़ें।

यदि आप निद्रा पर नियंत्रण चाहते हैं तो रात का भोजन छोड़ दें, शाम को पांच से सात बजे तक थोड़ा दूध पीएं और आठ से दस बजे तक सो जाएं। सुबह दो से तीन बजे के बीच जागना उत्तम माना जाता है।

अधिक निद्रा दूर करने के उपाय —

पतले व्यक्तियों की तुलना में जिनका शरीर अधिक मांसल है या मोटापा रहता है, उन्हें अधिक निद्रा की समस्या अधिक होती है क्योंकि उनमें तमोगुण का प्रभाव

ज्यादा होता है। ऐसे व्यक्ति अधिक काम करने में असमर्थ हो जाते हैं और विभिन्न कारणों से उन्हें अधिक नींद सताती है।

सुश्रुत संहिता में अधिक निद्रा को दूर करने के लिए उपाय बताये गए हैं:

निद्रातियोगे वमनं हितं संशोधनानि च।
लङ्घनं रक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलनानि च।।४७।।

अर्थात्, अत्यधिक निद्रा होने पर वमन (उल्टी कराना), संशोधन (शरीर की सफाई), लंघन (उपवास), रक्तमोक्षण (रक्तदान) और मन को व्याकुल करने वाले उपाय लाभकारी होते हैं। ये सभी साधन अधिक निद्रा की समस्या को कम करने में सहायक हैं।

ब्रह्मचारी को दिन में न सोने का निर्देश —

शास्त्रों में ब्रह्मचारी के लिए दिन में सोना पूरी तरह से निषेध माना गया है। आयुर्वेद के अनुसार, दिन में सोने से ब्रह्मचर्य की शक्ति के कमजोर होने का खतरा रहता है। दिन में सोना तमोगुण प्रधान स्वभाव को बढ़ावा देता है, जिससे शरीर में आलस्य और प्रमाद की वृद्धि होती है।

महर्षि धन्वंतरी ने इस विषय में सुश्रुत संहिता में लिखा है —

"विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम, तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्च, तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवांगमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवन्ति।"

(सुश्रुत संहिता, शरीरस्थान, श्लोक 39)

अर्थात्, दिन में सोना एक विकार है। इससे अधर्म उत्पन्न होता है अर्थात् ब्रह्मचर्य क्षीण होता है। वात, पित्त और कफ दोष कुपित हो जाते हैं, जिनके कारण खांसी, दमा, जुकाम, सिर में भारीपन, शरीर के अंगों में दर्द, अरूचि, ज्वर और जठराग्नि की कमजोरी जैसी अनेक बीमारियाँ होती हैं। अतः दिन में सोना उचित नहीं है, बल्कि यह समय जागरण और कर्म के लिए होना चाहिए।

रात्रि में जागरण के हानिकारक प्रभाव —

सुश्रुत संहिता में कहा गया है—

"रात्रावपि जागरितवतां वात-पित्त-निमित्तास्त एवोपद्रवा भवन्ति।"

(सुश्रुत शरीरस्थान अ. 4 श्लोक 39)

अर्थात् रात्रि में जागने से वात और पित्त दोष उत्पन्न होते हैं, जिससे श्वास सहित अनेक रोग पैदा हो सकते हैं। इसलिए न तो रात को जागना चाहिए और न ही दिन में सोना उचित है।

महर्षि धन्वन्तरि ने लिखा है—

"सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात्।"

सभी ऋतुओं में दिन में सोना वर्जित है। केवल ग्रीष्म ऋतु में, जब दिन लंबे होते हैं, कुछ विशेष परिस्थितियों और व्यक्तियों के लिए दिन में थोड़ी देर सोने की अनुमति दी गई है। परंतु ब्रह्मचारियों के लिए ग्रीष्मकाल में भी दिन में सोना पूरी तरह मना है।

सुश्रुत में इस विषय में और भी कहा गया है कि दिन में सोना सामान्यतः निषिद्ध है, इसके अपवाद निम्नलिखित हैं — छोटे बच्चे, वृद्ध (70 वर्ष से अधिक), कमजोर और दुर्बल व्यक्ति, क्षय रोगी, किसी भी कारण से शारीरिक रूप से क्षीण व्यक्ति, यात्रा या परिश्रम से थके हुए लोग, भूखे लोग, और जो मेद (चर्बी), स्वेद, कफ, रक्त, रस आदि से कमजोर हुए हैं, उन्हें दिन में थोड़ा बहुत आराम करने की अनुमति है। ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम 48 मिनट (दो घड़ी) का विश्राम उचित माना गया है।

अथर्ववेद (7/13/12) में भी कहा गया है—

"उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आदये।"

जिस व्यक्ति का सोना सूर्योदय के बाद या दिन में होता है, उसके तेज का हरण हो जाता है। दिन में सोने से स्वप्नदोष और अन्य विकार उत्पन्न होते हैं, जो

ब्रह्मचर्य और वीर्य को नष्ट कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति में जीवंतता और ओज का वास नहीं रह जाता है।

इस प्रकार, दिन में सोना और रात में जागना दोनों ही शरीर के लिए हानिकारक हैं।

निद्रा न आने के कारण —

वायु और पित्त दोष के कुपित और अधिक होने, मानसिक तनाव, रसादि धातुओं की कमी तथा चोट लगने जैसे कारणों से निद्रा नहीं आती। इन विपरीत कारणों को दूर करने पर निद्रा स्वाभाविक रूप से आने लगती है। (सुश्रुत संहिता, श्लोक 42)

निद्रा के लिए उपाय —

यदि निद्रा न आए तो शरीर पर तेल की मालिश करना, विशेषकर सिर पर तेल से मर्दन करना, अंगों पर उबटन लगाना और शरीर को धीरे-धीरे दबाना (संवाहन) बहुत लाभकारी होता है। किन्तु यह उपाय विरक्त व्यक्तियों के लिए उचित नहीं है। (सुश्रुत संहिता, श्लोक 43)

रात्रि में द्राक्ष, मिश्री, ईख (शक्कर) जैसे मीठे पदार्थों का सेवन करना चाहिए। शयन स्थल को स्वच्छ और आरामदायक बनाना आवश्यक है। यदि निद्रा की समस्या अधिक हो तो चिकित्सकीय सलाह लेना अनिवार्य है।

निद्रा त्याग —

रात को 8 से 10 बजे के बीच सोना चाहिए और सुबह 2 से 4 बजे के बीच उठना शुभ माना जाता है। ऐसा व्यक्ति ब्रह्मचारी, दीर्घायु तथा बुद्धिमान होता है।

निद्रा का स्थान —

सोने के लिए ऐसा स्थान होना चाहिए जो दुर्गंध रहित, शुद्ध वायु से युक्त, प्रकाशमय, पवित्र और एकान्त हो, साथ ही गोमय (गोबर) लिपा हुआ हो। बिस्तर स्वच्छ होना चाहिए और ऋतु के अनुसार अनुकूल होना चाहिए, जिससे निद्रा जल्दी और अच्छी आती है।

सोने से पहले सिरहाने जल से भरा पात्र रखना चाहिए और वैदिक मंत्रों का जाप करके सोना शुभफलदायक माना गया है।

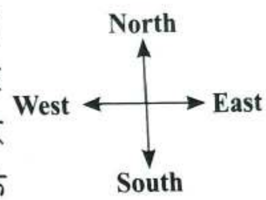
कहाँ सोना निषिद्ध है —

शून्य स्थान, निर्जन घर, श्मशान, वृक्ष के नीचे, महादेव के मंदिर में, पत्थर की जमीन पर, गौ, विप्र, देवता और गुरु के ऊपर सोना निषिद्ध है।

इसके अलावा, नग्न होकर सोना, शरीर खुले छोड़कर सोना, खुले मैदान में सोना और चैत्य वृक्ष के नीचे सोना भी मना किया गया है।

शयन के समय सिर किस दिशा में करें —

अपने घर में सोते समय सिर को पूर्व की ओर रखना चाहिए। यदि दीर्घायु की इच्छा हो तो सिर दक्षिण की ओर भी रखा जा सकता है। यात्रा के समय पश्चिम की ओर सिर करके सोना उचित रहता है। उत्तर की ओर सिर करके सोना आयुर्वेद के अनुसार अत्यंत हानिकारक माना गया है।



पूर्व की ओर सिर करके सोने से धन-समृद्धि होती है, दक्षिण की ओर सिर लगाने से आयु बढ़ती है, पश्चिम की ओर सिर करके सोने से अधिक चिंताएं होती हैं, और उत्तर की ओर सिर करके सोने से शीघ्र मृत्यु हो सकती है। मृत शरीर का सिर अंत्येष्टि के समय वैदिक परंपरा अनुसार उत्तर दिशा में रखा जाता है, जो इस बात का संकेत है कि उत्तर की ओर सिर करने से आयु घटती है और मृत्यु शीघ्र होती है।

बिस्तर संबंधी नियम —

बिस्तर सख्त, साफ-सुथरा और सरल होना चाहिए। ओढ़ने वाला वस्त्र भी हल्का, स्वच्छ और शुद्ध होना चाहिए।

ब्रह्मचारियों के लिए शयनकाल में केवल एक लंगोट पहनना उचित होता है। निद्रा के दौरान शरीर पर अधिक वस्त्र रखना उचित नहीं है और वस्त्र से सिर ढककर सोना वर्जित है।

शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मचारी को भूमि अर्थात् धरती माता की गोद में सोना चाहिए, इसे सर्वोत्तम माना गया है। जो ब्रह्मचर्य को पुष्ट करना चाहता है, उसे चारपाई या पलंग पर सोने की अनुमति नहीं है, यहां तक कि उन पर बैठना भी निषिद्ध है क्योंकि ये गृहस्थ जीवन के लिए हैं।

ब्रह्मचारी को अपने आचार्य या गुरु की अनुमति के बिना गृहस्थ जीवन अपनाना या गृहस्थ वस्तुओं जैसे खाट का उपयोग नहीं करना चाहिए।

खाट पर सोने से मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) सीधी नहीं रहती, जिससे अनेक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं हो सकती हैं। मेरुदण्ड के सीधा रहने से प्राणायाम की सिद्धि होती है, फेफड़े स्वस्थ रहते हैं, और वृद्धावस्था में कमर न झुकने जैसे लाभ मिलते हैं। इसलिए ब्रह्मचारी को खाट-पलंग के झंझट से बचना चाहिए।

ब्रह्मचारी को सदैव अकेले ही सोना चाहिए —

मनुस्मृति (2/180) में कहा गया है—

"एक शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः।"

अर्थात् ब्रह्मचारी को हमेशा अकेले ही सोना चाहिए और कभी भी अपने वीर्य का क्षय नहीं करना चाहिए। यदि कोई इच्छानुसार वीर्य स्खलित कर देता है, तो वह अपने ब्रह्मचर्य व्रत का हनन करता है।

चाहे वह शिशु हो, बालक हो, किशोर हो या युवक—हर अवस्था के ब्रह्मचारी को अलग-अलग सोना चाहिए। किसी के साथ सोने से सबसे सही बालक भी भ्रष्ट हो सकते हैं। इसलिए, दो या दो से अधिक लोग कभी भी एक ही बिस्तर पर एक साथ न सोएं।

कई बार माता-पिता अपने सगे भाई-बहनों को एक ही चारपाई या बिस्तर पर सुला देते हैं, जो उचित नहीं है। इससे बच्चों को होने वाली हानि की कल्पना भी भयावह है। इसलिए हमेशा अकेले सोना ही कल्याणकारी होता है। यह नियम आज के युवाओं को दृढ़ता से अपनाना चाहिए।

8) लंगोट बांधे रहना —

वीर्य की रक्षा के लिए हमेशा लंगोट कस कर पहनना अत्यंत आवश्यक है। लंगोट पहनने से मन शांत रहता है और अंडकोष की अतिवृद्धि नहीं होती। लंगोट एकहरा होना चाहिए, दोहरा नहीं, ताकि अनावश्यक गर्मी से वीर्य का नाश न हो। लंगोट पहनने से पुरुषत्व अधिक शुद्ध और अनुशासित रहता है।

शंकराचार्य ने कहा है—

"कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।"

अर्थात् लंगोट पहनने वाले ही वास्तव में भाग्यवान पुरुष होते हैं।

प्रायः ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त साधु-महात्मा लंगोट पहनते हैं ताकि काम-विकार से उत्पन्न होने वाली उत्तेजना को रोका जा सके। ब्रह्मचारी और सन्यासियों के लिए कौपीन (लंगोट) धारण करना शास्त्रीय नियम है जो प्राचीन काल से चला आ रहा है।

कौपीन का वस्त्र बहुत मोटा नहीं होना चाहिए; एक पतला और स्वच्छ कपड़ा इसके लिए उपयुक्त रहता है। कुछ लोगों की यह गलत धारणा है कि धोती के नीचे लंगोट पहनने से नपुंसकता होती है, परंतु यह बिलकुल गलत है। इसके विपरीत, लंगोट पहनने से पुरुषत्व अधिक समय तक सुरक्षित रहता है।

कौपीन पहनने से इंद्रियों में ऊर्जा संचित होती है, मन पर नियंत्रण रहता है और बल, उत्साह, स्फूर्ति, सदाचार, सत्प्रेम तथा सत्संग की वृद्धि होती है।

9) व्यायाम —

ब्रह्मचारी के लिए रोजाना व्यायाम करना उतना ही आवश्यक है जितना नियमित भोजन। प्रतिदिन लिया गया भोजन पचकर धीरे-धीरे रस, रक्त और अन्य सात धातुओं का निर्माण करता है, जिनके आधार पर शरीर का गठन होता है। यदि जठराग्नि (पाचन शक्ति) ठीक न हो तो ये धातुएं सही ढंग से नहीं बन पाएंगी, जिससे शरीर दुर्बल हो जाएगा। इसलिए पाचन क्रिया को दुरुस्त रखने और भोजन को शरीर के अंगों में परिवर्तित करने के लिए व्यायाम अत्यंत महत्वपूर्ण है।

व्यायाम से भोजन जल्दी पचता है, कब्ज नहीं होती, शरीर स्वस्थ रहता है और अनावश्यक चर्बी जमा नहीं होती। नियमित व्यायाम से शरीर पर रोग कम प्रभाव डालते हैं। व्यायाम के कारण वीर्य की गति ऊपर की ओर बढ़ती है, जो मस्तिष्क पर ओज के रूप में चमकती है, जिससे व्यक्ति की आकर्षक आभा स्वाभाविक रूप से सबका ध्यान अपनी ओर खींचती है। व्यायाम करने वाले को स्वप्नदोष जैसे रोग नहीं सताते।

शारीरिक व्यायाम से वीर्य में वृद्धि होती है और वह स्थिर रहता है, इसलिए नियमित व्यायाम करना अत्यंत आवश्यक है। व्यायाम के रूप में आप प्रतिदिन दण्ड-बैठक, योगासन और दौड़ भी कर सकते हैं। जो व्यक्ति नियमपूर्वक व्यायाम करता है और मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसकी मांसपेशियां लोहे की तरह मजबूत और सुदृढ़ हो जाती हैं। व्यायाम वीर्य की रक्षा में अत्यंत लाभकारी होता है।

*****

ब्रह्मचर्य के लिए योग

योग, भारतीय दर्शन की छह मुख्य शाखाओं में से एक है — जैसे सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत। पातंजल योग दर्शन में भी कहा गया है कि ब्रह्मचर्य की निष्ठा से वीर्य (बिन्दु) स्थिर होता है और इसी से शक्तियां बढ़ती हैं। हठ योग में बताया गया है कि जब तक साधक अपने बिन्दु (वीर्य) को ऊपर की ओर बनाए रखता है, तब तक उसे मृत्यु, प्राण हानि या समय के भय से डरने की जरूरत नहीं।

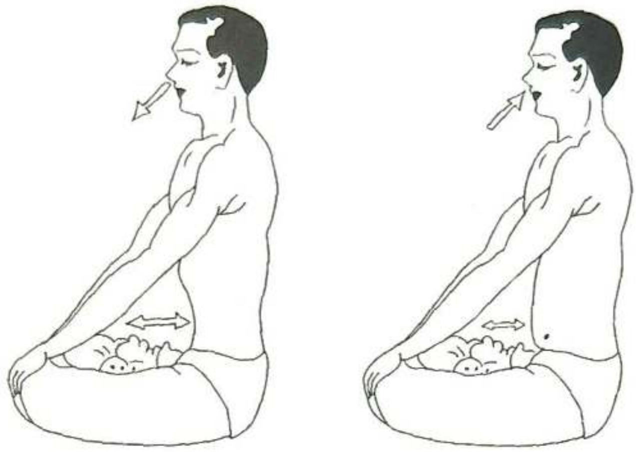
ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए योगासन —

(नोटः इन योगासनों का अभ्यास केवल योग्य मार्गदर्शन में ही करें)

शुद्धि क्रियाएं (षट्कर्म)	योगासन	प्राणायाम	बन्ध
कपालभाति	सर्वांगासन	नाड़ी शोधन प्राणायाम	उड्डीयान बन्ध
	शीर्षासन	शीतली प्राणायाम	मूलबन्ध
	सिद्धासन		

षट्कर्मः- कपालभाति — अभ्यास विधि

1. **बैठने की स्थितिः-**
   - सुखासन, पद्मासन या वज्रासन में सीधे बैठ जाएँ।
   - रीढ़ (spine) सीधी और कंधे ढीले रखें।
   - दोनों हाथ घुटनों पर ज्ञान मुद्रा में रखें।
   - आंखें बंद कर लें और ध्यान भीतर केंद्रित करें।



2. **श्वास लेना (Inhalation):-**

- नाक से हल्के से सामान्य सांस अंदर लें। इसमें कोई बल नहीं लगाना है।

3. **श्वास छोड़ना (Exhalation):-**

- नाक से झटके से तेज़ सांस बाहर फेंकें (exhale)।
- हर बार सांस छोड़ते हुए पेट को तेजी से अंदर की ओर खींचें (contract करें)।
- सांस लेना स्वाभाविक रूप से होगा, लेकिन सांस छोड़ना सक्रिय और बलपूर्वक होना चाहिए।

4. **अभ्यास चक्र:-**

- 50 बार श्वास-प्रश्वास करें (यह एक चक्र माना जाएगा)।
- 3 से 5 चक्र तक अभ्यास करें।
- अभ्यास के बाद भ्रूमध्य (भौंहों के बीच) में शून्यता का अनुभव करते हुए शांति महसूस करें।

5. **श्वसन का तरीका:-**

- श्वसन तीव्रता उदर से होनी चाहिए, वक्ष से नहीं।
- जैसे-जैसे उदर की मांसपेशियां मजबूत हों, श्वास-प्रश्वास की संख्या 10 से बढ़ाकर 20 तक की जा सकती है।

6. **अभ्यास का समय:-**

- दिन में किसी भी समय खाली पेट या भोजन के 3-4 घंटे बाद किया जा सकता है।

7. **अभ्यास के बाद:-**

- कपालभाति के बाद कुछ समय के लिए शांत बैठें।

8. **सावधानियाँ:-**

- यदि दर्द, चक्कर या असुविधा हो तो अभ्यास रोक दें।

9. **प्रतिबंध:-**

- गर्भवती महिलाएं, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, चक्कर आना, मिर्गी, दौरे, हर्निया, या गैस्ट्रिक अल्सर वाले लोग इसे न करें।

10. **लाभ:-**

- **वीर्य-नाश को रोकने में सहायक:-** कपालभाति द्वारा नाभि क्षेत्र और प्रजनन अंगों के आसपास की ऊर्जा का संचयन होता है। यह ऊर्जा नीचे की ओर बहने के बजाय ऊपर की ओर (ऊर्ध्वगामी) उठती है, जिससे वीर्य रक्षा होती है।
- **इंद्रिय संयम में मददगार:-** कपालभाति अभ्यास से मस्तिष्क की शुद्धि होती है और इच्छाएं नियंत्रित होती हैं। इससे काम-वासना जैसी भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है। यह चित्त को स्थिर और शुद्ध बनाता है, जो ब्रह्मचर्य का मूल आधार है।
- **मन और ऊर्जा का शुद्धिकरण:-** कपालभाति शरीर की नाड़ियों (energy channels) को शुद्ध करता है, जिससे प्राण ऊर्जा का प्रवाह सुचारु होता है। यह ऊर्जा नीचे की बजाय ब्रह्मरंध्र (सिर के मध्य भाग) की ओर जाती है, जो ब्रह्मचर्य पालन में अत्यंत सहायक है।
- **हॉर्मोन संतुलन और मानसिक नियंत्रण:-** यह प्राणायाम पिट्यूटरी और पीनियल ग्रंथि (जो ब्रह्मचर्य व मानसिक संयम से जुड़ी हैं)

को सक्रिय करता है। इससे हार्मोनों का संतुलन बना रहता है और वासनात्मक विचारों पर नियंत्रण करना सहज होता है।

- **ऊर्जा का संचय और रूपांतरण (Sublimation):-** कपालभाति उस जीवन ऊर्जा को, जो सामान्यतः भोग में व्यर्थ होती है, ऊपर उठाकर साधना, ध्यान और आध्यात्मिक विकास में लगाता है। यह वीर्य की ऊर्जा को ओज और तेज में परिवर्तित करने की शक्ति रखता है।

*****

योगासन

सिद्धासन—



विधिः-

1. जमीन पर पैर सीधे फैलाकर बैठें।
2. दाहिने पैर को मोड़ें और दाहिने तलवे को बायीं जाँघ के भीतरी हिस्से से इस तरह सटा कर रखें कि दाहिनी एड़ी का दबाव मूलाधार (प्रजनन अंग और गुदा द्वार के बीच का क्षेत्र) पर पड़े। यह सिद्धासन का एक महत्वपूर्ण चरण है।
3. शरीर को आरामदायक और स्थिर स्थिति में लाएं तथा एड़ी के दबाव को थोड़ा बढ़ाएं।
4. अब बायां पैर मोड़ें और बायां टखना सीधे दाहिने टखने के ऊपर रखें ताकि टखनों की हड्डियाँ आपस में स्पर्श करें और एड़ियाँ एक-दूसरे के ऊपर रहें।

5. बायीं एड़ी से प्रजनन अंग के ठीक ऊपर जघनास्थि पर दबाव डालें, जिससे प्रजनन अंग दोनों एड़ियों के बीच आ जाए। यदि यह स्थिति असुविधाजनक लगे तो बायीं एड़ी को जितना हो सके जघनास्थि के पास ही रखें।
6. बाएँ पैर की उँगलियाँ और पंजे को दाहिनी पिण्डली और जाँघ की मांसपेशियों के बीच फँसाएं। यदि जरूरत हो तो हाथ की मदद से या दाहिने पैर को थोड़ा हिला कर जगह बनाएं।
7. दाहिने पैर की उँगलियाँ पकड़कर बायीं पिण्डली और जाँघ के बीच फँसाएं।
8. फिर से शरीर को आरामदायक स्थिति में व्यवस्थित करें। घुटने जमीन पर टिके हुए और बायीं एड़ी दाहिनी एड़ी के ऊपर रहनी चाहिए ताकि पैर एक-दूसरे से बँध जाएँ।
9. मेरुदण्ड को सीधा और स्थिर रखें, ऐसा महसूस करें कि आपका शरीर जमीन में जड़ा हुआ है।
10. हाथों को घुटनों पर, ज्ञान मुद्रा में रखें।
11. आँखें बंद करें और पूरे शरीर को शिथिल करें।

सीमायें:-

- साइटिका या मेरुदण्ड के निचले हिस्से (त्रिकास्थि) में विकार वाले लोग इस आसन का अभ्यास न करें।

लाभ:-

- सिद्धासन मेरुदण्ड के ऊर्जा मार्ग में यौन ऊर्जा को नीचे के चक्रों से ऊपर की ओर प्रवाहित करता है, जिससे मस्तिष्क सक्रिय होता है और तंत्रिका तंत्र शांत होता है।
- नीचे रखा पैर मूलाधार चक्र को दबाता है और मूलबन्ध को सक्रिय करता है। ऊपर वाला पैर जघनास्थि पर दबाव डालकर स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करता है।

- यौन ऊर्जा की तरंगें मेरुदण्ड के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचती हैं, जिससे प्रजनन हार्मोन पर नियंत्रण स्थापित होता है।
- ब्रह्मचर्य पालन और आध्यात्मिक साधना के लिए यह आसन आवश्यक है।
- लंबे समय तक बैठने पर मूलाधार क्षेत्र में झुनझुनी या हल्की झनझनाहट महसूस होती है, जो रक्त संचार और प्राण शक्ति के पुनर्संतुलन का संकेत है।
- यह आसन मेरुदण्ड के निचले भाग, उदर, कटि-प्रदेश, श्रोणी और आमाशय को पोषण और रक्त संचार प्रदान करता है।
- प्रजनन तंत्र और रक्तचाप को संतुलित करता है।

*****

सर्वांगासन—



विधिः-

तह किए हुए कम्बल पर पीठ के बल लेट जाएँ। ध्यान रखें कि सिर और मेरुदण्ड एक सीध में हों, पैर सीधे और पंजे एक साथ रहें। हाथों को शरीर के दोनों ओर इस तरह रखें कि हथेलियाँ जमीन की ओर हों। शरीर और मन को पूरी तरह आराम दें।

पैरों को सीधा रखते हुए उदर की मांसपेशियों को कसें और भुजाओं की मदद से धीरे-धीरे पैरों को ऊपर उठाकर सीधे ऊपर की ओर लाएं। जब पैर पूरी तरह लम्बवत् हो जाएं, तो हाथों और भुजाओं से जमीन पर दबाव डालें। धीरे-धीरे नितम्ब और मेरुदण्ड को भी जमीन से ऊपर उठाएं और शरीर के धड़ को लम्बवत् कर लें।

हथेलियाँ ऊपर की ओर करें, कोहनियाँ मोड़ें और पीठ को सहारा देने के लिए हाथों को पसलियों के पीछे, मेरुदण्ड से थोड़ी दूरी पर रखें। कोहनियों के बीच कन्धों की चौड़ाई के बराबर पूरी होनी चाहिए। वक्ष को धीरे-धीरे आगे की ओर लाएं ताकि ठुड्डी पर दबाव पड़े।

अन्तिम स्थिति में पैर एक साथ, लम्बवत और गर्दन के साथ एक सीध में रहते हैं। शरीर कन्धों, गर्दन के पिछले भाग और सिर के पीछे टिकता है। भुजाएँ स्थिरता देती हैं, वक्ष ठुड्डी पर टिका रहता है और पैर शिथिल रहते हैं। आँखें बंद करें और जितना समय सम्भव हो इस स्थिति में रहें। शरीर को शिथिल रखें।

प्रारम्भिक स्थिति में लौटने के लिए पैरों को धीरे-धीरे आगे की ओर लाएं जब तक पंजे सिर के पीछे और उससे आगे न पहुँच जाएं। पैरों को सीधा रखें।

हाथों को धीरे-धीरे नीचे की ओर हटाएं और भुजाओं को शरीर के बगल में जमीन पर रखें, हथेलियाँ नीचे की ओर हों।

मेरुदण्ड को धीरे-धीरे नीचे लाएं जैसे हर कशेरुका को क्रमशः जमीन पर रखा जा रहा हो, फिर नितम्बों को भी जमीन पर रखें। घुटनों को सीधा रखते हुए पैरों को धीरे-धीरे जमीन पर उतारें। यह सब बिना भुजाओं के सहारे के करें।

सभी क्रियाओं को संतुलन और नियंत्रण के साथ करें ताकि शरीर धीरे-धीरे और सहज रूप से जमीन पर आ जाए।

श्वसन और हृदय गति सामान्य होने तक शवासन में विश्राम करें।

श्वसनः-

प्रारम्भिक स्थिति में सांस लें। अन्तिम स्थिति में आते समय सांस रोकें। जब शरीर स्थिर हो जाए तो धीरे-धीरे और गहरी उदर श्वास लें। शरीर जमीन पर लाते समय फिर सांस रोकें। प्रारम्भिक स्थिति में आकर सांस छोड़ें।

अवधिः-

प्रारम्भिक अभ्यासियों को अन्तिम स्थिति में थोड़ी देर ही रुकना चाहिए। सामान्य स्वास्थ्य के लिए सप्ताहों में धीरे-धीरे इस समय को बढ़ाकर 3-5 मिनट तक रखा जा सकता है। एक अभ्यास सत्र में इसे केवल एक बार करें।

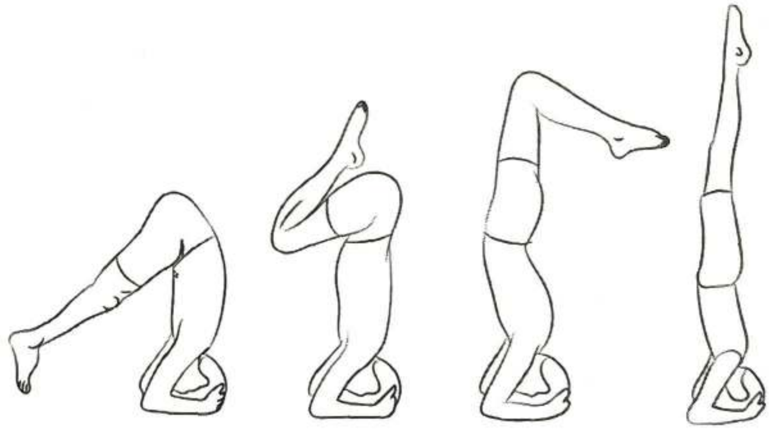
लाभः-

- इस आसन में वक्ष का दबाव ठुड्डी पर पड़ने से थायरॉइड ग्रंथि सक्रिय होती है, जिससे रक्त परिसंचरण, पाचन, प्रजनन, तंत्रिका तथा अंतःस्रावी तंत्र में संतुलन आता है। यह मस्तिष्क को पर्याप्त रक्त पहुंचाता है और मानसिक शांति प्रदान करता है। भावनात्मक तनाव, भय और सिर दर्द में राहत देता है और मनोवैज्ञानिक परेशानियों को कम करता है।
- थाइमस ग्रंथि सक्रिय होकर प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाती है। पैराथायरॉइड ग्रंथियों के सक्रिय होने से हड्डियों का विकास और पुनर्निर्माण होता है तथा असामयिक कैल्शियम जमाव रुकता है। उदर श्वसन के संयोजन से शरीर में ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान बेहतर होता है, जिससे तनाव कम होता है और उदर अंगों की मालिश होती है।

- सर्वांगासन गुदा की मांसपेशियों पर से गुरुत्वाकर्षण संबंधी अनावश्यक दबाव हटाता है, जिससे बवासीर की समस्या कम होती है। यह पैरों, उदर और जननांगों में अवरुद्ध रक्त और द्रव्यों को बाहर निकालकर रक्त संचार बढ़ाता है और पोषण प्रदान करता है।
- इस अभ्यास से गर्दन की कशेरुकाएं लचीली बनती हैं और ग्रीवा क्षेत्र से मस्तिष्क तक जाने वाली तंत्रिकाएँ मजबूत होती हैं। इससे कान, आँख और टाँसिल क्षेत्र को नया जीवन मिलता है तथा गले और नाक की कई बीमारियों से मुक्ति मिलती है।
- सर्वांगासन ऊर्जा के प्रवाह को नीचे से ऊपर की ओर ले जाने में सहायक होता है, जिससे वीर्यशक्ति मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होकर ओज, तेज और ध्यान शक्ति में परिवर्तित होती है।

*****

शीर्षासन —



एक समतल, शांत और साफ स्थान चुनें। नीचे कंबल या योगा मैट बिछाएँ। कुछ देर गहरी साँस लें और शरीर को शांत करें।

वज्रासन से आगे झुकते हुए अपनी कोहनियों को जमीन पर रखें और दोनों हाथों की उंगलियों को आपस में फँसाकर एक त्रिकोण बनाएँ।

सिर के ऊपर के हिस्से (माथे के थोड़ा पीछे) को दोनों हथेलियों के बीच फर्श पर रखें। हाथों से सिर को सहारा दें।

धीरे-धीरे पैरों को सीधा करते हुए हिप्स (कमर) को ऊपर उठाएँ।

शरीर का संतुलन बनाते हुए एक-एक कर घुटनों को मोड़कर छाती की ओर लाएँ, फिर धीरे-धीरे दोनों पैरों को ऊपर सीधा करें।

शुरुआत में 10-20 सेकंड तक इसी स्थिति में रहें। अभ्यास बढ़ने पर समय भी बढ़ाएँ।

धीरे-धीरे पहले घुटनों को मोड़ें, फिर पैरों को नीचे लाएँ और शिशुआसन (बालासन) में विश्राम करें।

यह आसन किसी की देख-रेख में ही करें।

शीर्षासन — लाभ

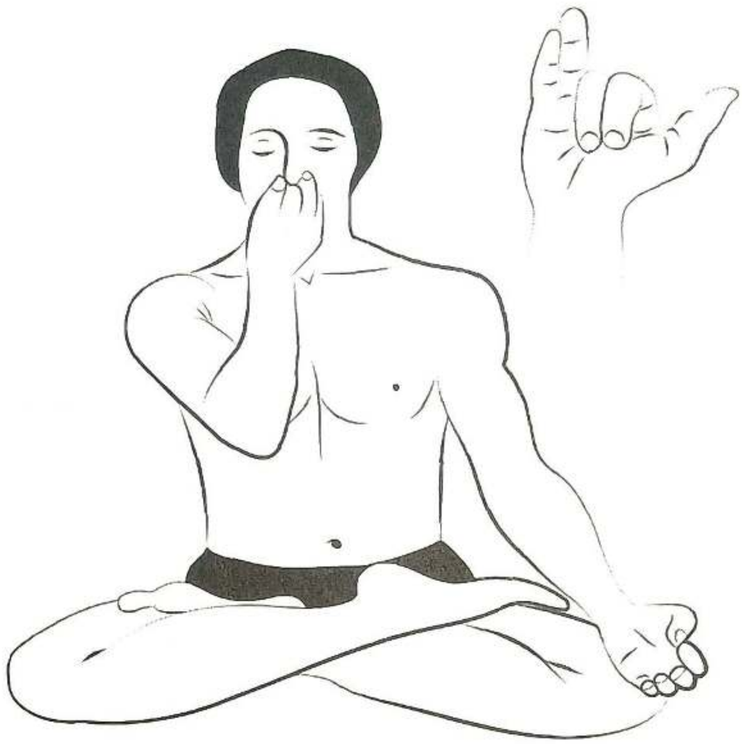
- यह आसन सहस्त्रार चक्र के जागरण के लिए अत्यंत प्रभावशाली अभ्यास माना जाता है और इसलिए इसे सर्वोत्तम आसनों में गिना जाता है। शीर्षासन मस्तिष्क तथा पीयूष ग्रंथि में रक्त संचार को बढ़ाता है, जिससे सम्पूर्ण शरीर और मन को पुनर्जीवन मिलता है। यह चिंता और अन्य मानसिक समस्याओं को दूर करता है, जो अनेक रोगों के मूल कारण होते हैं। इसी कारण यह दमा, हे फीवर, मधुमेह और रजोनिवृत्ति के दौरान उत्पन्न असंतुलनों को दूर करने में सहायक होता है।
- इसके अलावा, यह तंत्रिका तंत्र और ग्रंथि से संबंधित विभिन्न विकारों, विशेषकर प्रजनन से जुड़ी समस्याओं के निवारण में भी मदद करता है। शीर्षासन मेरुदण्ड पर पड़ने वाले गुरुत्वाकर्षण के दबाव को उलट देता है, जिससे पीठ पर लगने वाला भार कम हो जाता है। परिणामस्वरूप, रक्त का प्रवाह पैरों और आंतरिक अंगों से विपरीत दिशा में होता है, जो ऊतकों के नवनिर्माण में सहायक होता है।

- मध्यपट पर उदर अंगों का भार पड़ने से श्वास गहरी होती है, जिससे फेफड़ों से कार्बन डाइऑक्साइड, जैविक विषाक्त पदार्थ और जीवाणु प्रभावी रूप से बाहर निकल जाते हैं।

*****

प्राणायाम

नाड़ी-शोधन प्राणायाम—



नाड़ी शोधन की विधिः-

साधक पद्मासन में बैठकर चंद्र नाड़ी (बायीं नासिका) से श्वास अंदर लें। अपनी क्षमता अनुसार श्वास को रोके रखें और फिर सूर्य नाड़ी (दायीं नासिका) से श्वास छोड़ें। इसके बाद प्राण वायु को सूर्य नाड़ी से भरें, यथासंभव कुम्भक के साथ, और चंद्र नाड़ी से श्वास छोड़ें। श्वास-प्रश्वास को हमेशा धीरे-धीरे और नियंत्रित गति से छोड़ना चाहिए, कभी भी तेजी से नहीं। (ह.प्र. 2/6-9)

नाड़ी शोधन का लाभः-

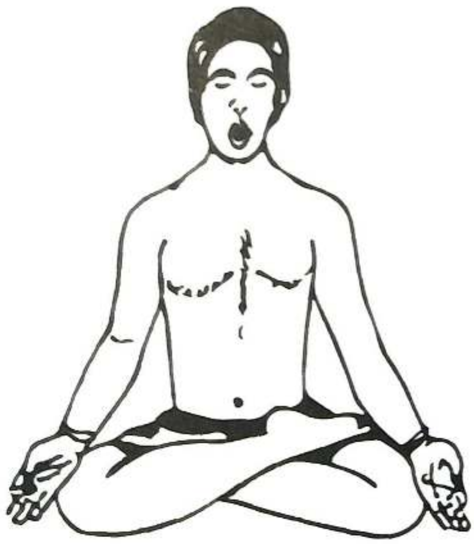
इस अभ्यास से साधक की नाड़ी समूह लगभग तीन महीनों के अभ्यास में निर्मल हो जाती हैं। (मासत्रयादूध्वतः शुद्धाः भवन्ति) (ह.प्र. 2/10)

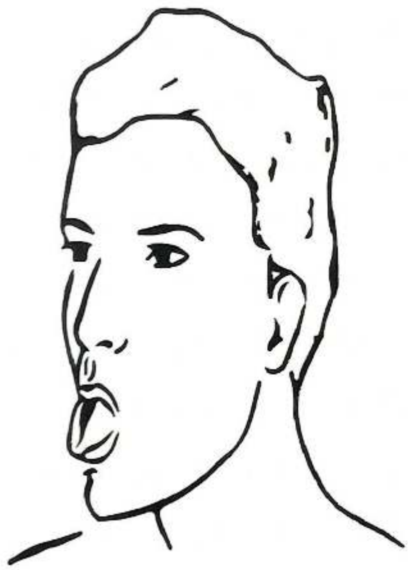
प्राणायाम करने का समय एवं संख्याः-

साधक को दिन में चार बार — प्रातः, मध्यान, संध्या और आधी रात को — प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए और धीरे-धीरे कुम्भक की संख्या अस्सी तक बढ़ानी चाहिए। (ह.प्र. 2/11)

*****

शीतली प्राणायाम—





विधिः- जिह्वा के माध्यम से वायु को अंदर खींचें, कुछ समय के लिए कुम्भक करें और फिर दोनों नासिका छिद्रों से धीरे-धीरे श्वास छोड़ें। इसे शीतली प्राणायाम कहा जाता है।

लाभः- इस अभ्यास से अजीर्ण और कफ-पित्त से संबंधित बीमारियां उत्पन्न नहीं होतीं। मन और शरीर को शांत करता हैं।

*****

उड्डियान बन्ध—



सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन या पद्मासन में बैठें। मेरुदण्ड सीधा रखें और घुटनों को जमीन से स्पर्श में रखें। नितम्बों को ऊँचा करने के लिए तकिये का इस्तेमाल किया जा सकता है। आँखें बंद करके पूरे शरीर को आराम दें ताकि घुटने नीचे रहें। हथेलियों को बिना मोड़े घुटनों पर रखें। नासिका से गहरी श्वास लें। फिर 'हुश्श...' की आवाज़ के साथ मुख मार्ग से श्वास बाहर निकालें और फेफड़ों को पूरी तरह खाली करें, श्वास बाहर रोकें। आगे झुकें, हथेलियों से घुटनों पर दबाव डालें, कोहनियों को सीधा करें और कंधों को ऊपर उठाएं, जिससे मेरुदण्ड अधिक फैलता है। ठुड्डी को वक्ष पर दबाकर जालंधर बन्ध लगाएं। उदर की मांसपेशियों को अंदर और ऊपर की ओर कसें। बिना ज्यादा जोर लगाए जितनी देर हो सके श्वास बाहर रोकें। फिर उड्डियान बन्ध खोलें, कोहनियों को मोड़ें, कंधे नीचे करें, सिर उठाएं और धीरे-धीरे श्वास लें। श्वास-प्रश्वास सामान्य होने तक इसी स्थिति में आराम करें और फिर अगला चक्र शुरू करें।

श्वसन:- उड्डियान बन्ध केवल बहिर्कुम्भक के साथ किया जाता है।

अवधि:- प्रारंभ में 3 चक्र करें। धीरे-धीरे शरीर अभ्यस्त होने पर चक्रों की संख्या बढ़ाकर 10 तक ले जाएं।

सजगता:- शारीरिक रूप से उदर क्षेत्र और श्वास के तालमेल पर ध्यान दें।

आध्यात्मिक प्रभाव:- यह मणिपुर चक्र को सक्रिय करता है।

क्रम:- सिर के बल किये जाने वाले आसनों के बाद उड्डियान बन्ध अभ्यास सरल हो जाता है।

सावधानियाँ:- यह एक उन्नत अभ्यास है, इसलिए इसे कुम्भक, जालंधर और मूल बन्धों में दक्षता प्राप्त करने के बाद ही अनुभवी मार्गदर्शक के मार्गदर्शन में करना चाहिए।

सीमाएँ:- वृहदान्त्र शोथ, आमाशय या आन्त्र के घाव, डायफ्रैग्म हर्निया, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, आंखों की गंभीर बीमारियाँ (जैसे ग्लूकोमा), और बढ़े हुए अंत:कपालीय दबाव वाले व्यक्ति इसे न करें। गर्भवती महिलाओं के लिए भी यह वर्जित है।

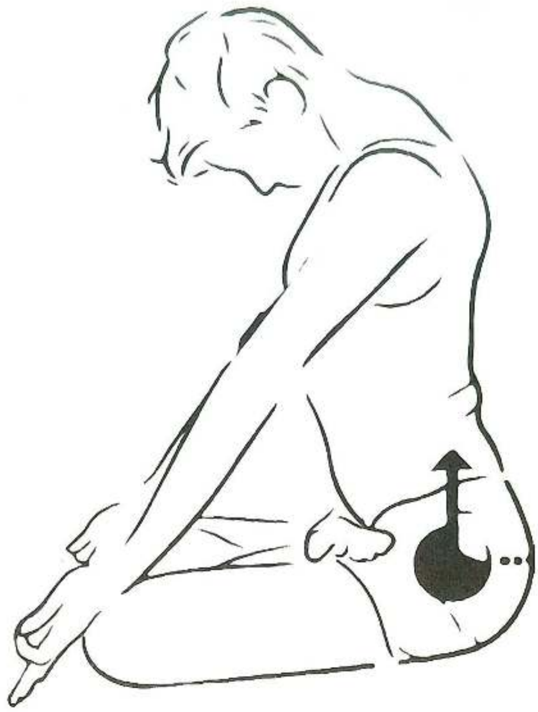
लाभ:-

उड्डियान बन्ध उदर और आमाशय से जुड़ी बीमारियों जैसे कब्ज, अपच, कृमि रोग, मधुमेह आदि के उपचार में अत्यंत प्रभावी है, विशेषकर जब ये रोग पुराने न हों। यह जठराग्नि को प्रज्वलित करता है और उदर के सभी अंगों की मालिश करता है जिससे वे मजबूत होते हैं। एडरीनल ग्रन्थियाँ संतुलित होती हैं, सुस्ती दूर होती है और चिंता तथा तनाव कम होता है। पूरे धड़ में रक्त संचार सुधरता है और सभी आंतरिक अंग पुष्ट होते हैं।

उड्डियान बन्ध मणिपुर चक्र को जागृत करता है, जिससे शरीर के भीतर ऊर्जा का प्रवाह बेहतर होता है। यह एक सूक्ष्म दबाव उत्पन्न करता है जो उप-प्राण, अपान और प्राण के प्रवाह को उलट देता है, जिससे नीचे से ऊपर की ओर ऊर्जा का संचार होता है। इससे ब्रह्मचर्य पालन में मदद मिलती है और मणिपुर चक्र सक्रिय होता है। अंततः यह एक सूक्ष्म शक्ति का विस्फोट उत्पन्न करता है जो सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से ऊपर की ओर बढ़ती है।

*****

मूल-बन्ध—



विधिः-

किसी आरामदायक आसन में बैठकर, आंखें बंद करें और शरीर को पूरी तरह आराम दें। गुदा की मांसपेशियों को संकुचित करते हुए धीमी और गहरी श्वास लें। मांसपेशियों को संकुचित बनाए रखते हुए अंत:कुम्भक करें। बिना तनाव के जितना संभव हो, संकुचन को मजबूत करें। फिर गुदा की मांसपेशियों को शिथिल करते हुए श्वास छोड़ें। इसे एक चक्र माना जाता है। जितना आराम से हो सके उतने चक्र करें।

शुरूआती लोगों को पेशियों पर अधिक जोर नहीं डालना चाहिए। जैसे-जैसे मांसपेशियां मजबूत होती हैं, अभ्यास की अवधि बढ़ाएं।

सजगता:- शारीरिक रूप से गुदा पर और आध्यात्मिक रूप से मूलाधार चक्र पर ध्यान दें।

सीमाएं:- जिनके गुदा-नाल में घाव (फिस्टुला) हो, उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य के लिए मूल-बन्ध (Mula Bandha) के लाभ —

- मूल-बन्ध के अभ्यास से जननेन्द्रियों की ऊर्जा ऊपर की ओर प्रवाहित होती है, जिससे कामेच्छा पर नियंत्रण स्थापित होता है। इससे ब्रह्मचर्य का पालन अधिक सहज होता है।
- यह अभ्यास मन को स्थिर करता है और चित्त की चंचलता को शांत करता है। इससे व्यक्ति काम-विकारों से मुक्त होकर आत्म-नियंत्रण की ओर अग्रसर होता है।
- मूल-बन्ध प्राणायाम के साथ करने पर प्राण शक्ति का संचय होता है, जिससे ऊर्जा नीचे व्यर्थ न होकर ऊपर के चक्रों में प्रवाहित होती है। यह आध्यात्मिक प्रगति में सहायक है।
- यह बन्ध पेल्विक फ्लोर की मांसपेशियों को मजबूत करता है, जिससे हस्तमैथुन या अशक्त करने वाली अन्य आदतों से बचाव में मदद मिलती है।
- मूल-बन्ध वीर्य रक्षा में सहायक होता है, क्योंकि यह वीर्य को नीचे गिरने से रोकता है और उसे ब्रह्मतेज में रूपांतरित करने में सहायता करता है।
- ब्रह्मचर्य पालन करने वाले साधकों के लिए ध्यान में स्थिरता आवश्यक होती है। मूल-बन्ध से ध्यान की गहराई और एकाग्रता बढ़ती है।

*****

Radha Radha Radha

हस्तमैथुन रोकने के उपाय

मन की शक्ति —

इस गलत आदत से बचने के लिए संकल्प और मन की शुद्धि अत्यंत आवश्यक है। अपने मन को दृढ़ बनाकर यह प्रण लें कि अब इस कृत्य को दोबारा कभी नहीं करेंगे। मन को कमजोर न होने दें, क्योंकि अगर मन चंचल हो गया तो यह क्रिया फिर से शुरू हो सकती है। जब भी या प्रतिदिन इस क्रिया को करने का मन करे, तब अपनी प्रतिज्ञा को याद करते रहें। प्रभु से निरंतर शक्ति और साहस की प्रार्थना करें, इससे आप इस दोष से दूर रह पाएंगे।

कई लोग सोचते हैं कि एक बार यह आदत लग गई तो जीवनभर नहीं छूटती, पर यह बिल्कुल गलत धारणा है। ऐसी सोच से निराशा उत्पन्न होती है और कभी-कभी आत्महत्या जैसे विचार भी जन्म लेते हैं। इसलिए ऐसी बातें कभी भी सच नहीं माननी चाहिए।

सच्चा वीर वही है जो अपने मन और इन्द्रियों का पूर्ण स्वामी हो, उन्हें अपने अधीन रखे, न कि स्वतंत्र या अनियंत्रित होने दे। इसलिए संतों ने कहा है, 'मन की बातों के विपरीत चलो'। क्योंकि मन का गुलाम बनना, सबका गुलाम बनने जैसा है।

श्री गोस्वामी जी ने भी कहा है—

काम क्रोध मद लोभ की जौ लौं मन में खान।
तौ लौं पण्डित मूरखौं तुलसी एक समान।।

अर्थात, श्री तुलसी दास जी कहते हैं कि जब तक व्यक्ति के मन में काम, क्रोध, अभिमान और लोभ का वास होता है तब तक ज्ञानी और मूर्ख दोनों एक समान ही होते हैं ।

आहार —

मन की शुद्धि के लिए आहार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। अभक्ष्य, राजसिक, तामसिक आहार, मांसाहार और मादक पदार्थों का सेवन मन में

कामवासना को बढ़ावा देता है, जिससे व्यक्ति कई बार मजबूर होकर हस्तमैथुन करने पर मजबूर हो जाता है। इसलिए आहार में संयम अत्यंत आवश्यक है। शास्त्रों में पूछा गया है — "को रुक्, को रुक्, को रुक्?" अर्थात्, कौन स्वस्थ है? इसका उत्तर है — हितभुक्, मितभुक् और ऋतभुक्। अर्थात्, जो हितकर आहार ग्रहण करता है, जो मिताहार (अल्पाहार) करता है और जो न्याय-नीति से कमाया हुआ भोजन ग्रहण करता है।

श्रुतियों में कहा गया है — '**अन्नमयं हि सौम्य मनः**', अर्थात् मन का निर्माण अन्न के सूक्ष्म अंशों से होता है। इसलिए मन में सत्त्वगुण की वृद्धि के लिए सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए और राजसिक व तामसिक आहारों का त्याग करना चाहिए।

सात्विक आहार वे होते हैं जो रसयुक्त, चिकने, स्थिर और हृदय को बल देने वाले होते हैं, जिनका नियमित सेवन करना लाभकारी होता है।

सात्विक आहार के उदाहरण —

- **अन्नः**- गेहूं, जौ, साठी, मूंग, अरहर, चना आदि।
- **फलः**- सेव, अमरूद, पपीता, नाशपाती, केला, नारियल, सिंघाड़ा, अनार, बेल आदि।
- **शाकाहारी सब्जियांः**- घीया, परवल, तोरई, मटर, शिमला मिर्च, कद्दू, टिंडा, मूली, खीरा आदि।

भोजन 24 घंटे में केवल दो बार करना चाहिए। भूख के अनुसार आधा भोजन करना चाहिए; पेट भरकर खाना उचित नहीं होता। दिन का भोजन 1 बजे से पहले और रात्रि का भोजन 8 बजे से पहले कर लेना चाहिए। भोजन के समय मन में कोई अशुद्ध विचार न हों, इसका विशेष ध्यान रखें।

दिनभर में कम से कम 3 से 5 लीटर पानी पीना चाहिए। पानी पीते समय बैठना चाहिए, पात्र को सीधे मुंह से लगाकर धीरे-धीरे चुस्की लेते हुए, मुंह में घुमाकर और छोटे-छोटे घूंटों में पानी पीना चाहिए ताकि लार ठीक से मिल सके। खाना खाने से एक घंटे पहले या खाने के बाद एक घंटे बाद ही पानी पीना उचित

होता है; भोजन के बीच में पानी पीना उचित नहीं माना जाता।

नियमित और संयमित भोजन करने से मन शांत और नियंत्रित रहता है। जो व्यक्ति अधिक भोजन करता है, वह वीर्य की रक्षा नहीं कर सकता क्योंकि उसका मन हमेशा विषयों में उलझा रहता है। इससे मन और शरीर दोनों रोगी हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्य को मजबूत बनाने और हस्तमैथुन तथा स्वप्नदोष को रोकने के लिए कुछ महत्वपूर्ण नियम —

- रात में अगर नींद टूट जाए तो फिर से सोने की इच्छा से बिस्तर पर न पड़े रहें। नींद टूटते ही हल्का शौच कर लें या पानी पीकर पुनः सोने से बचें।
- सूर्योदय से तीन घंटे पहले, यदि संभव न हो तो कम से कम एक घंटे पहले बिस्तर छोड़ दें।
- उठते ही आधा से एक पाव जल पीना चाहिए।
- शौच करते समय अत्यधिक जोर न लगाएं, और शौच के बाद गुदा और लिंग को गर्म पानी से धोना उचित नहीं है।
- लिंग और अंडकोष को हमेशा ठंडा रखें।
- जननांग के आसपास का क्षेत्र साफ-सुथरा रखें और मैला न होने दें।
- ठंडे पानी से स्नान करें, दिन में कम से कम दो बार स्नान करें, यदि संभव हो तो तीन बार करें।
- बुरे विचारों को मन में प्रवेश न दें, स्त्री-पुरुष संबंधी विचार और वार्तालाप से बचें।
- पशु-पक्षियों या किसी भी जीव के मैथुन को न देखें।
- उत्तेजक पदार्थों का सेवन न करें, नग्न चित्र या स्त्री-पुरुष के नग्न रूप को न देखें, अश्लील साहित्य से दूर रहें।
- वेश्याओं के मुजरे या उनके आस-पास घूमना उचित नहीं है।
- स्त्रियों, कन्याओं और छोटे बच्चों से एकान्त में बातचीत या स्पर्श न करें।

- अधिक गर्म दूध न पीएं और कच्चा दूध बिल्कुल न लें।
- भोजन हल्का और सुपाच्य करें, भूख लगने पर भोजन करें।
- भोजन सामान्यतः एक बार करें, रात्रि का भोजन न करें; यदि आवश्यक हो तो दो बार ही करें।
- अत्यधिक तीखा, मसालेदार, मीठा और खट्टा भोजन न करें, बाज़ार की मिलावटी वस्तुओं से बचें।
- शक्कर की जगह शहद का प्रयोग अधिक करें।
- लिंग के मुख पर चर्म हटाकर सुपारी का मैल शाम और सुबह ठंडे पानी से अच्छी तरह धोएं।
- लिंग पर तैल मर्दन न करें, महीने में एक-दो बार नमक के पानी से धोना पर्याप्त है।
- सर्दी के अलावा शरीर पर तैल मर्दन न करें।
- प्रेम संबंधी कथाएं न पढ़ें और अश्लील नाटक, सिनेमा या खेल-तमाशे न देखें।
- आत्मसंयम सीखें, शरीर को थकाने के लिए मेहनत करें।
- नियमित व्यायाम करें और चिंता से दूर रहें।
- मांसाहार न करें, और ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर दिन में शयन न करें।
- जब नींद न आए, तब बिस्तर पर जाकर नींद का इंतजार न करें।
- तिल, कुश्त, भस्म और वाजीकरण जैसी दवाइयां न लें।
- कन्याओं, वेश्याओं, बुजुर्ग महिलाओं और रजस्वला स्त्रियों से मैथुन न करें।
- पराई स्त्री को अपनी माता, बहन और पुत्री समान समझें।
- अधिक गर्मी से बचें, मुंह ढंककर न सोएं, जल्दी सोएं और जल्दी उठें।
- मानसिक श्रम अधिक न करें, संत-महात्माओं के जीवन चरित्र का अध्ययन करें।

- सादे वस्त्र पहनें, इत्र, फूल और गंध-माला न लगाएं।
- घोड़े या साइकिल की अधिक सवारी न करें।
- लिंग को दिन-रात मसलने की आदत न डालें, ज्यादा न सोएं और न अधिक जागें।
- लघुशंका और शौच की इच्छा को दबाएं नहीं।
- अधिक पानी पीएं, और अप्राकृतिक मैथुन जैसे हस्तमैथुन, पशुमैथुन, गुदा मैथुन से बचें।
- लघुशंका के बाद मूत्र मार्ग को ठंडे पानी से धोएं।
- औषधियों का अधिक सेवन न करें, ठंडे स्थानों पर रहें, गर्म स्थानों से बचें, खुले स्थानों में रहें।
- बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, चाय, कॉफी, सोडा-लेमन, भांग, गांजा, चरस, अफीम, हुक्का, मदिरा आदि का सेवन न करें।
- नरम गद्दों पर न सोएं, कठोर बिस्तर पर ही सोना चाहिए।
- एकांतवास करें, नग्न न सोएं, भोग-विलास की बातें न सुनें।
- किसी के साथ गले मिलकर या लिपटकर न सोएं।
- भोजन को अच्छी तरह चबाकर खाएं, सांस नाक से लें, मुंह से नहीं।
- रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) को सीधा और सम रखना चाहिए।
- सिर को अधिकतर खुला रखें, कभी-कभी नंगे पैर चलें।
- सादे और ढीले कपड़े पहनें।
- सोते समय लिंग और अंडकोष को ठंडे पानी से धोएं।
- कभी-कभी थोड़ी देर के लिए नाभि के नीचे गीले कपड़े का पट्टा बांधें।
- सूरज की रोशनी में समय बिताएं, गर्म प्रकृति वाले पदार्थ न खाएं।
- लाल मिर्च, सरसों, राई और गर्म मसालों का सेवन न करें।

- सप्ताह में एक दिन उपवास अवश्य करें, फलों का सेवन बढ़ाएं।
- भोजन और स्नान के बीच कम से कम तीन घंटे का अंतर रखें।
- भोजन के तुरंत बाद मैथुन न करें, स्त्रियों से अधिक वार्तालाप न करें।
- दिन में मैथुन न करें, खाली बैठने से बचें, हमेशा किसी कार्य में लगे रहें।
- बासी भोजन, सड़े या बासे फल न खाएं।
- बाल-विवाह न करें, जीवन भर वीर्य संरक्षण का ध्यान रखें।
- हवादार और खुली जगह में सोएं।
- एक बिस्तर पर दो या अधिक व्यक्ति न सोएं।
- वस्त्र सदैव स्वच्छ रखें।
- दिन-रात बार-बार कुछ न खाते रहें, यह आदत न डालें।
- स्वच्छ और शुद्ध वायु के लिए गांव से बाहर खुले क्षेत्र में जाएं।
- क्रोध न करें, हमेशा खुश और संतुष्ट रहें।
- मन पर नियंत्रण रखें, प्राकृतिक नियमों का पालन करें।
- भगवान पर अटल श्रद्धा और भक्ति बनाए रखें।

इन नियमों का पालन ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है और शरीर एवं मन को स्वस्थ रखता है।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।"

(अर्थात् सभी सुखी रहें, सभी निरोग हों, सबको शुभ दर्शन हों और कोई भी दुःख का भागी न बने।)

मादक द्रव्यों का त्याग — ब्रह्मचारी की आवश्यक सावधानी

वैद्यक शास्त्र कहता है — "*बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं, मदकारी तदुच्यते।*" (जिस पदार्थ से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाए, उसे "मदकारी" या "मादक"

कहा जाता है।)

शराब, भांग, गांजा, सिगरेट, तम्बाकू, बीड़ी जैसे मादक पदार्थों का सेवन न केवल शरीर और मन को नुकसान पहुँचाता है, बल्कि ब्रह्मचर्य की साधना में सबसे बड़ी बाधा है। *धर्मशास्त्रों के अनुसार* ये पदार्थ राक्षसी प्रवृत्तियों के आहार हैं — पौराणिक कथाओं में असुर और राक्षस ही इनका सेवन करते दिखाई देते हैं। लेकिन आज के समय में, यह विष इतना फैल चुका है कि यह सामान्य व्यवहार बनता जा रहा है।

जो व्यक्ति *ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है* और कामवासना जैसे आंतरिक शत्रुओं पर विजय पाना चाहता है, उसके लिए इन मादक द्रव्यों से पूर्ण परहेज़ अनिवार्य है। यहां तक कि जिन्हें बार-बार **स्वप्नदोष** की शिकायत रहती है, उन्हें चाय और कॉफी जैसे उत्तेजक पेयों का सेवन भी त्याग देना चाहिए, क्योंकि ये भी ब्रह्मचर्य के लिए अत्यंत हानिकारक हैं।

मादक पदार्थों का परिणाम —

इनसे व्यक्ति की **बुद्धि, विवेक और आत्म-नियंत्रण** क्षीण हो जाता है। और जब बुद्धि भ्रष्ट होती है, तब किसी भी प्रकार का पतन संभव हो जाता है।

बीड़ी और सिगरेट तो इन सभी दुर्व्यसनों की **जड़** हैं — इन्हीं से आगे चलकर व्यक्ति गांजा, अफीम जैसी घातक लतों की ओर बढ़ता है।

अतः ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य और सदाचार की रक्षा के लिए — *मादक द्रव्यों से पूर्ण रूप से दूर रहना आवश्यक है।*

डॉक्टरों के अनुसार, तम्बाकू का सेवन पुरुषों के स्वास्थ्य पर गंभीर और विनाशकारी प्रभाव डालता है। इसके कारणः-

- **वीर्य पतला और शीघ्र उत्तेजित** हो जाता है, जिससे पुरुषत्व कमजोर पड़ता है।
- **पित्त दोष** बढ़ता है, **नेत्र ज्योति** मंद हो जाती है और **मस्तिष्क व छाती** की शक्ति भी क्षीण होती है।

- यह **खांसी**, **दमा और कफ** जैसी समस्याओं को बढ़ाता है।
- इसके सेवन से व्यक्ति को **सामाजिक**, **आर्थिक और शारीरिक** तीनों स्तरों पर भारी हानि होती है।

तंबाकू में मौजूद '**निकोटिन**' एक अत्यंत जहरीला रसायन है। इसका केवल धुआं ही मेंढ़कों, मक्खियों और पक्षियों को मारने के लिए पर्याप्त होता है — तो सोचिए, जो व्यक्ति स्वयं इसका सेवन करता है, वह समय से पहले मृत्यु की ओर क्यों नहीं बढ़ेगा?

नशे के दुष्परिणाम भी उतने ही घातक हैं —

मादक द्रव्यों के सेवन से *कामवासना* उत्तेजित होती है, और जब उसकी पूर्ति संभव नहीं होती, तो व्यक्ति *हस्तमैथुन* या *व्यभिचार* जैसे मार्गों की ओर चला जाता है। साथ ही, नशा इन्द्रियों को शिथिल कर देता है और मानसिक कमजोरी पैदा करता है।

कुछ लोग यह गलत धारणा पाल कर रखते हैं कि **तम्बाकू, बीड़ी या सिगरेट** पीने से *पेट साफ होता है*, लेकिन यह एक **भ्रम** है।

वास्तव में, इसके विपरीत प्रभाव पड़ते हैं —

आंतें कमजोर हो जाती हैं, **कब्ज** की समस्या उत्पन्न होती है, जो आगे चलकर **स्वप्नदोष** जैसी समस्याओं का कारण बनती है।

*****

स्वप्रदोष से बचने के उपाय

मानसिक चिकित्सा —

मनुष्य का मन चित्र खींचने वाले कैमरे के समान है। जो भी दृश्य आंखों के सामने आता है, उसका चित्र खिंच जाता है। जैसी बातें मनुष्य सुनता है, देखता है, मुख से कहता है, ठीक वैसा चित्र उसके मन में अंकित हो जाता है। पूरे दिन में होने वाली क्रियाओं को मन संग्रह करता रहता है और इसका व्यक्ति को पता ही नहीं चलता। जब मन जागृत व स्वप्न अवस्था में कार्यरहित होता है, तब उन्हीं संग्रह किए हुए चित्रों को देखता है।

पूरे दिन यदि अच्छे कार्य और विचारों में डूबे रहे तो स्वप्न अच्छे आते हैं और यदि गंदे विचार करते रहे, तो स्वप्न भी गंदे आते हैं। जागते हुए मुख से कहा हुआ या कानों से सुना हुआ एक अश्लील शब्द भी अनेक गंदे स्वप्न उत्पन्न कर सकता है। जो गंदे स्वप्न या स्वप्नदोष से बचना चाहता है उसे चाहिए कि दिन में सावधान रहे। बुरे विचारों को मन में न आने दे, रात को स्वयं बचा रहेगा।

यदि कोई व्यक्ति जो ब्रह्मचर्य से रहता है, वह कुछ दिन या एकाध मास कुसंग में रह जाए, गंदी बातें कहे, सुने व देखे, तो उसका मन गंदे विचारों का स्थान बन जाएगा। मन व शरीर में गर्मी पैदा होगी, गंदे विचार उसके सारे शरीर को मथ डालेंगे, जो वीर्य सारे शरीर में रमा हुआ था, जिसका बाहर निकलना असंभव था, वह गंदे विचारों की उष्णता से अनायास ही शरीर से बाहर निकलने लगता है।

वीर्य की अधोगति हो जाती है, वीर्य पतला पड़ जाता है और नीचे की ओर बहने लगता है। जिस प्रकार दूध को मथने से घी बाहर आ जाता है, उसी प्रकार दुष्ट विचारों का प्रहार तलवार आदि शास्त्रों से भी अधिक घातक तथा भयंकर है। वीर्य के लिए शुद्ध और पवित्र विचारों से बढ़कर कोई सहायक नहीं। जागृत अवस्था में जिसे हम विचार कहते हैं, सोते हुए वे स्वप्न का रूप धारण करते हैं। दिन में गंदे विचारों के कारण काम-अग्नि भड़क उठती है, उसके कारण रात को स्वप्नदोष होकर ही रहता है।

निद्रा की स्वप्नदोष को रोकने में अहम भूमिका है। जिसे वीर्यरक्षा करनी है और स्वप्नदोष से बचना है उसे जल्दी सोने और जल्दी जागने का अभ्यास अवश्य डालना चाहिए। 10 बजे से पहले सो जाना चाहिए और 4 बजे से पहले उठ जाना चाहिए। क्योंकि स्वप्नदोष प्रायः रात्रि के अंतिम प्रहर में ही होता है। जैसे बाल्यावस्था नष्ट हो जाने से संपूर्ण जीवन दुःखमय बन जाता है वैसे ही प्रातःकाल खराब कर देने से पूरा दिन दुःखमय हो जाता है।

मन की शक्ति इतनी महान है कि उसके सामने बड़ी से बड़ी शक्तियां घुटने टेक देती हैं। हमारे पूर्वज मनोबल की महान शक्ति को जानते थे। जिनके शरीर में केवल अस्थिमात्र शेष थे, ऐसे मनोबल के भंडार, तपोनिधि ऋषि-मुनियों ने महापराक्रमी पुरुषों को भी परास्त किया था। यह सब मनोबल का ही चमत्कार था। जब मन की शक्ति इतनी बढ़ जाएगी तब आप स्वप्नदोष आदि दोषों से सहज में ही छुट्टी पा जाओगे। धार्मिक कृत्य, धार्मिक निष्ठा, ईश्वर भजन, पाप-कर्मों का भय, महात्मा, ज्ञानी पुरुषों की सत्संगति, अपनी मृत्यु का स्मरण, और अपने जीवन का उच्च ध्येय रखने से मन की शक्ति बढ़ती है।

कुसंग त्याग —

- कुसंगति, गपशप, नाटक, सिनेमा, उपन्यास (Novel) परित्याग कर देना चाहिए।
- विपरीत लिंग वालों से अधिक नहीं मिलना चाहिए, यदि व्यवहार के लिए मिलना पड़े, तो भगवत भाव या पवित्र भाव रखना चाहिए।
- स्कूल/कॉलेज एवं किसी अन्य जगह गंदे मित्रों का संग नहीं करना चाहिए, जो आपको भी गंदे मार्ग के लिए प्रेरित करता हो।
- मोबाइल या अन्य भोग-विलासिता के उपकरणों का त्याग करना चाहिए।
- किसी भी प्राणी को मैथुन करते हुए नहीं देखना चाहिए।

श्रीमद्भागवत् में अजामिल का चरित्र आता है, कि कैसे उनका एक शूद्र का वेश्या के साथ क्रीड़ा देखकर पतन हो गया था।

काम-वासना को बढ़ाने वाली वस्तुओं को न देखें, न कहें, न स्मरण करें।

कई बार परिवार के किसी निकट के संबंधी या घर में भी नौकर आदि से कुसंग हो जाता है, इसलिए इस बात से बिल्कुल सावधान रहें और बच्चों को भी सावधान रखें। ज्यादा किसी से घनिष्ठ संबंध न रखें।

वायु चिकित्सा —

प्रत्येक प्राणी के लिए कोई वस्तु अत्यंत आवश्यक है, तो वह है वायु। इसके बिना जीवन ही नहीं है। अधिकतर लोग ऐसे हैं जो हवा के विषय में जरा भी ज्ञान नहीं रखते। इसी अज्ञानता के कारण विविध प्रकार के रोगों की सृष्टि हो रही है। श्वासोच्छवास (respiratory system) की क्रिया से रक्त की शुद्धि और उसका परिचालन होता है।

स्वप्नदोष से ग्रसित व्यक्ति को हमेशा खुली हवा में रहना चाहिए। रहने के मकान में भी बहुत सारी खिड़कियां रखनी चाहिए। सोते समय किसी बंद मकान में हवा के मार्गों को रोक कर नहीं सोना चाहिए। हवा को अच्छी तरह से समझ कर उसका उपयोग करने से मनुष्य को कोई रोग ही नहीं हो सकता है।

स्वप्नदोष के रोगियों को नित्य वायु स्नान (Air Bath) करना चाहिए। वायु स्नान (Air Bath) एक प्राकृतिक और पारंपरिक स्वास्थ्य पद्धति है जिसमें व्यक्ति अपने शरीर को खुली हवा में कुछ समय तक रखता है ताकि ताज़ी और शुद्ध वायु का सीधा संपर्क त्वचा व शरीर से हो सके। सिर्फ तीन महीने के वायु-स्नान से स्वप्नदोष होना रुक जाता है।

वायु स्नान इस प्रकार करना चाहिए- गांव से बहुत दूर जंगल में ऐसे स्थान में जाओ, जो एकदम निर्जन हो, जहां शुद्ध हवा अच्छी तरह बहती हो। वहां जाकर अपने शरीर के सब वस्त्र उतार दे, केवल लंगोट पहनकर रखें, दोनों पैरों को मिलाकर और हाथों को फैलाकर खड़े हो जाओ। इस क्रिया को नित्य-प्रतिदिन आधे घंटे करना चाहिए, अवश्य ही स्वप्नदोष दूर हो जाएगा। यदि जंगल में जाना असुविधाजनक या असंभव हो तो घर में ही वायु-स्नान किया जा सकता है। बस इतना है कि वायु शुद्ध और विपुल मात्रा में हो।

इस चिकित्सा को करने वाले को अधिकांश नंगे शरीर रहना चाहिए। वायु-स्नान के बाद जल-स्नान नहीं करना चाहिए। यदि प्रातःकाल वायु-स्नान किया हो तो सायंकाल को जल-स्नान, शीतल जल से करना चाहिए। सांस नाक से ही लेना और छोड़ना चाहिए, मुख से नहीं, यह बात भूलना नहीं चाहिए।

जल-चिकित्सा —

वायु की तरह जल भी मनुष्य के शरीर में अत्यंत आवश्यक है। हालांकि जल के बिना जीवन संभव नहीं है, फिर भी इनके गुणों की तरफ हमारा ध्यान बहुत ही कम जाता है। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए जिस प्रकार शुद्ध वायु की जरूरत है, उसी तरह शुद्ध जल की भी आवश्यकता है।

पृथ्वी के भीतर जल के बड़े-बड़े स्रोत बहते रहते हैं, उस स्रोत से जल कुएं और बावलियों में आता है, यह बहने वाला जल विविध रासायनिक पदार्थों को छूते हुए और अपने साथ बहाते हुए इधर से उधर बहता रहता है। जिस जल को हम पृथ्वी से खोदकर प्राप्त करते हैं, वह जल वहीं पर था, ऐसा मान लेना भूल है। इधर-उधर बहने के कारण वह जल औषध रूप बन जाता है।

यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि यह शुद्ध जल, जो हम कुएं या बावलियों से पीते हैं, वह डॉक्टरों, हकीमों, वैद्यों की महंगी औषधियों से अधिक मूल्यवान और गुणप्रद है। जो स्वप्नदोष की बीमारी से पीड़ित हैं उसे शुद्ध, सुस्वादु, स्वच्छ, निर्मल और शीतल जल ही उपयोग में लाना चाहिए। यदि जल में कुछ कूड़ा-कचरा नजर आए तो उबाल कर, फिर ठंडा करने के बाद उसे पीना चाहिए। 15-20 सेर जल में उबलते वक्त यदि चने के बराबर सफेद फिटकिरी डाल दी जाए, तो जल का मल जल्द शुद्ध हो जाएगा।

स्वप्नदोष वालों को मृदु जल ही पीना चाहिए। जल को पहचानने का यह तरीका है कि जिस जल में साबुन मसलने से झाग न उठे उसे कठोर समझना चाहिए। पानी अत्यंत धीरे-धीरे पीना चाहिए। उस समय यह विचार करना चाहिए कि मैं इस जल पान से स्वप्नदोष को हटा रहा हूं और यह मेरे रोग के लिए ईश्वरीय औषधि है।

औषधि चिकित्सा —

कुछ मामले में स्वप्नदोष की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि हर दूसरे दिन या हफ्ते में कई बार हो जाता है। यह बड़ी विचारणीय स्थिति है और नियमित प्राकृतिक उपचार के साथ कभी-कभी आयुर्वेदिक वैद्य से मिलकर उनसे चिकित्सा करवानी चाहिए या आयुर्वेदिक औषधियां लेनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा —

वैद्यों द्वारा अनुभूत कुछ प्राकृतिक चिकित्सा के कारगर नुस्खे इस प्रकार हैं:-

- सतावरि और विरादरीकन्द, दोनों बराबर लेकर उसमें खरहटी के रस की 7 भावना देकर छोटी गोलियां बना लें और रोज सुबह-शाम एक-एक गोली आधे सेर गोदुग्ध के साथ लें, स्वप्नदोष में अवश्य लाभ होगा।
- दो मशा कबाब (मात्रा की इकाई) चीनी का चूर्ण, शहद के साथ नित्य सोते समय कम से कम 21 दिन सेवन करें, इससे स्वप्नदोष जाता रहता है।
- ईसबगोल की ताजा भूसी, 1 तोला, सिंघाड़ा सूखा, 2 तोला, धुहारा, 4 तोला और देशी शक्कर की मिश्री, 7 तोला लेकर चूर्ण बना लें। रोज 1 तोला प्रातःकाल गाय के दूध के साथ सात दिन तक सेवन करें, इससे अवश्य लाभ होगा। इन दिनों में नमक नहीं खाना चाहिए।
- अशोक की छाल, 2 तोला लेकर पाव भर पानी में उबालो, फिर उसे छान लो, आधा तोला शहद मिलाकर सेवन करो। नित्य प्रातः कई दिन सेवन करने से स्वप्नदोष चला जाएगा।
- चोबचीनी का चूर्ण, 1 तोला, गो घृत, 1 तोला और 1 तोला मिश्री को मिलाकर नित्य प्रातः सेवन करें। गुड़, तेल, मिठाई, मिर्च और मादक द्रव्यों से परहेज करें। चोबचीनी को चीन शतावरी, चीन मूल, या कभी-कभी चीन की जड़ भी कहा जाता है। यह एक औषधीय बेल होती है, जिसकी जड़ विशेष रूप से उपयोग में लाई जाती है।

- त्रिफला 3 तोला, बच का चूर्ण 1 तोला, पुराना गुड़ 4 तोला, इन सबको पीस कर गोली बना लें। प्रातः और सायंकाल एक-एक गोली ठंडे पानी के साथ सेवन करें।
- बबूल की कोंपले खाकर, ऊपर से ठंडा पानी पी लें। दो हफ्ते सेवन से लाभ होगा।
- सहदेई की जड़ का महीन चूर्ण गोदुग्ध में डालकर कुछ दिन तक सेवन करें।
- शिलाजीत शुद्ध तीन रत्ती और बंगभस्म, एक रत्ती, शहद के साथ सेवन करके, ऊपर से मिश्री मिला कर गोदुग्ध सेवन करने से स्वप्नदोष नष्ट होता है। 40 दिन तक सेवन करके देखें।
- सूखा धनिया और सफेद शक्कर, दोनों मिश्रण करके चूर्ण बना लें। रोज 6-7 ग्राम चूर्ण शीतल जल के साथ सेवन करें। पांच सप्ताह प्रयोग करना चाहिए।
- पानी की सूखी हुई काई (शेवार) का चूर्ण बनाकर मिश्री मिलाकर रख लें। नित्य 6-7 ग्राम गोदुग्ध के साथ सेवन करने से स्वप्नदोष दूर होता है।
- पोटैशियम ब्रोमाइड 30 ग्राम, इतनी ही मात्रा के पानी में नित्य 10-12 दिन तक सेवन करने से लाभ होता है।
- कैम्फर मोनो ब्रोमाइड 5 ग्राम, 2.5 तोला पानी के साथ नित्य सेवन करने से भी स्वप्नदोष दूर होता है।

इस औषधियों के अतिरिक्त भी यदि औषधियों को लेने की आवश्यकता जान पड़े तो किसी वैद्यक ग्रंथ से मदद लेनी चाहिए। अथवा किसी योग्य विश्वसनीय वैद्य से मिलकर रोग की दवा करानी चाहिए।

*****

तृतीय खण्ड

कामवेग की प्रबलता
जहाँ हो, जैसे हो, वैसे ब्रह्मचर्य!

महान ऋषि याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचर्य के नियमों में बताया है-

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।।

मन, वचन और शरीर से सब अवस्थाओं में सदा और सर्वत्र मैथुन-त्याग का नाम ब्रह्मचर्य है। जो मन, वचन और शरीर से मैथुन न करे, वही सच्चा ब्रह्मचारी है।

वर्तमान समय और ब्रह्मचर्य

मनुष्य इच्छाओं का पुतला है। वह अपने व्यावहारिक जीवन में मन के वशीभूत होकर अनेकों आकांक्षाएं करता है। वह अपना सारा जीवन इच्छाओं की पूर्ति के लिए लगा देता है। कंचन, कामिनी, कीर्ति उसका पीछा नहीं छोड़तीं। प्रत्येक मनुष्य की अनेकों कामनाएं होती हैं- अच्छा घर-बार, अच्छा स्वास्थ्य, सुंदर स्त्री और समाज में खूब मान बढ़ाई। कामनाओं की पूर्ति के लिए उसका मस्तिष्क अनेकों काल्पनिक चित्रों का चित्रण करना प्रारम्भ कर देता है। सम्पूर्ण मानसिक शक्तियां प्रबल होकर उसी इच्छा की पूर्ति के लिए एकजुट होकर काम करने लगती हैं। उसकी सभी शारीरिक चेष्टाएं उसी दिशा में कार्य करती हैं।

परम पिता परमेश्वर श्री भगवान् के हृदय में एक भावना उठी **"एकोऽहं बहुस्याम्"** और उसी सदेच्छा से यह मंगलमय संसार बन कर तैयार हो गया। अत: किसी भी वस्तु-विशेष की कामना करना अच्छी बात है, किन्तु उस कामना का सदुपयोग या दुरूपयोग करना यह मनुष्य की व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर करता है। इच्छा एक भाव है जो किसी अभाव, सुख या आत्मा तुष्टि के लिए उदित होता है। इन सभी इच्छाओं का संबंध भौतिक जगत से ही होता है।

अच्छी या बुरी जैसी भी इच्छा लेकर हम जीवन क्षेत्र में उतरते हैं, वैसी ही परिस्थितियां और सहयोग भी जुटते चले जाते हैं। मनुष्य शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। वे सभी मस्तिष्क के साथ जुड़ी हैं। मस्तिष्क से ही अपनी-अपनी अनुभूति, संवेदनाएं वे ग्रहण करती हैं। उस विषय की जानकारी मस्तिष्क तक पहुंचती है और मस्तिष्क वस्तुस्थिति का परिचय प्राप्त करने के अतिरिक्त उनका निरीक्षण-परीक्षण भी करता है, और अगले क्षणों में क्या करना है, इसका निर्धारण करता है। तदनुसार अन्य अवयव अपना कार्य प्रारंभ कर देते हैं।

मस्तिष्क की कल्पनाएं भी अपना काम करती हैं। जो उपयोगी समझी जाती है वह महत्व पाती है और जो निरर्थक होती है, उसे उपेक्षित कर दिया जाता है। इसी प्रकार हमारी शारीरिक, मानसिक गतिविधियों का सूत्र संचालन होता रहता

है। पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों में से उन्हीं की सक्रियता बढ़ती रहती है जिनका निरन्तर उपयोग होता रहता है। कर्मेन्द्रियों की दृष्टि से विषय आहार्य, ज्ञानेन्द्रियों की दृष्टि से प्रकाशमय और अंत:करणों की दृष्टि से धार्य है।

अर्थात् कर्मेन्द्रियां विषयों का आहार करती हैं, अर्थात् उन्हें व्याप्त करती हैं, ज्ञानेन्द्रियां विषयों को प्रकाशित करती हैं और अंत:करण विषयों का स्मृति आदि के रूप में धारण करते हैं। इन्द्रियां आत्मा की औजार हैं, सेवक हैं। प्रभु ने इन्हें हमें इसलिए प्रदान किया कि इनकी सहायता से आत्मा की आवश्यकताएं पूरी हो सकें। सभी इन्द्रियां बहुत उपयोगी हैं। सभी का कार्य जीव को उत्कर्ष और आनंद प्राप्त कराना है।

यदि इनका सदुपयोग किया जाए तो मनुष्य निरंतर जीवन का मधुर रस चखता हुआ जन्म सफल बना सकता है। किन्तु इंद्रिय-निग्रह आवश्यक है। निग्रहित इन्द्रियों से बढ़कर मनुष्य का सच्चा मित्र तथा अनियंत्रित इन्द्रियों से बढ़कर शत्रु और कोई नहीं है। इन्द्रियों का दुरुपयोग ही नाश का कारण है।

प्रमाद में फंसी इन्द्रियों के सुख में स्थिरता नहीं है। इंद्रिय-सुख के लिए मनुष्य को अनेक कुचक्रों, कुटिल नीतियों का अवलंबन लेना पड़ता है। एक इंद्रिय को तृप्त करते-करते मनुष्य अधिकाधिक सांसारिकता में लिप्त होता ही जाता है। जब तक मन और इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण नहीं होता, तब तक सुख की आशा करना व्यर्थ है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में निर्देश किया है-

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

गीता (6/36)

अर्थात् मन को संयमित न करने वाले पुरुष के द्वारा योग दुष्प्राप्य (प्राप्त करना कठिन) है। स्वाधीन मन (संयमित मन) वाले प्रयत्नशील पुरुष के द्वारा ही योग प्राप्त होता है। इष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।

अभ्यास और वैराग्य से मन को वश में करने में बहुत सहायता मिलती है। यह स्थिर और चंचल मन जिस-जिस कारण से संसार में जाए, उससे हटाकर इसे

आत्मा में लगाएं। वासनाओं को जीतने के लिए आध्यात्मिक चिंतन अत्यावश्यक है। जिन लोगों के मन पर वासनाओं ने अधिकार जमा लिया है और जो इसके फलस्वरूप इंद्रियों के दास बन चुके हैं, उनका छुटकारा सहज ही नहीं होता। वे विषयों की बुराइयों को जानकर भी निर्बलता अथवा मोहवश उनके फंदे से नहीं निकल पाते। इन वासनाओं में प्रायः कामवासना ही सर्वप्रधान होती है और सबसे पहले उसी के निग्रह की चेष्टा की जानी चाहिए।

काम-वासना बहुत शक्तिशाली होती है। यह एक कुसुम धनुष साथ लेकर चलती है, जिसमें मोहन, स्तंभन, उन्मादन, शोषण, और पतन रूपी पांच बाण सजे होते हैं। विवेक, विचार, भक्ति और ध्यान इस घोर राग को भेदने का कार्य करते हैं।

इन्द्रिय निग्रह का मूल मंत्र अपने को आवेशों से बचाए रखना है। आवेशों से बचना आवश्यक है। जिस व्यक्ति के भीतर तरह-तरह के मनोवेगों का तूफान उठता रहता है, उसका मानसिक संतुलन स्थिर नहीं रह सकता और इससे वह इन्द्रियों को वशीभूत रखने में भी असमर्थ हो जाता है। इसलिए जो लोग इन्द्रियों को संयम में रखना चाहते हैं उनके लिए अपने मनोवेगों पर भी सदैव दृष्टि रखना आवश्यक है।

मनुष्य का जन्म इस पृथ्वी पर किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए हुआ है। यह सुयोग उसे बार-बार नहीं मिलेगा। आज जो शारीरिक, मानसिक और भावनाओं की क्षमता हमें मिली है, कौन जाने अगले जन्मों में भी मिलेगी अथवा नहीं। हम स्वास्थ्य, सद्गृहस्थ, धन और यश की कामना करें पर परमार्थ को भी भुलाएं नहीं।

वासना-त्याग के बिना चैन कहां?

मनुष्य इस वैज्ञानिक युग में अपनी सारी ऊर्जा सुख-सुविधाओं को उन्नत करने, बढ़ाने और फिर उनको भविष्य के लिए संचय करने में लगा देता है। सुख-शांति की खोज में उसने आकाश-पाताल एक कर दिया, किन्तु क्या उसे अब तक सुख-शांति की प्राप्ति हो सकी है?

मनुष्य की सुख-लिप्सा बहुत बढ़ गई है। जिस वस्तु में बहुत स्पृहा अपनी सीमा को लांघ जाती है, तब वह दुःख का कारण बन जाती है। शारीरिक सुख, वासना सुख मिलते ही वह और सुख की कामना करने लगता है। इस प्रकार उसकी स्पृहा असंतोष का रूप धारण कर लेती है। असंतुष्ट कामनाओं की पूर्ति असंभव है। जहां असंतोष है, अतृप्ति है, वहां सुख और शांति कहां? असंतोष में बदली हुई अपनी लिप्सा पूरी करने के लिए कामनाओं से प्रेरित किया हुआ मनुष्य उचित-अनुचित, उपयुक्त-अनुपयुक्त, सभी प्रकार के काम करने में प्रवृत्त हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य की भोगेच्छा ही दुःख एवं अशांति का बड़ा कारण है। वह इस भ्रम का शिकार बना हुआ है कि सुख का निवास सांसारिक भोगों में है। जो लोग चन्द घड़ी के सुख के लिए ब्रह्मचर्य का त्याग कर देते हैं, वे जीवन में कभी सुखी नहीं रह पाते।

अधिक भोग-विलास में लिप्त व्यक्ति, तीनों तापों से त्रस्त रहते हैं। उनका शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, मन मलिन हो जाता है, बुद्धि का पतन हो जाता है। भोगों की तृष्णा एक ऐसी अक्षय प्यास है जो कभी शांत ही नहीं हो सकती।

राजा ययाति भोगों में आनंद की कल्पना कर बैठे। परम सुख पाने के लिए वे पूरी तरह से भोगों में डूबे रहने लगे। उनकी शक्ति समाप्त हो गई, किन्तु भोगेच्छा और भी बढ़ गई। विषय-वासनाओं के बन्दी राजा ने कोई उपाय न देखकर अपने छोटे पुत्र से एक हजार वर्ष तक के लिए जवानी की याचना की इसलिए कि वे अपनी अतृप्त काम-वासनाओं को पुनः भोग सकें। पुत्र को अपने पिता की दशा पर बड़ा तरस आया, उसने अपना यौवन उन्हें दे दिया।

पुत्र से यौवन लेकर राजा ययाति पुनः भोगों में डूब गए और पूरे एक सहस्त्र वर्षों तक डूबे रहे। उन्हें पूरी आशा थी कि वे विषय-वासना के माध्यम से सच्ची शांति पा लेंगे। किन्तु एक सहस्त्र वर्ष बीतने पर जब पुत्र को यौवन वापस करने का अवसर आया तो उन्होंने देखा कि उनकी भोग-लिप्सा और अधिक बढ़ गई है।

एक दिन उन्होंने सोचा कि विषयों का बार बार सेवन करते-करते मेरे एक हजार वर्ष पूरे हो गए फिर भी क्षण प्रति क्षण उन भोगों की लालसा बढ़ती ही जा रही है। यह सोचकर उन्होंने अपनी जवानी पुत्र को लौटा दी और बुढ़ापा वापस ले लिया और समस्त संपत्तियों से भरे राज्य को अपने पुत्र को सौंपकर वन में चले गए और वहाँ समस्त आसक्तियों से छुटकारा पा लिया और आत्म-साक्षात्कार द्वारा भगवत प्राप्ति की।

विकृत कामनाएं-वासना की जड़!

"संयमित इच्छाएं जीवन को दिशा देती हैं, जबकि विकृत कामनाएं जीवन को विनाश की ओर ले जाती हैं।"

मनुष्य के लिए साध्य, सुख और शांति का निवास कामनाओं, उपादानों अथवा भोग-विलासों में नहीं है। जो निस्वार्थी, निष्काम, पुरुषार्थी, परोपकारी, संतोषी तथा परमार्थी है, वही सच्ची सुख-शांति का अधिकारी है। जीवन रक्षा और जीवन विकास के लिए कामना तथा इच्छा दोनों का होना अनिवार्य है। वासना में इन्द्रिय सुख का आकर्षण होने से स्वास्थ्य और सदाचार का उल्लंघन किया जाता है, तभी वह त्याज्य मानी जाती है। इन्द्रिय सुखों की अत्यधिक लालसा जब वासना का रूप ले लेती है, तो वह सर्वथा निंदनीय मानी जाती है।

कामना विकृत होकर लोभ, तृष्णा और आसक्ति को जन्म देती है। इन विकारों के बढ़ जाने से मनुष्य की इच्छाशक्ति एवं आत्मबल क्षीण हो जाते हैं, और फिर भय, आशंका, चिंता, अशांति, आदि का प्रादुर्भाव होता है। जिससे मनुष्य का आंतरिक एवं बाह्य जीवन संघर्षमय बन जाता है, जिसका परिणाम पतन, विनाश, असफलताओं के रूप में निकलता है।

कामना और वासना की विकृति से मनुष्य में कई शारीरिक एवं मानसिक विकार पैदा हो जाते हैं, जो मनुष्य के जीवन क्रम तथा चेष्टाओं में असंतुलन पैदा करते हैं। इस स्थिति में मनुष्य का अभिमान प्रबल हो जाता है, और अभिमान के खूंटे से बंधी हुई साथ-साथ विकृत वासना, कामनाओं की जड़ें मजबूत हो जाती

हैं। कामना, वासना में विक्षेप पड़ने से उसके अहंकार को चोट पहुंचती है, और इसकी परिणति क्रोध के रूप में प्रकट होती है।

क्रोध से बुद्धि, विवेक नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य जो चाहे सो कर बैठता है। वासनाओं की पूर्ति में विक्षेप पड़ने पर आए दिन होने वाली दुर्घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रत्यक्ष में दिखने में आ रहा है।

मूल सार बात यह है कि मनुष्य अपनी कामना, वासना, इच्छाओं को 'स्व' से हटाकर 'पर' की ओर प्रेरित करें। स्थूल जीवन से हटाकर आत्मा-परमात्मा की ओर अभिमुख हों।

वर्तमान समय में ब्रह्मचर्य की महत्ता

वर्तमान समय में ब्रह्मचर्य (यानि इंद्रिय संयम या यौन संयम) की महत्ता पहले से कहीं अधिक हो गई है, विशेष रूप से जब हम मानसिक शांति, आत्म-विकास और ऊर्जा के संरक्षण की दृष्टि से इसे देखते हैं। इसका महत्व अलग-अलग व्यक्तियों और जीवनशैली के आधार पर भिन्न हो सकता है।

- **मानसिक एकाग्रता और ऊर्जा का संरक्षण** करना जरूरी है। क्योंकि आज का युग डिजिटल डिस्ट्रैक्शन का युग है- सोशल मीडिया, अश्लील सामग्री की उपलब्धता और अत्यधिक उत्तेजना से मन लगातार विचलित रहता है। ब्रह्मचर्य का पालन मानसिक शांति और एकाग्रता में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपनी ऊर्जा को सकारात्मक कार्यों में लगा सकता है।
- **शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य** अति आवश्यक हो गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह पता चला है कि यौन अतिरेक (Sexual excess) से शरीर में थकावट, एकाग्रता में कमी और अवसाद जैसी समस्याएँ हो सकती हैं। संयमित जीवनशैली शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है और मानसिक स्थिरता भी लाती है।
- **आत्म-नियंत्रण और आत्म-विकास** के लिए एक उचित समय तक ब्रह्मचर्य धारण करना बहुत जरूरी है। ब्रह्मचर्य सिर्फ यौन संयम नहीं है,

Radha Radha
Radha Radha Radha

बल्कि इंद्रियों पर नियंत्रण और विचारों की शुद्धता भी है। इससे व्यक्ति अपने भीतर की शक्ति को पहचान सकता है और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

- **संबंधों में शुद्धता और सम्मान** अति आवश्यक। यहां "संबंधों में शुद्धता और सम्मान" से अभिप्राय यह है कि किसी भी रिश्ते (जैसे- मित्रता, प्रेम, वैवाहिक या पारिवारिक संबंध) में स्वार्थ, वासना या शारीरिक लालसा की प्रधानता न होकर, सम्मान, आत्मीयता और सच्ची भावना का स्थान हो। ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने से संबंधों में लालसा और स्वार्थ की भावना कम होती है, जिससे रिश्ते ज्यादा आत्मिक और परिपक्व बनते हैं।
- **युवाओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी।** आज के युवा अनेक प्रकार के व्यसनों से घिरे हुए हैं, जिनमें यौन-आसक्ति प्रमुख है। यदि युवा ब्रह्मचर्य के मर्म को समझकर उसका पालन करें, तो वे अपनी ऊर्जा को पढ़ाई, करियर, और आत्मनिर्माण में लगा सकते हैं।
- **क्या यह हर किसी के लिए जरूरी है?** ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन (पूर्ण यौन संयम) सभी के लिए अनिवार्य नहीं, पर आत्म-नियंत्रण और संतुलन का अभ्यास हर किसी के लिए उपयोगी है- चाहे वह गृहस्थ हो, छात्र हो या साधक।

अतः ब्रह्मचर्य आज के समय में आत्म-संयम, मानसिक शांति, स्वास्थ्य, और आध्यात्मिक उन्नति के लिए एक अमूल्य साधन है। यह कोई दमन नहीं, बल्कि ऊर्जा को उच्चतर लक्ष्य की ओर मोड़ने की कला है।

*****

विद्यार्थी और ब्रह्मचर्य

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य का अत्यंत महत्त्व है। सनातन धर्म के चार आश्रमों में ब्रह्मचर्याश्रम सबसे पहला और आधारभूत आश्रम माना जाता है, जिसमें विद्यार्थी जीवन समाहित है। जैसे किसी बड़ी इमारत की मजबूत नींव उसके संपूर्ण अस्तित्व का आधार होती है, उसी प्रकार विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन जीवन में सफल भविष्य की कुंजी है। यदि इस समय ब्रह्मचर्य का अनुशासन नहीं निभाया गया, तो सारा जीवन अस्थिर और विफल हो सकता है।

यही अवस्था जीवन के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण चरण है, जिसमें व्यक्ति का भाग्य बनता है। इस समय विद्यार्थी को अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण, परोपकार, ब्रह्मचर्य, सदाचार, ज्ञान-विद्या और विभिन्न कलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसलिए इस अवधि को गहन समझ और जिम्मेदारी के साथ निभाना आवश्यक है। यही विद्यार्थी जीवन की सच्ची महत्ता है।

चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायतं च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव, रक्षणीयं प्रयत्नतः।

अर्थात् मनुष्य का वीर्य उसके चित्त (मन) के नियंत्रण में होता है, और इसी वीर्य के द्वारा जीवन स्थिर रहता है। इसलिए मन और वीर्य दोनों की सावधानीपूर्वक रक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। विद्यार्थी अवस्था में बच्चों को विशेष देखभाल की जरूरत होती है, क्योंकि इस समय जो संस्कार और आदतें बनती हैं, वे जीवनभर स्थायी रह जाती हैं।

प्राचीन काल में बच्चों को गुरुकुल भेजा जाता था, जहाँ वे केवल सामान्य विषय ही नहीं, बल्कि अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, शारीरिक शिक्षा, योग और आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त करते थे। ऐसी शिक्षा से उनका चरित्र संपूर्ण रूप से निर्मित होता था। प्रत्येक विद्यार्थी पवित्र भावनाओं से ओतप्रोत होता था और धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ योग, प्राणायाम, आसन तथा सदाचार की

जानकारी रखता था। उस समय के विद्यार्थियों में विनय, आत्मसंयम, आज्ञापालन, सेवा भावना, आत्म-समर्पण, सुशील व्यवहार, नम्रता, करुणा और मुमुक्षुता जैसे गुण पूर्ण रूप से विकसित होते थे।

वर्तमान समय के विद्यार्थियों में आधुनिक शिक्षा के कारण बहुत प्रकार की दूषित प्रवृत्तियाँ आ गई हैं। वे आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षा नहीं मिलने के कारण में अपने जीवन को किसी योग्य नहीं बना पाते। बाल्यावस्था से ही उनमें कुसंस्कारों के प्रभाव पड़ जाते हैं। अज्ञानतावश वे उसी कुसंस्कारों से बुरे व्यसनों के अभ्यासी बन जाते हैं। विद्यार्थी जीवन में ही शिक्षा के साथ उन्हें अनेक दुर्गुण प्राप्त हो जाते हैं, बचपन में ही उनके पतन की नींव पड़ जाती है और वे बड़े होकर गृहस्थी के लायक ही नहीं रह पाते हैं।

यह बात पूर्ण रूप से देखी जा सकती है कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त करके जो शिक्षित हुए हैं उनकी अपेक्षा अशिक्षित लोग संयमी, सदाचारी, ब्रह्मचारी, स्वस्थ तथा चतुर और विवेकी होते हैं। क्योंकि आज की शिक्षा प्रणाली इस प्रकार की है कि बच्चों में इन सब सद्‌गुणों का विकास ही नहीं कर सकती।

प्राचीन काल में गुरुकुल एवं विद्यालयों में शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को न केवल ज्ञान प्रदान करना था, बल्कि उन्हें नैतिक मूल्यों, अनुशासन और जीवन के लिए तैयार करना भी था। इसके विपरीत आज के स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को आत्म-संयम, ब्रह्मचर्य के विषय में कुछ जानकारी ही नहीं है। विलासी जीवन और सभी प्रकार की अनुकूलता का बचपन से ही आरंभ हो जाता है। इसलिए अभिमान, धृष्टता और आज्ञा-भंग आदि दुर्गुण कूट-कूट कर भरे रहते हैं। सुंदर आकर्षित वस्त्र, अभक्ष्य भोजन, कुसंगति, गंदी फिल्में देखना, तथा पाश्चात्य रहन-सहन के कारण वे दुर्बल हो गए हैं।

जिनके ऊपर देश का भविष्य निर्भर है वही बच्चे ऐसे हो गए हैं कि स्वयं ठीक से खड़े रहने में भी असमर्थ हैं, और इन सब का कारण है ब्रह्मचर्यहीनता। अतः आवश्यकता है बचपन से ही विद्यार्थियों को भौतिक विद्या के साथ अध्यात्म विद्या अर्थात् ब्रह्मचर्य, आत्मसंयम, सदाचार, योग आदि की शिक्षा देने की, जिससे वे जागृत होकर अपनी उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ें।

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य धारण करने से स्मरण शक्ति बहुत तीव्र होती है। कोई भी कार्य करने में ध्यान टिकता है। पढ़ाई करने में एकाग्रता बढ़ती है और मानसिक बल बढ़ने से वह बहुत अच्छे विचारों को धारण करके पढ़ाई में अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकता है। वीर्य शक्ति एक ऊर्जा है, जिसके रक्षण से चेहरे का तेज बढ़ता है और व्यक्ति प्रभावशाली बनता है।

ब्रह्मचर्य से यह ऊर्जा मस्तिष्क की ओर बढ़ती है, जिससे बुद्धि, ध्यान और आभा बढ़ती है। जब बुद्धि तीव्र रहती है तो लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है, और लक्ष्य (पढ़ाई, ज्ञान, व्यवसाय, मोक्ष) के प्रति धैर्य बड़ता है। ब्रह्मचर्य से मन की चंचलता घटती है, और जीवन में गंभीरता और शांति आती है। जब बच्चा यौन उत्तेजना से दूर रहता है, तब उसकी डोपामीन प्रणाली स्थिर रहती है और परिणामस्वरूप मानसिक थकान या चिड़चिड़ापन नहीं होता। शरीर में ऊर्जा बनी रहती है जिससे शारीरिक रोगों से रक्षा होती है। डोपामीन प्रणाली मस्तिष्क में न्यूरानों का नेटवर्क है जों संकेतो के प्रसारण के लिए डोपामीन नामक न्यूरोट्रांसमिटर का उपयोग करते हैं। (The dopamine system is a network of neurons in the brain that utilize dopamine, a neurotransmitter, to transmit signals.)

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा प्रदान करे, जिससे वे विद्यार्थी जीवन में ही दृढ़ संकल्प के साथ ब्रह्मचर्य का पालन कर अपने उद्धार का मार्ग प्रशस्त करें। ब्रह्मचर्य ही पूर्ण उद्धार का साधन है; इसके अलावा कोई और मार्ग नहीं है। जो व्यक्ति अपने बिंदु की रक्षा करता है, वह सप्तसिंधु को भी अपनी मुट्ठी में समेट सकता है। पूरे संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसे ब्रह्मचारी प्राप्त न कर सके।

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य धारण करने के प्रमुख लाभः-

- **स्मरण शक्ति और एकाग्रता बढ़ाता है—** ब्रह्मचर्य से मानसिक ऊर्जा सुरक्षित रहती है, जिससे पढ़ाई में ध्यान लगता है और स्मरण शक्ति तीव्र होती है।
- **शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है—** वीर्य की रक्षा

Radha Kaa

से शरीर में ओज, तेज और बल बना रहता है, जिससे थकान नहीं होती और उत्साह बना रहता है।

- **लक्ष्य के प्रति स्थिरता आती है—** जब मन वासना से मुक्त होता है, तो पढ़ाई और जीवन के लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित करना आसान होता है।
- **चरित्र निर्माण होता है—** संयमी विद्यार्थी समाज में सम्मान प्राप्त करता है और जीवनभर श्रेष्ठ नैतिकता को अपनाता है।
- **आध्यात्मिक विकास में सहायक—** ब्रह्मचर्य आत्मबल और आत्मचिंतन की नींव है, जो व्यक्ति को भीतर से सशक्त बनाता है।

लाभ का क्षेत्र	प्रभाव
पढ़ाई	एकाग्रता, याददाश्त और समझने की शक्ति में वृद्धि
स्वास्थ्य	ऊर्जा, तेज और रोग-प्रतिरोधक क्षमता में सुधार
मनोबल	आत्मविश्वास, संयम और साहस की वृद्धि
आत्मिक प्रगति	ध्यान, शांति और भीतर से संतोष की अनुभूति
सामाजिक जीवन	मर्यादित व्यवहार, सम्मान और प्रेरणास्रोत बनना

*****

स्त्री और ब्रह्मचर्य

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।

ऋग्वेद (8.33.19)

"स्त्री वास्तव में ब्रह्मा (सृजन की शक्ति) बन गई है।" यहाँ "ब्रह्मा" का अर्थ केवल सृष्टिकर्ता देवता से नहीं है, बल्कि स्त्री की सृजनशीलता, ज्ञान, और तप को "ब्रह्म" के समकक्ष बताया गया है। वह न केवल संतति की जन्मदात्री है, बल्कि समाज और संस्कृति की संरक्षिका भी है।

शास्त्रों में स्त्रियों के लिए भी ब्रह्मचर्य पालन का प्रावधान रहा है, वे भी ब्रह्मचर्य का समान अधिकार रखती हैं। सृष्टि की रक्षा हेतु शादी से पहले उनके लिए भी ब्रह्मचर्य धारण करना अति अनिवार्य है। यहां सृष्टि की रक्षा से तात्पर्य उसकी प्रजनन शक्ति से है, एक स्त्री उत्तम संतान तभी पैदा कर सकती है जब वह स्वयं शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होगी।

प्राचीन काल में स्त्रियां शादी से पहले ब्रह्मचर्य का पालन किया करती थीं। ब्रह्मचर्य की शक्ति से उन्होंने अद्भुत कार्य किए — वे धैर्य, गंभीरता, वीरता में पुरुषों से भी श्रेष्ठ रहीं, उनकी विद्वता और बुद्धिमत्ता की गाथाएं अनेक ग्रंथों में मिलती हैं। इतिहास और पौराणिक कथाओं में कई महान ब्रह्मचारिणियों का चरित्र देखने को मिलता हैं।

ब्रह्मचर्य केवल पुरुषों का व्रत नहीं है, बल्कि स्त्रियां भी इसका पालन कर सकती हैं। सर्वविरति (पूरी तरह से ज्ञात) ब्रह्मचर्य की आराधना हेतु महिलाओं को भी वही नियम अपनाने चाहिए जो पुरुषों के लिए निर्धारित हैं। ब्रह्मचारी पुरुषों के लिए स्त्रियों का संग और प्रशंसा वर्जित है और उसी प्रकार ब्रह्मचारिणियों के लिए भी पुरुषों का संग वर्जित है।

कई महिला साधकों के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या वीर्य की उत्पत्ति और संरक्षण का सिद्धांत केवल पुरुषों के लिए ही लागू होता है? क्या यह स्त्रियों पर लागू नहीं होता? क्या स्त्री साधक या ब्रह्मचारिणी के लिए भी वीर्य

संरक्षण उतना ही महत्वपूर्ण है? और क्या वीर्य धारण करने से स्त्री साधक भी आध्यात्मिक उन्नति की उच्चतम अवस्था प्राप्त कर सकती है? इस तरह के अनेक प्रश्न उठते रहते हैं।

स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य-व्रत का अवश्य पालन करना चाहिए। वे मीराबाई की तरह - ब्रह्मचारिणी बनकर अपने आपको प्रभु की भक्ति और सेवा में समर्पित कर सकती हैं, या फिर गार्गी और सुलभा के समान ब्रह्म-विचार का मार्ग अपना सकती हैं। इस निष्ठा से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली स्त्रियों को '**ब्रह्मविचारिणी**' कहा जाता है। प्राचीन काल में अनेक स्त्रियों ने अद्भुत कार्य किए और अपने सतीत्व की शक्ति संसार में प्रदर्शित की।

ब्राह्मण कौशिक की माण्डव्य ऋषि के श्राप के कारण अगले दिन सुबह मृत्यु होनी थी। उसका जीवन बचाने के लिए उसकी पत्नी नलयिनी ने अपने सतीत्वबल (पतिव्रता शक्ति) के प्रभाव से सूर्य को उदय न होने दिया, जिससे सम्पूर्ण सृष्टि अंधकार में डूब गई। अनसूया ने त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—को शिशु रूप में बदल दिया था, जब वे उनसे निर्वाण-भिक्षा मांगने आए थे। सावित्री अपने सतीत्वबल से यमराज के पाश से अपने पति सत्यवान के प्राण वापस ले आई थी। सतीत्व या ब्रह्मचर्य की यही महान महत्ता है।

"ब्रह्मचर्येयण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।"

(अथर्ववेद 11.5.15)

वेद में उपदेश है कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाली कन्या जवान और श्रेष्ठ पति को प्राप्त करती है। पुरुषों की भांति स्त्रियों के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक और अनिवार्य है। जब तक स्त्री और पुरुष दोनों का रज और वीर्य शुद्ध और दोषरहित नहीं होगा, तब तक श्रेष्ठ, बलवान, दीर्घायु और श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती।

विवाह होने तक प्रत्येक कन्या को ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करना चाहिए किंतु यदि वे जीवन में आगे चल कर गृहस्थ आश्रम में न जाकर संन्यास मार्ग पर चलना चाहती हैं तो वे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन भी कर सकती हैं। हालांकि

काम की वासनाओं पर नियंत्रण रखना अत्यंत कठिन होता है, यह किसी तेज तलवार पर चलने जैसा होता है, लेकिन यह असंभव नहीं है। भारत में अनेक देवियां हुई हैं। जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। प्राचीन काल में जब कन्याएं ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं, तब उनकी संतान तंदुरुस्त और स्वस्थ होती थी।

गृहस्थ जीवन एक रथ के समान है, जिसमें स्त्री और पुरुष उसके दो बराबर पहिये हैं। जैसे एक पहिये वाली गाड़ी नहीं चल सकती और एक पंख वाला पक्षी उड़ नहीं सकता, उसी प्रकार अकेले पुरुष या स्त्री से गृहस्थ जीवन सफल नहीं हो सकता। इसलिए गृहस्थ धर्म का सही पालन और श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति के लिए स्त्री को भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना अति आवश्यक हो जाता है।

आज की नारी जागरूक, सशक्त और आत्मनिर्भर है, वह देश के विकास में भी सशक्त भागीदार है। जब एक महिला आगे बढ़ती है तो उसका पूरा परिवार, समाज और राष्ट्र आगे बढ़ता है। वह माँ के रूप में संस्कार देती है, नेता के रूप में मार्ग दिखाती है, शिक्षक के रूप में ज्ञान फैलाती है, और समाज सेविका के रूप में समाज को आगे ले जाती है। यदि स्त्री ब्रह्मचर्य युक्त जीवन अपनाएगी तो उसे शारीरिक ऊर्जा, मानसिक एकाग्रता, आत्म-संयम और आध्यात्मिक शांति प्राप्त होगी। ऐसा जीवन न केवल उसके स्वस्थ्य को सशक्त बनाता है बल्कि वह समाज में सम्माननीय होती है और वह दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी बन सकती है। ब्रह्मचर्य से उसकी आंतरिक शक्ति जागृत होती है, जिससे वह आत्मनिर्भर, निडर और संतुलित जीवन जी सकती है।

प्रकृति ने स्त्री को संसार में पवित्रता, स्नेह, संवेदना, समता, ममता, करुणा, सहकार और सदाशयता जैसे दिव्य गुणों से युक्त होने के लिए बनाया है, न कि व्यभिचार करने के लिए। संयमित दंपत्ति की संतानें बलशाली, बुद्धिमान, संस्कारी और स्वस्थ होती हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्य की शक्ति बढ़ती है, आयु में वृद्धि होती है, स्मरण शक्ति, प्राणबल और शरीर में ओज बढ़ता है और किसी भी कार्य को करने में विशेष उत्साह एवं उमंग बनी रहती है।

स्त्री स्वास्थ्य —

स्त्रियों को युवावस्था में अनेक शारीरिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे- गर्भाशय संबंधी रोग, मासिक धर्म की अनियमितताएं, अत्यधिक रक्तस्राव, प्रदर, श्वेत प्रदर, तथा गर्भाशय में सूजन आदि। इन समस्याओं का एक बड़ा कारण अनियमित और असंयमित यौन जीवन भी हो सकता है। यौन स्वास्थ्य का ध्यान रखना केवल बीमारी से बचने के लिए नहीं, बल्कि आत्म-स्वास्थ्य, आत्म-संरक्षण और आत्म-सम्मान के लिए भी आवश्यक है। स्त्रियों को चाहिए कि वे संयम, संतुलित आहार, और मर्यादित जीवनशैली का पालन करें और विलासिता से दूर रहें।

प्राचीन शास्त्रों और ऋषियों के अनुसार, स्त्री की गरिमा उसके संयम और सदाचरण में निहित है। मनुस्मृति में कहा गया है कि स्त्री को जीवन के प्रत्येक चरण में किसी न किसी संरक्षण में रहना चाहिए—जैसे बाल्यावस्था में पिता, यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। यहाँ संरक्षण का अभिप्राय केवल नियंत्रण नहीं बल्कि उसकी सुरक्षा से है। आज की स्त्रियों को चाहिए कि वे सती-साध्वी स्त्रियों के जीवन से प्रेरणा लें और धर्म, संयम, सेवा, श्रद्धा और आत्मबल जैसे सद्गुणों को जीवन में धारण करें। ऐसे आचरण से न केवल उनका आत्मकल्याण होगा, बल्कि संतान और समाज के लिए भी वे प्रकाशस्तंभ बन सकती हैं। गीता (9.32) में कहा गया है कि जो भी स्त्री या पुरुष सच्चे भाव से भगवद् भक्ति और धर्म का पालन करते हैं, यदि मेरी शरण में आते हैं, वे परम मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मचारिणी स्त्री के विशेष गुण —

- **मौन का अद्भुत सौंदर्य** - जो स्त्री मौन की साधना करती है, उसकी आत्मा में शांति का स्नेह होता है। वह शोर-शराबे से परे, सुकून के वातावरण में हर्षित रहती है।
- **सेवा में छिपा असली रूप** - उसका सौंदर्य श्रृंगार या वस्त्रों में नही, बल्कि उसकी निस्वार्थ सेवा में प्रकट होता है, बाहरी दिखावे की बजाय उसमें आत्मसमर्पण की भावना होती है।

- **करुणा की गहराई आंखों में** – उसकी आंखें मानो करुणा की एक गहरी झील हों, जहाँ हर किसी के लिए सहानुभूति और प्रेम छलकता है।
- **अडिग आत्मबल का प्रकाश** – आवश्यकता के समय वह पर्वत-सी अचल हो जाती है, उसका आत्मबल उसकी पहचान और सबसे बड़ी ताकत होती है।
- **वाणी में शांति और प्रभाव** – उसकी वाणी केवल शब्द नहीं, बल्कि चेतना की भाषा होती है, जो सुनने वाले की आत्मा को झंकृत कर देती है।
- **संयम, उसका सर्वोत्तम श्रृंगार** – अपने विचारों पर नियंत्रण रखकर वह त्याग में सच्चा सौंदर्य प्राप्त करती है, जो उसके व्यक्तित्व की असली शोभा बनते है।
- **श्रद्धा से पूर्ण जीवन** – वह तर्क नहीं, बल्कि आस्था से जीवन जीती है; उसकी श्रद्धा अंधविश्वास नहीं, बल्कि गहन आंतरिक समझ बनता है।
- **त्याग की सहज मधुरता** – उसके लिए त्याग कोई बोझ नहीं, बल्कि प्रेम और सेवा की भाषा है, जो उसकी आत्मा की अभिव्यक्ति होता है।
- **करुणा की मूर्ति** – उसकी संपूर्णता करुणा से ओतप्रोत होती है, जो सबके दुःखों को समझती और सहन करती है।
- **गंभीरता और शांति** – उसकी मौन उपस्थिति में एक विशेष गंभीरता और शांति विद्यमान होती है, जो सभी को आकर्षित करती है।
- **जहां वह जाती है, वहां की ऊर्जा बदल जाती है** – यह रहस्यमय प्रभाव है, जिसे देख नहीं सकते, पर अनुभव अवश्य किया जा सकता है। उसकी मौजूदगी से वातावरण ही प्रफुल्लित और सकारात्मक हो जाता है।

ऐसी तेजस्विनी स्त्री ब्रह्मचर्य की शक्ति से परिपूर्ण होती है, जो केवल बाहरी नहीं, बल्कि अंतरात्मा से सुशोभित और संपूर्ण होती है।

तेजस्विनी स्त्री—

तेजस्विनी स्त्री वह होती है, जो केवल अपने रूप या वाणी से नहीं, बल्कि अपने आंतरिक संयम और आध्यात्मिक ऊर्जा से चमकती है। उसका तेज ब्रह्मचर्य के पालन से उत्पन्न होता है — एक ऐसा संयम जो न केवल शरीर की शक्ति को बचाता है, बल्कि मन, बुद्धि और आत्मा को भी ऊर्ध्वगामी बनाता है। ब्रह्मचर्य उसकी आत्मा की मौन साधना है, जिससे वह भीतर से दृढ़, स्थिर और अडिग बनती है। ऐसी स्त्री के भीतर त्याग, सेवा, करुणा और श्रद्धा सहज रूप से विकसित होते हैं। उसकी उपस्थिति में वातावरण शुद्ध हो जाता है, और उसकी चेतना दूसरों के जीवन को भी प्रकाशमान कर देती है। वह केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि ऊर्जा की स्रोत होती है — जो अपने संयम और आत्मबल से समाज को दिशा देती है। तेजस्विनी ब्रह्मचारिणी स्त्री, नारी शक्ति का वह स्वरूप है जो भीतर की लौ को जलाकर समस्त जीवन को प्रकाशित करती है।

******

पुरुष और ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य रक्षण प्रत्येक पुरुष के सम्पूर्ण विकास-शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक - स्तर की नींव रखता है। यह केवल यौन संयम नहीं, बल्कि विचारों, इंद्रियों और व्यवहार पर नियंत्रण का संपूर्ण जीवन-दर्शन है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष अपनी ऊर्जा को व्यर्थ में नष्ट होने से बचाकर उसे आध्यात्मिक, रचनात्मक और सृजनात्मक कार्यों में लगाता है। यह आत्म-नियंत्रण की चरम अवस्था है, जहाँ मन स्थिर होता है, बुद्धि निर्मल होती है और इच्छाशक्ति में दृढ़ता आती है।

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"।

(कुमारसंभवम्, महाकवि कालिदास)

इसका तात्पर्य है कि जब तक शरीर स्वस्थ, सबल और समर्थ नहीं होगा, तब तक कोई भी व्यक्ति न तो धर्म का पालन कर सकता है और न ही जीवन के उच्चतम लक्ष्य— जैसे आत्मोन्नति, सेवा या मोक्ष— की ओर बढ़ सकता है। इसलिए शरीर को स्वस्थ रखना केवल भौतिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक दायित्व भी है।

ब्रह्मचर्य से पुरुष के शरीर में तेज और मानसिक दृढ़ता विकसित होती है। वह विकारों से ऊपर उठकर अपनी ऊर्जा को लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केंद्रित कर सकता है। यही कारण है कि हमारे इतिहास में जितने भी महान पुरुष हुए - जैसे स्वामी विवेकानंद, आदि गुरू शंकराचार्य, और महर्षि पतंजलि आदि उन सभी ने ब्रह्मचर्य को एक महान साधना के रूप में अपनाया। उन्होंने माना कि वीर्य ही जीवन-शक्ति का स्रोत है और उसका संरक्षण आत्म-शक्ति का रूपांतरण है।

"धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यं मूलमुत्तमम्"

(चरकसंहिता)

अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— इन चार पुरुषार्थों की जड़ है उत्तम आरोग्य अर्थात् अच्छा स्वास्थ्य। जब शरीर स्वस्थ होता है, तभी सभी कार्य सफल होते हैं और जीवन सार्थक बनता है।

आज के भौतिक युग में, जहाँ आकर्षण और विचलन के असंख्य साधन मौजूद हैं, वहाँ ब्रह्मचर्य पुरुष के लिए एक ढाल है- जो उसे स्थिरता, चरित्र और आत्म-सम्मान प्रदान करता है। यह जीवन की दिशा को स्पष्ट करता है और व्यक्ति को आत्म-केन्द्रित नहीं, बल्कि सेवा-भाव से प्रेरित बनाता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष केवल बाहरी रूप से संयमी नहीं होता, बल्कि उसकी आंतरिक शक्ति उसे समाज का मार्गदर्शक, एकाग्र साधक और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व बनाती है।

ब्रह्मचर्य कोई दमन नहीं, बल्कि ऊर्जा का शुद्धिकरण और दिशा-निर्देशन है। जब पुरुष अपने जीवन में इसे अपनाता है, तो वह केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के लिए एक आदर्श बन जाता है। वह जानता है कि "सच्चा पुरुष वही है जो स्वयं पर विजय प्राप्त कर ले।" और यही ब्रह्मचर्य का सार है - आत्मविजय की साधना।

ब्रह्मचर्य का वैज्ञानिक दृष्टिकोण—

यदि हम ब्रह्मचर्य को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें, तो इसका अभिप्राय है— जीवन ऊर्जा की रक्षा करना, जिसे वीर्य या जीवन बीज कहा जाता है। इस सिद्धांत को सही ढंग से समझने के लिए हमें शरीर विज्ञान और जैव-रसायन की दृष्टि से मानव शरीर की कार्यप्रणाली को जानना आवश्यक है।

मानव शरीर में अनेक ग्रंथियाँ (glands) होती हैं, जो न केवल हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं, बल्कि हमारे स्वभाव और संपूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण में भी अहम भूमिका निभाती हैं। उदाहरण के लिए, हमारे मुख में स्थित लार ग्रंथियाँ (salivary glands) यदि लार का स्राव न करें तो मुख सूख जाएगा और भोजन का पाचन बाधित हो जाएगा। यही सिद्धांत शरीर की अन्य ग्रंथियों पर भी लागू होता है।

मानव शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियाँ पाई जाती हैं। पहली वे जिनके स्राव किसी विशेष नलिका (duct) के माध्यम से शरीर के भीतर या बाहर भेजे जाते हैं— जैसे पाचन ग्रंथियाँ। दूसरी वे ग्रंथियाँ होती हैं, जिनमें कोई नलिका नहीं होती; उनके स्राव सीधे रक्त या शरीर के अंदर अवशोषित हो जाते हैं। इन्हें अंत:स्रावी ग्रंथियाँ (endocrine glands) कहा जाता है। इन ग्रंथियों के स्राव शरीर की जैविक गतिविधियों, विकास, यौन ऊर्जा और मानसिक स्थिरता पर गहरा प्रभाव डालते हैं। उदाहरणस्वरूप, मस्तिष्क की पीनियल ग्रंथि, गले की थायरॉइड ग्रंथि और लिवर के समीप स्थित एडरीनल ग्रंथियाँ — ये सभी प्रणालिका रहित ग्रंथियाँ हैं।

जहाँ तक ब्रह्मचर्य का प्रश्न है, उससे संबंधित जो जीवन-सत्व या वीर्य का निर्माण होता है, वह मुख्यत: उन ग्रंथियों द्वारा किया जाता है जो प्रणालिका युक्त होती हैं। इसका कारण यह है कि उनके स्राव को शरीर से बाहर निकालने के लिए विशेष मार्ग मौजूद होते हैं। यही वजह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करते समय इन ग्रंथियों की सक्रियता और नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

कुछ ग्रंथियाँ ऐसी होती हैं, जिनका स्राव सीधे शरीर के बाहर निकलता है। जैसे— पसीने की ग्रंथियाँ, आँसू उत्पन्न करने वाली ग्रंथियाँ, और मूत्र से संबंधित ग्रंथियाँ। ये सभी बाह्यस्रावी ग्रंथियाँ (Exocrine glands) कहलाती हैं। इनका कार्य शरीर से अनावश्यक या विषैले पदार्थों को बाहर निकालना होता है। यदि इन ग्रंथियों के स्राव को बाहर निकलने से रोका जाए या उनका प्रवाह अवरुद्ध हो जाए, तो यह शरीर के लिए गंभीर हानि का कारण बन सकता है।

इसके विपरीत, कुछ ग्रंथियाँ ऐसी होती हैं जिनका स्राव शरीर के अंदर ही उपयोग होता है, चाहे वे नलिकायुक्त हों या नहीं। उदाहरणस्वरूप, थायरॉइड ग्रंथि द्वारा उत्पन्न हार्मोन सीधे रक्त में अवशोषित होकर पूरे शरीर में प्रभाव डालता है। इसी तरह, एडरीनल ग्रंथि का स्राव एडरीनेलिन (Adrenaline) शरीर को तनावपूर्ण या आपात स्थितियों में तेज़ प्रतिक्रिया देने योग्य बनाता है। यह हार्मोन हृदय को सक्रिय करता है, रक्त में ग्लूकोज़ की मात्रा बढ़ाता है और शरीर को आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है।

ब्रह्मचर्य के लिए यह समझना आवश्यक है कि जीवन-ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने वाली ग्रंथियों का स्राव भी प्रकृति की योजना के अनुसार शरीर के भीतर ही रहना चाहिए। यह स्राव केवल संतुलित और नियंत्रित मनःस्थिति में सुरक्षित रहता है। लेकिन जब मनुष्य वासना, अश्लील कल्पनाओं, उत्तेजक दृश्यों, भद्दे गीतों या अपवित्र साहित्य में लिप्त होता है, तो यह संतुलन बिगड़ जाता है। परिणामस्वरूप, प्रजनन ग्रंथियों द्वारा निर्मित जीवन-सत्व (वीर्य) अनावश्यक रूप से बाहर निकलने लगता है, जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दुर्बलता का कारण बनता है।

विशेषज्ञों के अनुसार, जब मनुष्य वासना और भोग-विलास में लिप्त होता है, तो उसका सीधा प्रभाव उसके मस्तिष्क के निचले हिस्से पर पड़ता है, जो उसकी चेतना, नियंत्रण शक्ति और मानसिक संतुलन को प्रभावित करता है।

वीर्य के बाह्य निष्कासन के तीन प्रमुख कारण —

1. **इच्छापूर्वक निष्कासन (सचेत/जानबूझकर):-**
    - जब कोई पुरुष अशुद्ध वासनात्मक क्रियाओं में लिप्त होता है, जैसे हस्तमैथुन, अश्लील कल्पनाएँ या कुचेष्टा, तब वह जानबूझकर वीर्य का नाश करता है।
    - शास्त्रों के अनुसार, केवल वैध विवाह संबंध में, संयमित समय पर, संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से किया गया सहवास ही पापरहित और स्वीकार्य है।
    - अन्यथा, वीर्य का अनावश्यक नाश आत्मघात के समान और पाप के रूप में देखा गया है।
2. **दबाव के कारण स्वतः निष्कासन (शारीरिक दबाव से):-**
    - कभी-कभी शरीर की आंतरिक रचना के कारण वीर्यकोष (semen reservoir) पर मूत्राशय और मलाशय दोनों ओर से दबाव पड़ता है।

- इस शारीरिक दबाव के कारण शुक्राशय (seminal vesicles) पर इतना बल आता है कि वीर्य अपने आप बाहर निकल जाता है, बिना किसी कामुक विचार या क्रिया के।

3. **स्वप्नदोष (निष्क्रिय या अनजाना निष्कासन):-**

- जब शुक्राशय अधिक मात्रा में भरा होता है और व्यक्ति रात्रि में कामुक या अश्लील स्वप्न देखता है, तो नींद में अनजाने ही वीर्यस्खलन हो जाता है।
- कई बार शुक्राशय पूरी तरह भरा न होने पर भी, यदि दिनभर अश्लील विचार, उत्तेजक चित्र, फिल्में या साहित्य देखा गया हो, तो वही मानसिक उत्तेजना रात्रि में स्वप्नदोष का कारण बनती है।

इस प्रकार, स्वप्नदोष के दो मुख्य कारण माने जाते हैं—

- शुक्राशय का अधिक मात्रा में भर जाना, और
- अशुद्ध विचारों तथा अश्लील सामग्री के प्रभाव से उत्पन्न मानसिक उत्तेजना।

इसलिए, यदि व्यक्ति संयमित दिनचर्या, शुद्ध और सात्विक विचारों, तथा ब्रह्मचर्य के पालन को अपने जीवन का हिस्सा बना ले, तो इन सभी समस्याओं से सहज रूप से बचा जा सकता है। यही आत्म-संरक्षण और मानसिक शुद्धता का सर्वोत्तम मार्ग है।

आजकल सामान्य व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन क्यों नहीं कर पाता ?

1. **डिजिटल युग में कामुकता की आसान पहुँच:-**

   आज का युग सूचना और संचार का है, जहाँ इंटरनेट, सोशल मीडिया, वेब सीरीज़ और अश्लील सामग्री तक पहुँच बेहद आसान हो गई है। मोबाइल फोन के माध्यम से युवा और वयस्क पुरुष हर समय उत्तेजक दृश्य, चित्र, वीडियो और भद्दे संवादों के संपर्क में रहते हैं। यह बार-बार

मन और मस्तिष्क को भटकाता है और धीरे-धीरे व्यक्ति की इच्छाशक्ति को कमजोर बना देता है।

2. **नैतिक शिक्षा और आध्यात्मिक मार्गदर्शन की कमीः-**

पहले घरों में, विद्यालयों में और समाज में आत्म-संयम, धर्म, सदाचार और ब्रह्मचर्य जैसे मूल्यों की शिक्षा दी जाती थी। आज का शिक्षा तंत्र केवल करियर, प्रतिस्पर्धा और सुख-सुविधाओं पर केंद्रित हो गया है। आत्म-नियंत्रण, संयम, और चारित्रिक बल को न तो सिखाया जा रहा है और न ही सराहा जा रहा है। इससे युवा ब्रह्मचर्य जैसे जीवनदायिनी सिद्धांत को केवल 'पुरानी सोच' मानकर नकार देते हैं।

3. **असंयमित जीवनशैली और अनियमित दिनचर्याः-**

गलत खानपान (जैसे तैलीय, मसालेदार, अधिक मात्रा में मांसाहार-मदिरा, जंक फूड), नींद की कमी, देर रात तक जागना, शारीरिक श्रम की कमी - ये सभी शारीरिक रूप से शरीर को उत्तेजक बनाते हैं। जब शरीर में अपच, गरमी और अशांति बनी रहती है, तो वासना अपने आप जाग्रत होती है, जिससे ब्रह्मचर्य का पालन कठिन हो जाता है।

4. **मानसिक तनाव और भावनात्मक अस्थिरताः-**

आज का पुरुष भागदौड़, आर्थिक दबाव, अकेलापन, असफल प्रेम संबंधों और सामाजिक तुलना की दौड़ से मानसिक रूप से थका हुआ है। भावनात्मक संतुलन के अभाव में वह क्षणिक सुख, उत्तेजना और पलायन के साधनों की ओर आकर्षित होता है - जिसमें वासना एक प्रमुख आकर्षण बन जाती है।

5. **सही आदर्शों और प्रेरणा की अनुपस्थितिः-**

जब समाज में ऐसे चरित्रवान, संयमी और ब्रह्मचारी पुरुषों की जीवन गाथाएँ सामने नहीं आतीं या उनका सम्मान नहीं होता, तो युवा प्रेरणा ही नहीं पा पाते हैं। आज के समय में युवा अपना 'रोल मॉडल' भी ऐसे

व्यक्तियों को बनाते है जो भोग विलासिता से जुड़े होते है और जो उनको ब्रह्मचर्य के विपरीत दिशा में प्रेरित करते है।

6. **शरीर में हार्मोनल परिवर्तन और यौवन का प्रभावः-**

किशोरावस्था से युवावस्था के दौरान पुरुषों के शरीर में हार्मोन (विशेष रूप से टेस्टोस्टेरोन) अत्यधिक सक्रिय हो जाते हैं। यदि इस ऊर्जा को संयम, खेल, योग, ध्यान या रचनात्मक कार्यों में न लगाया जाए, तो यह कामुकता में बदल जाती है। अधिकांश युवा इस ऊर्जा को दिशा देने के बजाय उसे व्यर्थ गँवा देते हैं।

7. **आत्मबल और इच्छाशक्ति की कमीः-**

ब्रह्मचर्य केवल बाहरी व्यवहार नहीं, बल्कि आंतरिक शक्ति का विषय है। इसके लिए ज़रूरी है मानसिक दृढ़ता, संकल्पशक्ति और दीर्घकालीन लक्ष्य की स्पष्टता। आज की त्वरित संतुष्टि (instant gratification) की मानसिकता में लोग दीर्घकालीन संयम को कठिन और निरर्थक मान लेते हैं।

सामान्य पुरुष के लिए ब्रह्मचर्य धारण करने के प्रमुख लाभ —

1. **शारीरिक बल और ऊर्जा में वृद्धिः-** ब्रह्मचर्य के पालन से शरीर में संचित ऊर्जा व्यर्थ नहीं जाती। इससे थकावट कम होती है, कार्यक्षमता बढ़ती है और रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक शक्ति विकसित होती है।
2. **मानसिक स्पष्टता और एकाग्रताः-** जब इंद्रियों और विचारों पर नियंत्रण होता है, तब मन स्थिर और एकाग्र होता है। इससे पढ़ाई, काम और निर्णय लेने की क्षमता में सुधार आता है।
3. **ग्रहण और स्मरण शक्ति का विकासः-** ब्रह्मचर्य पालन से मस्तिष्क में ओज और तेज बढ़ता है, जिससे स्मरण शक्ति और ध्यान केंद्रित करने की क्षमता तीव्र होती है।

4. **आत्मविश्वास और आत्म-संयम में वृद्धिः**- संयम से जीवन में आत्म-नियंत्रण आता है, जो हर परिस्थिति में शांति और आत्मबल बनाए रखने में मदद करता है।

5. **चरित्र और व्यक्तित्व में निखारः**- ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष स्वभाव से शांत, स्थिर, अनुशासित और प्रभावशाली होता है। उसके भीतर एक प्राकृतिक तेज और गंभीरता झलकती है।

6. **कामवासना पर नियंत्रणः**- नियमित ब्रह्मचर्य से वासनात्मक विचारों पर अंकुश लगता है, जिससे मन और शरीर पवित्र और संतुलित बने रहते हैं।

7. **रचनात्मक और आध्यात्मिक विकासः**- जब यौन ऊर्जा भीतर ही संचित होती है, तो वह उच्चतर रूपों में— जैसे साहित्य, कला, ध्यान, साधना और सेवा— में परिवर्तित हो जाती है।

8. **जीवन के उद्देश्य को पहचानने में सहायताः**- ब्रह्मचर्य व्यक्ति को आत्म-मूल्यांकन और आत्म-विकास की दिशा में ले जाता है, जिससे वह अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को पहचान पाता है।

9. **आकर्षण और प्रभावशीलता में वृद्धिः**- संयमी पुरुष का चेहरा तेजस्वी, आंखें स्थिर और व्यक्तित्व प्रेरणादायक बनता है। वह दूसरों को बिना बोले भी प्रभावित करता है।

*****

गृहस्थ और ब्रह्मचर्य

गृहस्थाश्रम सर्वोत्तम क्यों? गृहस्थ आश्रम की मर्यादा सनातन परंपरा में अत्यंत उच्च स्थान रखती है। सनातन परंपरा के अनुसार मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है — ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम। इन चार आश्रमों को "चतुर्वर्ण आश्रम व्यवस्था" कहते हैं। गृहस्थ आश्रम वह जीवन-चरण है जिसमें व्यक्ति विवाह करता है, परिवार बसाता है और धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक कर्तव्यों का पालन करता है।

गृहस्थ जीवन किसे कहते हैं? गृहस्थ जीवन वह अवस्था है जब व्यक्ति विवाह करके परिवार के साथ जीवन यापन करता है, और साथ ही समाज और धर्म के प्रति उत्तरदायित्व भी निभाता है। गृहस्थ वह कहलाता है —जो गृह (घर) में निवास करता है, जीवन साथी के साथ धर्म, अर्थ और काम की मर्यादा में जीवन जीता है और अपनी आय से परिवार, अतिथि, ब्राह्मण, गुरु व अन्य आश्रमों का पालन करता है।

गृहस्थ आश्रम का महत्व क्या है? गृहस्थ आश्रम सनातन जीवन की परंपरा का संवाहक है और यही आश्रम सम्पूर्ण सृष्टि के संचालन का मूल आधार माना गया है।

जैसा शास्त्रों में कहा गया है —

"न गृहं गृहमित्याहु गृहिणी गृहमुच्यते" —अर्थात, ईंट-पत्थरों से बना स्थान तब तक 'गृह' नहीं कहलाता जब तक उसमें गृहिणी की गरिमा, स्नेह और उपस्थिति न हो। वास्तव में, गृहस्थ जीवन की आत्मा ही गृहिणी होती है, और उसी के कारण गृहस्थ आश्रम की पहचान पूर्ण होती है।

वेद और स्मृति के अनुसार चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इसका कारण यह है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास — ये तीनों आश्रम गृहस्थ आश्रम पर ही निर्भर हैं। गृहस्थ ही उन सबका भरण-पोषण करता

है, उनका पालन करता है और समाज में उनके धर्माचरण को संभव बनाता है। इसलिए गृहस्थ केवल एक सांसारिक जीवन नहीं, बल्कि वह स्तंभ है, जिसके ऊपर समाज की संपूर्ण धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक व्यवस्था टिकी हुई है।

गृहस्थ धर्म ही वह शक्ति है जो कर्तव्य, धर्म और सेवा का संगम है, जिससे विश्व की सौंदर्य, समृद्धि और संतुलन की धारा बहती है। इसीलिए गृहस्थ आश्रम न केवल व्यवहार में, बल्कि सिद्धांत की दृष्टि से भी सभी आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित है। यह समाज की आधारशिला है, समाज और संस्कृति का वास्तविक पोषक है, सृष्टि का संचालन करने में सहायक है। विवाह, संतानोत्पत्ति और जीवन मूल्यों की परंपरा गृहस्थ जीवन में ही चलती है इसलिए यह सृष्टि की निरंतरता और संतुलन को बनाए में अहम भूमिका निभाता है। वैवाहिक जीवन में भी पति पत्नी सहवास के बावजूद ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं।

जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है—

"सद्-गृहस्थ ही अपने कर्तव्यों के माध्यम से देवताओं, पितरों, ऋषियों, मनुष्यों और अन्य जीवों का पालन करता है। इसलिए गृहस्थ धर्म सनातन धर्म की रीढ़ है।" (मनुस्मृति 3.80)

महाभारत के अनुशासन पर्व में भी यह वर्णित है—

"अहिंसा, सत्यवचन, सभी प्राणियों के प्रति करुणा, मन और इन्द्रियों का संयम तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान करना—ये सब गृहस्थ आश्रम के श्रेष्ठ धर्म हैं।" (महाभारत अनुशासन पर्व 141.25)

पराई स्त्री से दूरी बनाना, परिवार की संपत्ति और स्त्री की रक्षा करना, बिना अनुमति किसी वस्तु को न लेना, तथा मांसाहार और मदिरा से परहेज करना — ये गृहस्थों के पाँच मुख्य धर्म हैं। ये सभी धर्म सुख की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। जो व्यक्ति धर्म को सर्वोच्च मानता है, उसे चाहिए कि वह इन पुण्यप्रद धर्मों का पालन दृढ़ता से करे। (महाभारत, अनुशासन पर्व 141.26-27)

गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य —

पारिवारिक जीवन में पति को अपनी पत्नी के प्रति कुछ विशेष रात्रियों में वर्जना करना आवश्यक है, जैसे रजोदर्शन की प्रारंभिक चार रात्रि, 11वीं और 13वीं रात्रि, साथ ही दोनों चतुर्दशी, दोनों अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रांति तथा सूर्य-चन्द्र ग्रहण के दौरान। यदि गृहस्थ इन आठ वर्जित रात्रियों को छोड़कर अपनी पत्नी के साथ समागम करता है, तो वह भी ब्रह्मचारी माना जाता है। (मनुस्मृति 3.50)

ऋतौ संगमः गृहस्थस्य पत्नीभिः रात्रिभ्यः सप्ततः।
इदं ब्रह्मचर्यं संज्ञेयं पञ्चदशेति विधीयते ॥

(याज्ञवल्क्य स्मृति 1.69)

— गृहस्थ पुरुष यदि ऋतु-सुसमय रात्रि में पत्नी के साथ उचित संगम करे, तो उसे पञ्चदश (१५) रूप से ब्रह्मचर्य माना गया है। अतः याज्ञवल्क्य स्मृति में संपूर्ण विधिसम्मत १५ रात्रि मिलन को ब्रह्मचर्य का विस्तार माना गया है।

यदि विधिना रजोराशौ सङ्गमः रात्रौ सम्पद्येत।
तत् ब्रह्मचर्यं प्रभावश्च गृहस्थे पुण्यं भवेत् ॥

(प्रश्नोपनिषद् 1.3)

-प्रश्नोपनिषद् के अनुसार ऋतुकाल (मसिक धर्म के बाद का समय) में पत्नी के साथ रात्रि में यथासमय मिलन करने को गृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य का रूप माना गया है। अतः यह स्पष्ट वर्णन है कि गृहस्थ जीवन में ऋतु संहित रात्रियों में संभोग ही ब्रह्मचर्यगुण का प्रमाण है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुसार, ऋतुकाल के दौरान कुछ विशिष्ट दिनों को गर्भधारण के लिए सबसे शुभ माना जाता है।

महाभारत शान्तिपर्व (221.11) में कहा गया है—

"जो पुरुष केवल ऋतुकाल (16 दिनों के भीतर) में ही पत्नी के साथ संबंध करता है, सदा सत्य बोलता है और निरंतर ज्ञान के मार्ग पर रहता है, वह द्विज सदा ब्रह्मचारी कहलाता है।"

गौतम धर्मसूत्र (1.3.9) के अनुसार, जो नियम ब्रह्मचारी के लिए निर्धारित हैं, वे गृहस्थों के लिए भी लागू होते हैं, बस पत्नी के साथ समागम को छोड़कर। साथ ही यह भी कहा गया है—

"दुखी होने पर भी दूसरे का मन मत दुखाओ, न ही दूसरों से द्वेष करो। ऐसी बुरी वाणी न बोलो जिससे किसी को पीड़ा हो।" इस प्रकार, गृहस्थ जीवन में भी संयम और ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन आवश्यक है।

सुत्तनिपात 2.14.29, "धर्म के अनुसार माता-पिता का पालन-पोषण करें और स्वयं को धार्मिक कार्यों में व्यस्त रखें। जो गृहस्थ इस व्रत का पालन निष्ठा से करता है, वह स्वयंप्रभ नामक देव लोक में जन्म पाता है।"

गृहस्थाश्रम त्याग का नहीं, बल्कि संयम, संतुलन और कर्तव्यपरायणता का जीवन है। एक सफल गृहस्थ वह है जो अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए समाज और धर्म के प्रति भी उत्तरदायित्व का निर्वहन करे।

वेदों में कहा गया है:

"गृहस्थो धर्ममाश्रित्य जीवन्ति ये गृहाश्रमी।"

अर्थात, जो गृहस्थ धर्म का आचरण करते हैं, वही समाज की सच्ची रीढ़ होते हैं। इसलिए गृहस्थ जीवन केवल भोग-विलास नहीं, बल्कि सेवा, त्याग, कर्तव्य और धर्म का प्रतीक होता है।

गृहस्थ वह होता है जो परिवार में रहते हुए व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करता है। उसका प्रथम कर्तव्य है— गुणवान, यौवनसम्पन्न कन्या से विवाह करना। विवाह के पश्चात ही ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है।

गृहस्थ को पितृऋण से मुक्त होने के लिए संतानोत्पत्ति करनी चाहिए और गुरु ऋण से मुक्ति हेतु स्वाध्याय तथा ज्ञान का प्रचार-प्रसार करना चाहिए।

गृहस्थ के कर्तव्य —

- **विवाह करनाः**- गृहस्थ का पहला कर्तव्य है कि वह गुणयुक्त, यौवन सम्पन्न कन्या से विवाह करे। विवाह संस्कार के उपरांत ही ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है।
- **ऋणों से मुक्तिः**- पितृऋण से मुक्त होने के लिए संतानोत्पत्ति आवश्यक है।

  गुरु ऋण से मुक्ति के लिए स्वाध्याय (स्वयं अध्ययन) और प्रवचन (ज्ञान का प्रचार) करना चाहिए।
- **पंचमहायज्ञों का पालनः**- गृहस्थ को प्रतिदिन निम्नलिखित पांच यज्ञों का पालन करना चाहिए

  ब्रह्मयज्ञ - वेदों का अध्ययन एवं ज्ञान का अभ्यास (स्वाध्याय)।

  पितृयज्ञ - पितरों का तर्पण और श्राद्ध करना।

  देवयज्ञ - देवताओं के लिए हवन एवं पूजा।

  भूतयज्ञ - पशु-पक्षियों और जीव-जंतुओं के लिए अन्न-जल अर्पण।

  नृयज्ञ (अतिथियज्ञ) - अतिथियों का सत्कार एवं सेवा।
- **धार्मिक ग्रंथों का उल्लेखः**- याज्ञवल्क्यस्मृति (1/102) और मनुस्मृति (3.69) में पंचमहायज्ञों को गृहस्थ जीवन का अनिवार्य अंग बताया गया है।
- **धर्म युक्त आजीविकाः**- गृहस्थ को अपनी आजीविका धर्म और नैतिकता के अनुसार, ईमानदारी पूर्वक कर्म करके अर्जित करनी चाहिए, ताकि वह गृहस्थ धर्म के समस्त कर्तव्यों का पालन सही ढंग से कर सके।
- **दान देनाः**- दान देना गृहस्थ का सर्वोच्च धर्म माना गया है। इससे समाज में सहयोग, समर्पण और करुणा की भावना बनी रहती है।

- **चार पुरुषार्थों की प्राप्तिः**- गृहस्थाश्रम वह माध्यम है जिससे व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति करता है। इन तीनों पुरुषार्थों के संतुलित पालन से मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है।

अतः गृहस्थ जीवन केवल भोग और परिवार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह धर्म, कर्तव्य और समाजसेवा का आदर्श रूप है। गृहस्थ के कंधों पर संपूर्ण समाज, संस्कृति और आश्रम व्यवस्था का भार होता है।

गृहस्थ के लिए त्याज्य बातें —

इस आश्रम में जहाँ अनेक कर्तव्य निर्धारित हैं, वहीं कुछ ऐसी बातें भी हैं जिन्हें गृहस्थ को त्यागना चाहिए। ये त्याज्य आचरण गृहस्थ जीवन की मर्यादा और पवित्रता को बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

- **दिन में सोना निषिद्ध हैः**- गृहस्थ व्यक्ति को दिन के समय शयन नहीं करना चाहिए। दिन में सोने से शरीर में आलस्य, जड़ता और मानसिक शिथिलता आती है, जो कर्मशीलता और उत्तरदायित्व से भरे गृहस्थ जीवन के लिए बाधक होती है।

  इसके अतिरिक्त, रात्रि के प्रथम प्रहर (शाम) और अंतिम प्रहर (प्रातःकाल) में भी अधिक निद्रा से बचना चाहिए, क्योंकि ये समय सत्संग, ध्यान, स्वाध्याय और पारिवारिक कर्तव्यों के लिए उत्तम माने जाते हैं।

- **निंदा और अहंकार से बचनाः**- गृहस्थ को दूसरों की निंदा, आलोचना या चुगली नहीं करनी चाहिए। ऐसा व्यवहार न केवल सामाजिक विघटन का कारण बनता है, बल्कि स्वयं के चरित्र को भी कलुषित करता है।

  इसी प्रकार, अहंकार — चाहे वह धन, ज्ञान, पद या बाह्य शक्ति का हो — गृहस्थ जीवन के संतुलन और शांति को नष्ट कर सकता है। नम्रता, सहनशीलता और विनम्रता ही गृहस्थ की शोभा होती है।

- **हिंसा से परहेजः**- गृहस्थ को यथासंभव हिंसा से बचना चाहिए। जीवों के प्रति करुणा, दया और सह-अस्तित्व की भावना का पालन करना गृहस्थ धर्म का मूल है। किसी प्राणी को अनावश्यक कष्ट देना, मारना या तिरस्कार करना त्याज्य है।
- **बिना अनुमति वस्तु ग्रहण न करेंः**- गृहस्थ को कभी भी किसी की वस्तु को बिना अनुमति लेना नहीं चाहिए, चाहे वह किसी परिजन की ही क्यों न हो। यह चोरी या छल की श्रेणी में आता है और धार्मिक दृष्टि से अनुचित तथा अधर्मपूर्ण माना गया है।
- **मद्यपान और मांसाहार का त्यागः**- गृहस्थ को मद्य (शराब) और मांसाहार से पूर्णतः दूर रहना चाहिए। ये दोनों ही इंद्रियों को असंयमित करते हैं, मन को चंचल बनाते हैं और नैतिक पतन का कारण बनते हैं। साथ ही, ये हिंसा और कुत्सित प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा देते हैं।
- **परस्त्री और परपुरुष से अनुचित संबंध निषिद्धः**- गृहस्थ जीवन की सबसे बड़ी मर्यादा है- पत्नी-पति के बीच की पवित्र निष्ठा। किसी पराई स्त्री या परपुरुष के साथ शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक संबंध बनाना गृहस्थ धर्म के विपरीत और घोर पाप माना गया है। यह न केवल परिवार के विघटन का कारण बनता है, बल्कि सामाजिक और आत्मिक पतन का भी द्वार खोलता है।

अतः गृहस्थ आश्रम को सफल और पवित्र बनाने के लिए इन त्याज्य बातों से स्वयं को दूर रखना अत्यावश्यक है। इनसे बचकर ही गृहस्थ व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — इन चारों पुरुषार्थों की दिशा में अग्रसर हो सकता है। त्याग, संयम, नैतिकता और मर्यादा ही गृहस्थ जीवन की वास्तविक आधारशिला है।

गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य के प्रमुख लाभः-

- **मानसिक और भावनात्मक स्थिरता** — ब्रह्मचर्य संयम से मन शांत रहता है, और घर-परिवार में तनाव कम होता है। पति-पत्नी का संबंध केवल भोग आधारित न होकर, सम्मान, सहयोग और विवेक पर टिकता है।
- **ऊर्जा और स्वास्थ्य की रक्षा —** बार-बार भोग में लिप्त रहने से शरीर की ऊर्जा क्षीण होती है। ब्रह्मचर्य से ओज, बल और उत्साह बना रहता है। नपुंसकता, कमजोरी, थकान, और चिड़चिड़ापन जैसी समस्याओं से बचाव होता है।
- **संतानोत्पत्ति में श्रेष्ठता** — संयमपूर्वक और शुभ मन से किया गया संबंध, उत्तम संतानों के जन्म का कारण बनता है। जब वीर्य परिपक्व और मन शांत हो, तभी संतान गुणवान होती है।
- **ध्यान, पूजा, साधना में रुचि** — इंद्रिय संयम से मन आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्त होता है। गृहस्थ होते हुए भी व्यक्ति साधक बन सकता है।
- **दाम्पत्य में संतुलन और शांति** — ब्रह्मचर्य से पति-पत्नी एक-दूसरे को आत्मिक स्तर पर समझते हैं, जिससे घर में प्रेम और शांति बनी रहती है।

लाभ का क्षेत्र	**ब्रह्मचर्य से प्रभाव**
मन और मस्तिष्क	एकाग्रता, संयम, विवेक में वृद्धि
दाम्पत्य जीवन	प्रेम में शुद्धता, मर्यादा, सम्मान की भावना
संतानोत्पत्ति	तेजस्वी, गुणवान संतान का जन्म
स्वास्थ्य	थकान, कमजोरी, तनाव से मुक्ति; ऊर्जा की रक्षा
आध्यात्मिकता	पूजा-पाठ, ध्यान और साधना में रुचि व स्थिरता

ब्रह्मचर्य केवल संन्यासियों के लिए नहीं, बल्कि गृहस्थों के लिए भी आवश्यक साधना है। यह गृहस्थ जीवन को विष नहीं, साधना और सेवा का माध्यम बनाता है। जो गृहस्थ संयम में जीता है, वह परिवार को भी सुधारता है, समाज को भी प्रेरणा देता है और स्वयं को भी उन्नति के मार्ग पर ले जाता है।

ब्रह्मचर्य + गृहस्थ = संतुलित, सफल और शांतिपूर्ण जीवन

*****

संन्यास और ब्रह्मचर्य

संन्यास आश्रम क्या है? अच्छे संन्यासी के क्या लक्षण होते हैं? विधिवत संन्यास कब और कैसे धारण कर सकते हैं? और संन्यासी के लिए ब्रह्मचर्य धारण करना क्यों आवश्यक होता है? ऐसे बहुत सारे प्रश्न हैं, जिनको जानने की उत्सुकता हमेशा बनी रहती है।

संन्यास आश्रम धर्म जीवन की चौथी व अन्तिम अवस्था है।

"संन्यास" शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है — *सम्यक्* + *न्यास*, जिसका अर्थ है पूर्ण समर्पण या सम्पूर्ण त्याग।

संन्यास मार्ग पर चलने वाला पुरुष अपने जीवन की घटनाओं का चिंतन, विश्लेषण और आत्ममंथन करता है। वह अपने आत्म-स्वरूप के लिए सच्ची शांति और सच्चे आनंद की खोज के लिए अग्रसर हो जाता है। उसके जीवन का लक्ष्य, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना, स्थूल शरीर और भौतिक संसार से संबंधित बंधनों से छुटकारा पाना और आत्मा की मुक्ति व परम शांति को प्राप्त करना बन जाता है।

सच्चा संन्यासी यह जान चुका होता है कि सांसारिक जीवन से जुड़ी पीड़ा, कष्ट और सुख-दुख, भोग वासनाएं, रिश्ते-नाते सब मायाकृत हैं, सब मिथ्या हैं। वह शाश्वत आनंद, परमानंद, दिव्य आनंद की खोज में लग जाता है। पूर्णत: त्यागमय जीवन जीता है। भिक्षा-वृत्ति में जीवन निर्वाह करता है।

हमारे शास्त्रों में संन्यास की अनेकों परिभाषाएं दी गई हैं। अस्तु, कर्म में त्याग की भावना वेदान्त साधना का एक आवश्यक अंग मानी गई है। किन्तु भ्रांतिवश कर्म 'में' त्याग की भावना को कर्म 'का' त्याग समझ कर वेदान्त को संन्यास दर्शन कहा गया है। संन्यास सभी प्राचीन दर्शनों में एक आवश्यक अंग माना गया है। साधना की दृष्टि से संन्यास का मूल्य बहुत है।

आदि गुरु शंकराचार्य का दृष्टिकोण

आदि गुरु शंकराचार्य ने बाह्य रूप की अपेक्षा आंतरिक भावना को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार,

"न यज्ञोपवीतत्रिदण्डकमण्डल्वादिपरिग्रहः।"

(छान्दोग्य भाष्य 2.23)

अर्थात्, चतुर्थ आश्रम यानी संन्यास में यज्ञोपवीत, त्रिदण्ड, कमण्डलु आदि बाह्य उपकरणों का धारण करना ही वास्तविक संन्यास नहीं है। ये तो केवल संन्यास के बाहरी प्रतीक हैं, उसकी आत्मा नहीं।

वास्तविक संन्यास एक आंतरिक, आध्यात्मिक अवस्था है, जिसका मूल स्वरूप है — समस्त इच्छाओं, कामनाओं और मोहों का पूर्ण त्याग। यही त्याग की भावना और आत्मिक वृत्ति सच्चे संन्यास की पहचान है।

संन्यास के गुण —

अन्तःकरण के शुद्धिकरण और उच्च आध्यात्मिक साधना के लिए कुछ विशिष्ट संन्यास-गुणों का अभ्यास आवश्यक होता है। ये गुण न केवल भावना को पवित्र करते हैं, बल्कि साधक के मन में वैराग्य और शांति का संचार भी करते हैं। संन्यास के पाँच मुख्य गुण हैं — **शौच**, **उपशम**, **त्याग**, **तप** और **क्षमा**।

शौच (पवित्रता), उपशम (इंद्रिय-निग्रह/शांति), त्याग (अनासक्त भाव से सबका परित्याग), तप (अनुशासित साधना/आत्मसंयम), क्षमा (क्षमाशीलता/ सहनशीलता)

शौच दो प्रकार का होता है — **बाह्य** और **आंतरिक**।

- *बाह्य शौच* का अर्थ है जल आदि से शरीर और इंद्रियों की शुद्धता बनाए रखना।
- *आंतरिक शौच* का तात्पर्य है — राग, द्वेष, मोह आदि मानसिक विकारों का निवारण कर मन और बुद्धि को निर्मल बनाना।

शौच के अभ्यास से *उपशम* की भावना उत्पन्न होती है। उपशम भी दो प्रकार का माना गया है:-

- *बाह्य इंद्रियों का नियंत्रण* — जिसे **दम** कहते हैं।
- *अन्तःकरण की शांति* — जिसे **शम** कहा जाता है।

जब उपशम सुदृढ़ होता है, तो *त्याग*, *तप* और *संतोष* जैसे अन्य गुणों को अपनाने का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त हो जाता है। ये सभी गुण मिलकर संन्यासी के व्यक्तित्व और साधना को पूर्णता की ओर ले जाते हैं।

संन्यासी कौन होता है ?

संन्यासी वह होता है जो अपने मन और इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर चुका होता है।

वह न केवल पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा उनके विषयों जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध पर संयम रखता है, बल्कि कर्मेन्द्रियों पर भी पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लेता है। वास्तविक संन्यासी का जीवन संयम, आत्मनियंत्रण और वैराग्य का प्रतीक होता है।

संन्यासी के प्रमुख लक्षण —

1. **वैराग्य** - सांसारिक वस्तुओं, संबंधों और सुखों में कोई आसक्ति नहीं होती; उनका पूर्ण त्याग कर चुका होता है।
2. **स्वाध्याय एवं साधना** - वेदों और शास्त्रों का नियमित अध्ययन करता है तथा ध्यान, जप और आत्मचिंतन जैसी आध्यात्मिक साधनाओं में निरंतर लगा रहता है।
3. **नैतिक आचरण** - अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैसे ऊँचे नैतिक सिद्धांतों का दृढ़ता से पालन करता है।
4. **एकांतप्रियता और मौनव्रत** - वह भीड़-भाड़ और शोर-शराबे से दूर रहकर एकांत में आत्मचिंतन और आत्मसाधना में लीन रहता है।
5. **समत्वभाव** - वह सुख-दुख, सम्मान-अपमान, लाभ-हानि जैसे द्वंद्वों में समभाव रखता है; किसी परिस्थिति में विचलित नहीं होता।

संन्यास के प्रमुख प्रकार —

संन्यास उपनिषद (सामवेद 2/23) में संन्यास को छह श्रेणियों में विभाजित किया गया है। ये प्रकार साधक की आंतरिक अवस्था और त्याग की गहराई के आधार पर निर्धारित होते हैं:-

1. **कुटीचक्र संन्यासी** – प्रारंभिक अवस्था का संन्यासी जो आश्रम या कुटी में रहकर साधना करता है और कभी-कभी अपने परिवार से भी संपर्क बनाए रखता है।
2. **बहुदक संन्यासी** – यह साधक परिवार से पूर्ण रूप से विरक्त होकर केवल भिक्षा पर जीवन यापन करता है और भिक्षा के लिए अनेक घरों में जाता है।
3. **हंस संन्यासी** – यह संन्यासी एक स्थान पर न टिककर देश-देशांतर में भ्रमण करते हुए आत्मज्ञान की खोज करता है।
4. **परमहंस संन्यासी** – अत्यंत उच्च कोटि का त्यागी, जो द्वैत-अद्वैत से परे आत्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव करता है और बाह्य चिन्हों से भी मुक्त होता है।
5. **तुरीयातीत** – यह वह साधक होता है जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन सभी अवस्थाओं से परे हो चुका होता है; पूर्ण ब्रह्मस्वरूप में स्थित रहता है।
6. **अवधूत** – यह सबसे ऊँची अवस्था का संन्यासी होता है, जो सामाजिक नियमों से परे, पूर्णतः ब्रह्म में लीन और जगत से निर्लिप्त होता है।

इन श्रेणियों से यह स्पष्ट होता है कि संन्यास केवल बाह्य रूप का त्याग नहीं, बल्कि एक गहरी आंतरिक यात्रा है जो क्रमशः आत्मा की पूर्ण मुक्ति की ओर ले जाती है।

वैराग्य – एक सच्ची मानसिक अवस्था

वैराग्य वह आंतरिक मनोस्थिति है जिसमें व्यक्ति को सांसारिक वस्तुओं, भोग-विलास, रिश्तों और इच्छाओं के प्रति कोई आकर्षण या आसक्ति नहीं रहती।

तुलसीदास जी कहते हैं:-

"ब्रह्मज्ञान जान्यो नहीं, कर्म दिये छिटकाय।
तुलसी ऐसी आत्मा, सहज नरक महँ जाय।।"

अर्थात् जो केवल बाह्य आचरण को ही ज्ञान समझ लेता है, परंतु आत्मज्ञान से अज्ञान में डूबा रहता है, वह आत्मा सीधे नरक को प्राप्त होती है।

वास्तव में, केवल ज्ञान का दिखावा करना अथवा वैराग्य का बाह्य प्रदर्शन करना किसी भी साधक के कल्याण का मार्ग नहीं है। यदि वास्तव में मुक्ति और आत्मकल्याण की इच्छा हो, तो सच्चे, गहरे और दृढ़ वैराग्य का अर्जन करना आवश्यक है।

वैराग्य किसी बाह्य रूप या आडंबर का नाम नहीं है।

किसी कारणवश या अज्ञानतावश परिवार, स्त्री, धन, पुत्र आदि का त्याग कर देना, भगवा वस्त्र पहन लेना, सिर मुंडवा लेना, जटाएं धारण कर लेना या अन्य बाहरी चिन्हों को अपना लेना वैराग्य नहीं कहलाता।

यदि मन अभी भी भोग-वासनाओं में डूबा है और केवल बाहर से त्याग का रूप दिखाया जा रहा है, तो वह ढोंग और मिथ्याचार है।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं:-

"कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।"

(गीता 3.6)

अर्थात्, *जो मूढ़बुद्धि मनुष्य इंद्रियों को जबरन संयम में रखता है, लेकिन मन ही मन विषयों का चिंतन करता रहता है, वह दंभपूर्ण और मिथ्याचारी कहा जाता है।*

अतः वैराग्य केवल त्याग का रूप नहीं, बल्कि विषयों से मन की विरक्ति का नाम है — वही सच्चा वैराग्य है जो साधक को आत्मज्ञान और मोक्ष के पथ पर आगे बढ़ाता है।

वैराग्य के लक्षण —

1. **इच्छाओं का क्षय** - भोग-विलास, सांसारिक सुख-सुविधाओं और वासनाओं की प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं।
2. **मन की स्थिरता** - चित्त में चंचलता नहीं रहती; मन शांत, संतुलित और नियंत्रित बना रहता है।
3. **आत्मा की ओर आकर्षण** - व्यक्ति का झुकाव आत्मसाक्षात्कार, परमात्मा की प्राप्ति और आध्यात्मिक उन्नति की ओर होता है।
4. **विवेकशील दृष्टि** - वैराग्यवान व्यक्ति शाश्वत (सत्य) और अशाश्वत (नश्वर) के बीच भेद करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है और अस्थायी चीज़ों में मूल्य नहीं देखता।

ब्रह्मचर्य की आवश्यकता —

ब्रह्मचर्य का पालन सभी दृष्टियों से अत्यंत आवश्यक है। इसके माध्यम से न केवल बल, बुद्धि, तेज और आयु में वृद्धि होती है, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति और सांसारिक व आध्यात्मिक सुख भी प्राप्त होते हैं। वास्तव में, ब्रह्मचर्य ही उस परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग है, जिसे जीवन का अंतिम लक्ष्य और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति का एकमात्र उपाय माना गया है।

संन्यास के मार्ग पर ब्रह्मचर्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संन्यास केवल भौतिक वस्तुओं का त्याग नहीं, बल्कि इंद्रियों, इच्छाओं और मन के संपूर्ण संयम की स्थिति है और इस संयम को साधने का मूल आधार है ब्रह्मचर्य।

ब्रह्मचर्य के अभ्यास से चित्त शुद्ध होता है। मन विकारों जैसे काम-वासना, राग, द्वेष और मोह से मुक्त होकर शांत और स्थिर बनता है। इस प्रकार, ब्रह्मचर्य साधक के भीतर आध्यात्मिक उन्नति की आधारशिला रखता है।

"चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये"

शुद्ध चित्त में ही ब्रह्म का प्रतिबिंब स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"

पतंजलि योग सूत्र (2.38)

अर्थात्, जब साधक में ब्रह्मचर्य की पूर्ण और दृढ़ स्थिति स्थापित हो जाती है, तब उसके मन, बुद्धि, इंद्रिय और शरीर में अपार शक्ति का संचार होता है, जिसे साधारण मनुष्य किसी भी कार्य में बराबरी नहीं कर पाते। इसलिए, ब्रह्मचर्य के कठोर पालन से वीर्य अर्थात् तेज और शक्ति की प्राप्ति होती है।

संन्यास के मार्ग पर इंद्रिय नियंत्रण के बिना आत्म-साक्षात्कार असंभव है। आत्मा अत्यंत सूक्ष्म है, उसे अनुभव करने के लिए मन का स्थिर और निर्मल होना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के अभ्यास से इंद्रियां संयमित होती हैं और साधक विषय-वासनाओं से ऊपर उठता है।

ब्रह्मचर्य के पालन से विवेक और वैराग्य दोनों में वृद्धि होती है। इसका अभ्यास करने से सत्य-असत्य के बीच भेद करने की क्षमता (विवेक) और संसार से अनासक्ति (वैराग्य) स्वतः बढ़ती है। ये दोनों गुण मोक्ष के द्वार हैं।

कंचन-कामिनी-कीर्ति — ये तीनों सबसे बड़े कारण हैं जो ईश्वर से दूरी उत्पन्न करते हैं। ब्रह्मचर्य के बल और विवेक, वैराग्य की वृद्धि से इन तीनों वासनाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ब्रह्मचर्य आध्यात्मिक जीवन की मूल रीढ़ है। यह आत्मसंयम, आत्मनियंत्रण और परमात्मा की ओर बढ़ने वाले जीवन का आधार होता है।

जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह अपने अंदर और बाहर दोनों जगह पवित्रता का अनुभव करता है — और यही व्यक्ति अंततः ब्रह्म की प्राप्ति करता है।

शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के महत्व को दर्शाने वाले अनेक श्लोक मिलते हैं, जैसेः-

"ऋछतं च स्वाध्यायप्रवचने च।
सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च।

तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
ब्रह्मचर्य च स्वाध्यायप्रवचने च।
अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च।"

— तैत्तिरीय उपनिषद (1.11.1)

ऋतु, सत्य, तप, दमन, शम, और ब्रह्मचर्य — ये सभी गुण स्वाध्याय और शास्त्र प्रचार के साथ मिलकर अभ्यास किए जाने चाहिए। ब्रह्मचर्य को तप, सत्य और संयम के समान ही महत्त्वपूर्ण माना गया है और इसे ज्ञान की साधना एवं प्रचार से जोड़ा गया है।

महाभारत के शांति पर्व में ब्रह्मचर्य को सर्वोच्च तप, तीर्थ और साधना बताया गया है। वहीं पतंजलि योग सूत्र में इसे आत्मिक शक्ति का स्रोत माना गया है।

पुराणों में ब्रह्मचर्य के प्रकार —पुराणों में ब्रह्मचर्य को केवल शारीरिक संयम तक सीमित नहीं रखा गया है, बल्कि इसे धार्मिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक तपस्या के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्मचर्य का वर्णन वेद, उपनिषद, धर्मशास्त्रों के साथ-साथ पुराणों में भी अनेक बार मिलता है। पुराण इसे किसी एक आश्रम का नियम न मानकर, सम्पूर्ण जीवन के लिए एक निरंतर साधना और जीवनशैली के रूप में देखते हैं।

ब्रह्मचर्य के प्रमुख भेद इस प्रकार हैं:-

1) **शारीरिक ब्रह्मचर्य (कायिक ब्रह्मचर्य)**
गरुड़ पुराण और पद्म पुराण में इसका उल्लेख मिलता है। इसे कायिक ब्रह्मचर्य भी कहा जाता है, जिसमें कामाचार, मैथुन और विषय-सुख से पूर्ण संयम आवश्यक होता है। शरीर से जुड़ी सभी वासनात्मक क्रियाओं से बचाव रहता है। साथ ही स्नान, भोजन, निद्रा आदि में भी संयमित जीवन शैली अपनाई जाती है।

2) **मानसिक ब्रह्मचर्य (मानस ब्रह्मचर्य)**
विष्णु पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसका वर्णन है। इसमें शारीरिक संयम के साथ-साथ मानसिक संयम भी आवश्यक माना गया है। मन में काम, क्रोध, मोह आदि न उत्पन्न हों। मानसिक कल्पनाएं, स्मृतियाँ, स्वप्न आदि भी शुद्ध और पवित्र होनी चाहिए।

3) **वाचिक ब्रह्मचर्य (वाणी का संयम)**
स्कंद पुराण में इसका उल्लेख है। इसमें न केवल शरीर और मन, बल्कि वाणी से भी संयमित जीवन को ब्रह्मचर्य माना गया है। वाणी के माध्यम से विषय-विकार, अश्लीलता और अनावश्यक स्त्री-संवाद से बचना आवश्यक है। केवल शुद्ध, सत्य और आवश्यक वाणी को ही ब्रह्मचर्य का हिस्सा माना जाता है।

4) **इंद्रिय ब्रह्मचर्य (इंद्रिय संयम)**
मार्कण्डेय पुराण में इसका वर्णन है। इसमें दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, रस, गंध — इन पाँच इंद्रियों पर नियंत्रण रखा जाता है। सुंदर वस्तुओं को देखकर मन लोलुप न हो, यही इंद्रिय संयम है।

5) **नैष्ठिक ब्रह्मचर्य (आजीवन ब्रह्मचर्य)**
वेदों के साथ-साथ भागवत पुराण और नारद पुराण में इसका उल्लेख है। जो व्यक्ति जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाता है। उसकी साधना केवल आत्म-साक्षात्कार के लिए होती है। इसके प्रमुख उदाहरण नारद मुनि और आदि गुरु शंकराचार्य हैं।

6) **गृहस्थ ब्रह्मचर्य (आंतरिक संयम के साथ जीवन)**
पद्म पुराण में इसका उल्लेख मिलता है। यदि कोई गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी वासनाओं से मुक्त, संयमित और पवित्र जीवन जीता है, तो उसे भी ब्रह्मचारी कहा जाता है। यह गृहस्थ धर्म का उच्चतम स्वरूप माना जाता है।

ब्रह्मचर्य परं धर्म तपसां चोत्तमं तपः।
यस्मिन् स्थितः स योगी सदा ब्रह्मनिषेवकः।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

अर्थात्, ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम धर्म और तप है। जो व्यक्ति इसमें स्थित रहता है, वही सच्चा योगी और सच्चा संन्यासी कहलाता है।

पुराण ब्रह्मचर्य को केवल कामों का त्याग मानते हुए सीमित नहीं करते, बल्कि इसे मन, वाणी, इंद्रिय और आचरण में पूर्ण संयम का स्वरूप मानते हैं। सच्चा ब्रह्मचर्य जीवन के हर क्षेत्र में संयम, पवित्रता और ब्रह्म की ओर उन्मुखता का भाव लेकर चलता है। यह किसी एक आश्रम या अवस्था तक सीमित नहीं, बल्कि सभी साधनाओं, तपस्या और मुक्ति का मूल आधार है।

इस प्रकार, सच्चा संन्यासी अपने जीवन के त्रयोपस्तंभ—आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य—का संयमित पालन करता है। इससे वह चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष—पर विजय प्राप्त कर उन्हें पार कर जाता है। अतः ब्रह्मचर्य आध्यात्मिक जीवन की रीढ़ के समान है, जिसके बिना कोई भी संन्यासी अपने मार्ग पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ नहीं सकता।

संन्यास जीवन में ब्रह्मचर्य धारण करने के लाभः-

- **गहरी साधना में सहायक** — ब्रह्मचर्य से मन शांत और स्थिर होता है। ध्यान, जप और समाधि में एकाग्रता सहज हो जाती है।
- **आत्मिक ऊर्जा का संरक्षण** —वीर्य और मन की शक्ति सुरक्षित रहने से साधक में ओज, तेज और तप का विकास होता है। यही शक्ति उसकी वाणी, दृष्टि और स्पर्श तक में दिव्यता भर देती है।
- **काम-क्रोध पर नियंत्रण** — ब्रह्मचर्य से वासनात्मक विचारों का क्षय होता है, जिससे काम, क्रोध, लोभ जैसे विकारों पर संयम संभव होता है।
- **वैराग्य को स्थिर करता है** —ब्रह्मचर्य पालन से मन बाहर की वस्तुओं में आकर्षित नहीं होता, जिससे वैराग्य में दृढ़ता आती है।

- **ईश्वरप्राप्ति की ओर अग्रसरता** — उपनिषदों, भगवद्गीता और योगशास्त्र के अनुसार, ब्रह्मचर्य ही वह मार्ग है जो "**ब्रह्मसाक्षात्कार**" तक ले जाता है।

लाभ का क्षेत्र	प्रभाव
मानसिक शक्ति	विचारों की स्पष्टता, ध्यान की तीव्रता
वाणी में तेज	वचनों में प्रभाव, शांति और ओज
आत्मिक स्थिति	अंतर्मुखता, वैराग्य और भक्ति की वृद्धि
तप-साधना	दीर्घकालीन साधना में स्थिरता और सफलता
दिव्यता	आचरण, दृष्टि और व्यक्तित्व में आध्यात्मिक प्रभाव, भागवत प्राप्ति, आत्म साक्षात्कार

संन्यास जीवन में ब्रह्मचर्य आत्मा की सुरक्षा का कवच है।

यह केवल यौन संयम नहीं, बल्कि विचार, भावना और इंद्रियों की पूर्ण शुद्धि का नाम है। जो संन्यासी ब्रह्मचर्य में स्थिर होता है, वह न केवल स्वयं को साधता है, बल्कि समाज के लिए प्रेरणा-स्तंभ बन जाता है।

ब्रह्मचर्य = आत्मबल + वैराग्य + ईश्वरप्राप्ति का मार्ग

*****

ब्रह्मचर्य और उचित शिक्षा

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक और भौतिक शिक्षा दोनों का विशेष स्थान होता है। आधुनिक शिक्षा हमें विज्ञान, तकनीकी, भाषा और व्यवहारिक ज्ञान से सुसज्जित करती है, जिससे व्यक्ति अपने सामाजिक कर्तव्यों का सही ढंग से निर्वहन कर सके और व्यावसायिक रूप से सक्षम बन सके। इसके विपरीत, आध्यात्मिक शिक्षा व्यक्ति को आत्मचिंतन, नैतिकता, संयम और आत्म-विकास की दिशा में प्रेरित करती है। यह हमारे भीतर शांति, सहनशीलता और करुणा जैसे गुणों का विकास करती है। जब इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं का संतुलन स्थापित होता है, तब व्यक्ति बाहरी रूप से सफल और आंतरिक रूप से संतुलित जीवन जीता है।

संसार में वही शिक्षा सच्ची मानी जाती है जो व्यक्ति को हर कार्य में दक्ष और समर्थ बनाए। जो शिक्षा शारीरिक, मानसिक और नैतिक रूप से पूर्ण विकास करती हो, वही सम्पूर्ण शिक्षा कहलाती है। सही शिक्षा के माध्यम से ही समाज प्रगति करता है, और समाज की उन्नति से देश की तरक्की संभव होती है। प्रत्येक भौतिक शिक्षा में ब्रह्मचर्य का पालन एक महत्वपूर्ण आधार होता है।

यदि वर्तमान शिक्षा प्रणाली और प्राचीन गुरुकुल प्रणाली की तुलना करें तो दोनों में बड़ा अंतर नजर आता है। आज की शिक्षा प्रणाली अत्यधिक महंगी और व्यावसायिक हो गई है, जिसमें नैतिक शिक्षा की पूर्ण अनदेखी की गई है। जबकि पहले गुरुकुलों में हर विद्यार्थी को पूर्ण नैतिक शिक्षा दी जाती थी।

प्राचीन समय में विद्यार्थी विनम्रता, आत्मसंयम, आज्ञाकारिता, सेवा भाव, आत्मत्याग, अच्छे व्यवहार, शिष्टता और आत्मज्ञान की प्राप्ति की कामना के साथ परिपूर्ण होते थे। परंतु आज के छात्र विलासिता और असंयम की ओर बढ़ते हैं, जो उनके बाल्यकाल से ही शुरू हो जाता है। उन्हें ब्रह्मचर्य और आत्मनियंत्रण का सही ज्ञान नहीं दिया जाता। पाश्चात्य आचार-व्यवहारों के प्रभाव में वे निर्बल और

कामुक प्रवृत्ति के शिकार हो गए हैं। वे ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान, वैराग्य, मोक्ष-संपदा तथा आध्यात्मिक शांति और आनंद से अनजान हैं। आधुनिक महाविद्यालयों में नैतिक और संस्कार संबंधी शिक्षा लगभग समाप्त हो चुकी है।

इसलिए भौतिक शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षा भी अत्यंत आवश्यक है। आध्यात्मिक शिक्षा जीवन जीने की कला सिखाती है, आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करती है और सही-गलत का भेद समझाती है। लेकिन आज के युवा आधुनिक सभ्यता के मोह में फंसे हुए हैं और वे कृत्रिम एवं अस्वाभाविक जीवनशैली अपनाए हुए हैं।

आज की आधुनिक शिक्षा प्रणाली, छात्रों को ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों से अवगत नहीं कराती, बल्कि इसके उलट ब्रह्मचर्य खोने के अनेक साधन सिखाए जाते हैं—जैसे कुसंग, सोशल मीडिया, फिल्में, मोबाइल फोन आदि। चाहे स्त्री हो या पुरुष, सभी शारीरिक सुख-साधनों और सौंदर्य की तलाश में खोए हुए हैं। कोई भी अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रख पाता, और असंयमित इंद्रियाँ अंततः युवाओं के विनाश का कारण बन जाती हैं।

यदि इंद्रियों का सही उपयोग किया जाए, तो वे अत्यंत लाभकारी होती हैं। इनके सदुपयोग से व्यक्ति भगवत्प्राप्ति की ओर बढ़ सकता है। परंतु आज का युवा इंद्रियों के वशीभूत होकर मनमाना व्यवहार करने लगा है, जिससे वह अशांति और अंधकार में डूबता जा रहा है। वह विषय-वासनाओं, आर्थिक लालच और स्वार्थ की संकुचित मानसिकता के जाल में फंस जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता के पांचवें अध्याय (5.22) में कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनयः एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।

अर्थात— "यह जो इन्द्रिय-संयोग से उत्पन्न सभी भोग हैं, वे भले ही विषयात्माओं को सुखद लगें, पर वास्तव में ये दुःख और नाश के कारण ही हैं। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति इनमें आसक्त नहीं होता।"

भगवान ने ब्रह्मचर्य को महान व्रत और तप के रूप में वर्णित किया है—

देवद्विजगुरूप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंमा च शरीरं तप उच्यते।।

(17.14)

अर्थात— "देवताओं, ब्राह्मणों, गुरुओं और ज्ञानीजनों का सम्मान, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—इन्हें शरीर का तप माना गया है।"

हमारे शास्त्रों में शरीर को भगवान का मंदिर माना गया है, जिसे पवित्र और स्वच्छ रखना हमारा परम कर्तव्य है। और इसका सर्वोत्तम साधन है— ब्रह्मचर्य का पालन।

आज की स्थिति में दस से बारह वर्ष के बच्चों में भी अशुद्ध और अनुचित व्यवहार देखने को मिलता है। वे खुलेआम गंदी और अश्लील क्रियाएँ करते हैं, परन्तु उनके शिक्षक और माता-पिता इस गंभीर विषय पर ध्यान नहीं देते। कई अभिभावक यह सोचते हैं कि बच्चों से इस विषय में बात करना ठीक नहीं है क्योंकि इससे वे समय से पहले इन बातों को जान बैठेंगे। ब्रह्मचर्य का सही ज्ञान न होने के कारण बच्चे और बालिकाएँ भोग-विलास की ओर झुक जाते हैं और कुसंग के प्रभाव में आकर वीर्य की हानि शुरू कर देते हैं।

आजकल अनेक शिक्षा संस्थानों के शिक्षक भी निम्न स्तर के होते जा रहे हैं। शिक्षा के नाम पर स्कूलों की संख्या बढ़ रही है, लेकिन कई शिक्षक खुद चरित्रहीन पाए गए हैं। यह स्थिति बहुत ही चिंताजनक है। जब रक्षक ही भक्षक बन जाएं, तो सुधार और प्रगति की उम्मीद कैसे की जा सकती है? इसलिए सभी शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य, सदाचार और नैतिकता के मार्ग पर चलने की शिक्षा दें। उन्हें सच्चा ब्रह्मचारी बनाने का प्रयास करें, यही उनका नैतिक उत्तरदायित्व है।

जो शिक्षक पहले स्वयं अनुशासित हो चुके हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपने विद्यार्थियों के साथ निजी वार्ता करें और ब्रह्मचर्य के विषय में नियमित रूप से व्यावहारिक शिक्षाएं प्रदान करें।

देश का भविष्य पूरी तरह अध्यापकों और विद्यार्थियों पर निर्भर है। यदि शिक्षक अपने छात्रों को सही दिशा में आध्यात्मिक, नैतिक और शारीरिक स्वास्थ्य की शिक्षा देंगे, तभी विद्यार्थी समाज में प्रकाश, शांति, आनंद और सुख का प्रसार कर पाएंगे।

युवाओं को ब्रह्मचर्य की उचित शिक्षा देने के लाभ-

ब्रह्मचर्य की सही जानकारी और मार्गदर्शन से युवा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक रूप से सशक्त बनते है। यह शिक्षा उन्हें सिर्फ वासना से संयमित नहीं करती, बल्कि स्व-विकास की दिशा में ले जाती है। ब्रह्मचर्य की उचित शिक्षा युवाओं को केवल यौन संयम तक सीमित नहीं रखती, बल्कि संपूर्ण जीवन-दर्शन सिखाती है। वासनात्मक आकर्षणों से दूर रहकर वे अपनी ऊर्जा को पढ़ाई, करियर, सेवा और आत्मविकास में लगा पाते हैं। ब्रह्मचर्य का सही ज्ञान युवा को न केवल दुष्प्रवृत्तियों से बचाता है, बल्कि उसे एक आदर्श, प्रेरणादायक और चरित्रवान व्यक्तित्व में ढालता है, जिससे वह समाज और राष्ट्र के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

*****

कुछ आदर्श ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारणियां

भीष्म—

जब कभी भी आदर्श ब्रह्मचारियों की बात होती है, तब भक्त शिरोमणि परम भागवत भीष्म पितामह का नाम प्रथम श्रेणी में आता है। भीष्म जी का पूर्व का नाम देवव्रत था, वह महाराज शांतनु के औरस पुत्र थे। वशिष्ट जी के शाप के कारण आठ वसुओं को मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ा था, ये उन्हीं आठ वसुओं में से एक थे और गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उनके अग्रज सात भाइयों को गंगाजी ने जन्म लेते ही गंगा के प्रवाह में बहा कर शाप से मुक्त कर दिया था, परन्तु धो नामक वसु के अंशावतार भीष्म को राजा शांतनु ने रख लिया।

एक बार महाराज शांतनु मृगया के लिए वन में गए, वहां उन्होंने मत्स्यगंधा सत्यवती को देखा जो दासराज के द्वारा पालित हुई थी। सत्यवती का रूप सौंदर्य देखकर महाराज शांतनु उन पर मोहित हो गए और सत्यवती के पिता के पास जाकर उनसे सत्यवती के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। दासराज ने महाराज शांतनु से कहा कि मैं एक शर्त पर सत्यवती का हाथ आपको दे सकता हूं, और वह यह है कि आपको यह प्रतिज्ञा करके मुझे वचन देना होगा कि आपके राज सिंहासन पर मेरे पुत्री से उत्पन्न होने वाले पुत्र का ही अधिकार होगा। अपने पुत्र देवव्रत के होते हुए राजा यह वचन नहीं दे सकते थे।

शांतनु को विषादयुक्त देखकर युक्ति से देवव्रत ने मंत्रियों से पिता के दुःख का कारण जान लिया। अपने पिता का दुःख दूर करने के लिए स्वयं दासराज के पास जाकर उसकी इच्छा अनुसार 'राजसिंहासन पर न बैठने और आजीवन ब्रह्मचर्य पालन की', कठिन प्रतिज्ञा कर ली, और पिता का सत्यवती के साथ विवाह करवा दिया। पितृभक्ति से प्रेरित होकर देवव्रत ने अपना जन्मसिद्ध राज्याधिकार छोड़कर सदा के लिए स्त्री सुख का परित्याग कर दिया, इसलिए देवताओं ने प्रसन्न होकर कंचन और कामिनी का परित्याग करने वाले देवव्रत पर पुष्पवृष्टि करते हुए उनका नाम 'भीष्म' रखा।

भीष्म ने हस्तिनापुर को यह वचन भी दिया कि मैं हस्तिनापुर के राजा में अपने पिता की छवि ही देखूंगा और उनका परम भक्त बना रहूंगा। पुत्र का ऐसा त्याग देखकर राजा शांतनु ने भीष्म को वरदान दिया कि "जब तक तुम स्वयं नहीं चाहोगे, तब तक मृत्यु तुम्हारे पास नहीं आएगी," "मैं तुमको इच्छामृत्यु का वरदान देता हूं।" निष्काम पितृभक्त और अखण्ड ब्रह्मचारी भीष्म ने आजीवन अपनी इस भीषण प्रतिज्ञा का पालन किया।

महाभारत के युद्ध में भीष्म बड़े ही वीर योद्धा थे, वीरता, धैर्य, तेज, कुशलता, युद्ध में कभी न हटना, दान और ऐश्वर्य भाव, ये सभी क्षत्रिय के गुण प्रगट थे। अखंड बाल ब्रह्मचारी भगवान परशुराम जी से उन्होंने शस्त्र विद्या ग्रहण की थी। भीष्म आत्मसंयम और तितिक्षा के मूर्तिमान अवतार थे। जिस समय परशुराम जी ने भीष्म को यह आदेश दिया कि तुम काशीराज की पुत्री अम्बा से ब्याह करो, उस समय भीष्म ने ऐसा करने से मना कर दिया, और बड़े विनम्र शब्दों में कहा कि *"भय, दया, धन के लोभ कामना से मैं कभी क्षात्रधर्म का त्याग नहीं कर सकता, यह मेरा सदा का व्रत है।"*

बात जब यहां तक बढ़ गई कि परशुराम जी ने कह दिया कि 'यदि मेरी आज्ञा का पालन नहीं करेगा तो मेरे साथ युद्ध करना होगा,' तो गुरू की आज्ञा से भीष्म जी उनके साथ युद्ध करने को भी तैयार हो गए और लगातार 23 दिनों तक गुरू-शिष्य में भयानक युद्ध होता रहा, परन्तु परशुराम जी भीष्म को परास्त न कर सके। अंत में देवताओं ने युद्ध बंद करवाया, पर भीष्म की प्रतिज्ञा भंग नहीं हुई।

जब सत्यवती के दोनों पुत्र मर गए, राज सिंहासन पर बैठने वाला कोई नहीं रहा तब सत्यवती ने भीष्म को अम्बिका और अम्बालिका से पुत्रोत्पादन करने या फिर राजगद्दी स्वीकार करने को कहा, परन्तु भीष्म जी ने स्पष्ट मना कर दिया, और कहा कि माता, आप इसके लिए आग्रह न करें। पंचमहाभूत चाहे अपना गुण छोड़ दे, सूर्य और चंद्रमा चाहे अपना तेज और शीतलता त्याग दे, परन्तु तीनों लोकों के राज्य सुख या उससे भी अधिक के लिए मैं अपने प्रिय सत्य को कभी नहीं छोड़ सकता।

भीष्म जी ज्ञानी, दृढप्रतिज्ञ, धर्मविद्, सत्यवादी, विद्वान, राजनीतिज्ञ, धर्मात्मा, उदार, जितेन्द्रिय और अप्रतिम योद्धा होने के साथ ही भगवान के अनन्य भक्त थे। श्रीकृष्ण को साक्षात भगवान के रूप में सर्वप्रथम भीष्म जी ने ही पहचाना था। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर के पूछने पर कि अग्रपूजा किसकी होनी चाहिए? भीष्म जी ने स्पष्ट शब्दों मे कह दिया कि तेज, बल, पराक्रम तथा अन्य सभी गुणों में श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम पूजा करने योग्य हैं। महाभारत के युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा करके सम्मिलित हुए थे।

तब भगवान श्रीकृष्ण के बल पर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'मैं गंगा का सुत न कहलाऊं यदि कल श्रीकृष्ण को शस्त्र ग्रहण न करवा दूं तो।' भीष्म की प्रण की रक्षा के लिए भगवान को अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी। अंत में शिखण्डी के सामने बाण न चलाने के कारण अर्जुन के बाणों से बिंध कर भीष्म शरशैया पर गिर पड़े। उस समय कई कुशल शस्त्र वैद्यों को बुलाया गया कि वे बाण निकाल कर मरहम पट्टी करके घावों को ठीक करें, किन्तु अपने इष्टदेव भगवान श्रीकृष्ण को सामने देखते हुए मृत्यु की शैया पर शांति से सोए हुए भीष्म जी ने कुछ भी इलाज नहीं करवाया।

आठ दिन के बाद युद्ध समाप्त हो गया, धर्मराज का राज्याभिषेक हुआ। एक दिन युधिष्ठिर ने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण ध्यान में बैठे थे, तो उन्होंने पूछा कि समग्र संसार आपका ध्यान करते हैं किन्तु आप किसका ध्यान कर रहे थे? भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि इस समय बाणों की शैया पर सोए हुए भीष्म मेरा ध्यान कर रहे हैं इसलिए मैं अभी उनका ध्यान कर रहा था।

फिर भगवान श्रीकृष्ण पांच पांडवों के साथ भीष्म के पास जाते हैं और युधिष्ठिर से कहते हैं कि वेद और धर्म के सर्वोपरि ज्ञाता, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, महान अनुभवी, कुरूकुल का सूर्य अस्त होने जा रहा है, अतएव कुछ उपदेश ग्रहण कर लो। तब अंत में उन्होंने युधिष्ठिर को राजनीति, धर्म, दर्शन, सामाजिक नीति तथा सदाचार आदि विषयों पर अनमोल उपदेश दिए।

*****

श्री गंगा-यमुना बाई—

ब्रज क्षेत्र का कामा नामक एक गांव उस समय डाकुओं का अड्डा बना हुआ था। एक दिन उस प्रदेश के शासक ने उस पर आक्रमण करके गांव को तहस-नहस कर दिया। गांव के लोग इधर-उधर जाकर कहीं छिप गए। इनमें दो बालिकाएं एकान्त वन में जाकर छिप गई। कई दिन तक ये बिना अन्न-जल के भटकती रहीं। अंत में एक वैष्णव साधु जिनका नाम मनोहरदास था, वो उन्हें सहारा देकर मथुरा ले आया। वह संगीत-नृत्य में निपुण था। उसने दोनों बालिकाओं को अपनी बेटी के समान प्यार से पाल-पोस कर संगीत नृत्य की शिक्षा दी। दोनों कलाओं में पारंगत बना दिया।

नृत्य कला में निपुण बनाने के बाद उनके द्वारा धन कमाने की लालसा उसके मन में उत्पन्न हुई। उसने राजा मान सिंह के पास जाकर लड़कियों का सौदा दो हजार रूपयों में करना चाहा, किन्तु राजा ने कहा कि तुम उन्हें ले आओ, मैं उनकी योग्यता की परख करके दो हजार से भी ज्यादा धन दे सकता हूं। मनोहर दास उनको लाने मथुरा आया और बीमार पड़ गया, अपना अंत समय निकट जानकर अपने गड़े हुए धन का ठिकाना लड़कियों को बता दिया। उसके मृत्यु के बाद उसकी 30 हजार की सम्पत्ति से उसकी उत्तर-क्रिया दोनों लड़कियों ने सम्पन्न कर दी।

राजा परमानंद दास जो वृन्दावन में वास करते थे वे गंगा-यमुना बाई का संगीत सुनने कभी-कभी मथुरा जाया करते थे।

मनोहर के मरने के बाद ये दोनों मुक्त हो गई थीं और राजा परमानंद दास की सलाह से वृन्दावन आ गईं और श्री हरिवंश महाप्रभु से दीक्षा ले ली। गंगा-यमुना ने महाप्रभु को मनोहरदास का संपूर्ण धन समर्पित कर दिया। महाप्रभु ने उनको आज्ञा करी कि तुम घर में राधावल्लभ लाल की सेवा पधराओ और हरि एवं हरि के जनों की सेवा करो।

गंगा-यमुना, दोनों सेवा के कार्यों में हाथ खोलकर खर्च करने लगी। वे उत्तम भोग बनाकर प्रभु को भोग लगाकर संतों में वितरण कर देती और वीणा के साथ गाकर अपने प्रभु को रिझाती थी।

वो हानि-लाभ, सुख-दुख को समान समझती थीं, और भोग-विलास को स्वप्नवत मिथ्या मानती थीं। प्रभु के सब उत्सव खूब उत्साहपूर्वक करती थीं। एक दिन उनको स्वप्न में मनोहरदास दिखाई दिया। उसने कहा कि मुझे प्रेत योनि की प्राप्ति हुई है, तुमने मेरा धन तो सत्कर्म में लगा दिया, अब मुझे अपना चरणामृत पिला कर मेरा उद्धार कर दो। यह सुनकर दोनों बहनें मथुरा गई और मनोहर दास के बताए हुए स्थान पर अपना और अन्य संत का चरणामृत डालकर उसका प्रेत योनि से उद्धार किया। उसके बाद साधु-संतों का भंडारा और कीर्तन भी करा दिया।

मथुरा के तत्कालीन हाकिम अजीजबेग ने जब इन दोनों बहनों की संगीत कुशलता और सुंदरता की बात सुनी, तो उसने दोनों को किसी प्रकार से बुलाकर एकान्त स्थान में बिठा दिया। रात के समय जब उसने उनके पास जाने का प्रयत्न किया तो द्वार पर सिंह को बैठा हुआ देखा। वह बेहोश हो गया, सुबह जब होश आया तो दोनों बहनों को माता कहकर उनसे क्षमा मांगी। बहुत सा धन उसने इनकी भेंट के लिए भेजा। यह धन उन दोनों बहनों ने ठाकुर जी के उत्सव और संत-सेवा में व्यय कर दिया।

*****

श्री परशुराम जी—

सनातन धर्म के सात चिरंजीवियों में से एक परशुराम जी हैं। त्रेतायुग में जब क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मण ऋषि-मुनियों पर अत्याचार बढ़ने लगे, तब भगवान विष्णु ने परशुराम के रूप में अवतार लेकर उनका नाश किया। ऋचीक महर्षि की पत्नी सत्यवती थीं, जो महाराज गाधी की पुत्री और एक क्षत्रिय कन्या थीं। सत्यवती के गर्भ से जमदग्नी ऋषि का जन्म हुआ। जमदग्नी का विवाह इक्ष्वाकु कुल की कन्या रेणुका से हुआ था, जिनके गर्भ से वसुमान सहित कई पुत्र हुए, जिनमें सबसे छोटे थे परशुराम जी। परशुराम जी का नाम और यश पूरे संसार में प्रसिद्ध था। उनकी बाल्यावस्था में नाम 'राम' था। भगवान शिव ने उन्हें 'परशु' अर्थात् फरसा प्रदान की, जिसे धारण करने के कारण उनका नाम 'परशुराम' पड़ा।

बचपन से ही परशुराम बड़े वीर थे। वह रूप और गुणों में अद्वितीय थे। वे बड़े ही महान पितृभक्त थे। परशुराम अपने माता-पिता के साथ-साथ अपने बड़े

भाइयों का भी बड़ा आदर करते थे। जब राम कुछ बड़े हुए, तो यथासमय उनका उपनयन संस्कार कर दिया गया। अब उनका शैसवकाल समाप्त हो चुका था। उनकी शिक्षा आरंभ हुई, वह महर्षि कश्यप के पास विद्या अध्ययन करने लगे। उनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। उनके चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज था, बहुत अल्प समय में उन्होंने विद्या अध्ययन पूर्ण कर लिया। उनके मुखारविंद का तेज इतना था कि सहसा किसी को उनकी तरफ आंख उठाकर देखने की हिम्मत नहीं होती थी।

वह अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना अपना परम धर्म समझते थे और ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे जिससे माता-पिता अप्रसन्न हो। उन दिनों हैहयवंश का अधिपति था अर्जुन। वह श्रेष्ठ क्षत्रिय था और उसने भगवान नारायण के अंशावतार दत्तात्रेय जी को प्रसन्न करके उनसे वरदान में एक हजार भुजाएं तथा कोई शत्रु युद्ध में पराजय न कर पाए ऐसा वरदान प्राप्त कर लिया। एक दिन सहस्त्रबाहु अर्जुन शिकार खेलने जंगल में निकल गया। दैववश वह जमदग्नि मुनि के आश्रम में जा पहुंचा, जहां उनके पास कामधेनु गाय रहती थी। उसके प्रताप से उन्होंने सहस्त्रबाहु अर्जुन का उनके सेना-मंत्री समेत सत्कार किया।

उसने देखा कि ऋषि का ऐश्वर्य तो मुझसे भी बढ़ा-चढ़ा है, यह सोचकर अभिमानवश जमदग्नि मुनि से मांगे बिना कामधेनु को ही छीन के ले गया। जब वे चले गए तब परशुराम जी आश्रम पर आए। जब उन्होंने अर्जुन की दुष्टता का वृतांत सुना तो सांप की तरह क्रोध से तिलमिला उठे। वह हाथ में परशु और धनुष-बाण लेकर बड़े वेग से उनके पीछे दौड़े।

सहस्त्रबाहु अभी नगर में प्रवेश कर ही रहा था कि उसने देखा कि परशुराम जी महाराज बड़े वेग से उसी की ओर झपटे आ रहे हैं। उनकी बड़ी विलक्षण झांकी थी, वे हाथों में धनुष-बाण एवं फरसा लिये हुए थे। शरीर पर काला मृगचर्म धारण किए थे, और उनकी जटाएं सूर्य की किरणों के समान चमक रही थी। उन्हें देखते ही सहस्त्रबाहु सेना के साथ स्वयं भिड़ने के लिए आ गया।

भगवान परशुराम जी ने बात ही बात में अकेले ही सारी सेना को नष्ट कर दिया, और अंत में सहस्त्रबाहु का सिर धड़ से अलग कर दिया। सहस्त्रबाहु के दस हजार पुत्र अपने पिता के मर जाने के बाद डर कर भाग गए। परशुराम जी बछड़े

के साथ कामधेनु लौटा लाए। जब जमदग्नि जी को पता चला तो उन्होंने परशुराम जी से कहा कि तुमने बड़ा पाप किया है, राजा सर्वदेवमय होता है, उनका व्यर्थ ही तुमने वध कर दिया, अब इसके प्रायश्चित के लिए तुम जाओ, भगवान का स्मरण करते हुए तीर्थों का सेवन करके अपने पापों को धो डालो।

पिता की आज्ञा को स्वीकार करके भगवान परशुराम एक वर्ष तक तीर्थ यात्रा करके आश्रम पर लौट आये। एक दिन परशुराम की माता रेणुका गंगा तट पर गई हुई थीं। वहां गंधर्वराज चित्ररथ को कई अप्सराओं के साथ विहार करता हुआ देखकर यह भूल गईं कि पतिदेव के हवन का समय हो गया है। उनका मन थोड़ा चित्ररथ की ओर खिंच भी गया था। हवन का समय बीत गया, यह जानकर वह जमदग्नि के शाप से भयभीत हो गईं, और आश्रम चली आईं। जमदग्नि मुनि ने अपनी पत्नी का मानसिक व्यभिचार जान लिया और क्रोध से पुत्रों को कहा -मेरे पुत्रों। इस पापिनी को मार डालो।

परन्तु उनके किसी भी पुत्र ने उसकी वह आज्ञा स्वीकार नहीं की। उसके बाद पिता की आज्ञा से परशुराम ने अपनी माता और सब भाइयों को भी मार डाला। वह अपनी पिता के योग और तपस्या का प्रभाव भली-भांति जानते थे। परशुराम जी के इस काम से जमदग्नि मुनि अति प्रसन्न हुए और वरदान मांगने को कहा।

परशुराम जी ने कहा, पिताजी, मेरी माता और सभी भाई जीवित हो जाएँ और उन्हें इस बात की स्मृति ना रहे कि मैंने उन्हें मार डाला था। परशुराम जी के इस प्रकार कहते ही सब के सब सकुशल उठ बैठे, जैसे कोई सोकर उठे हों। परशुराम जी ने अपने पिता का तपोबल जानकर ही अपने सुहृदों का वध किया था।

सहस्त्रबाहु के पुत्रों को उपनों पिता के वध की याद निरंतर आती रहती थी और वे बेचैन रहते थे। एक दिन परशुराम जी अपने भाइयों के साथ वन में गए थे। वे सब आश्रम में आए और जमदग्नि महर्षि अग्निशाला में भगवान के चिंतन में मग्न थे, उसी समय उन पापियों ने जमदग्नि ऋषि को मार डाला। सती रेणुका जोर-जोर से रोने लगी, परशुराम! बेटा परशुराम! शीघ्र आओ। परशुराम ने दूर से माता का करुण क्रन्दन सुन लिया।

वे शीघ्रता से आश्रम पर आए, और देखा कि पिताजी मार डाले गए हैं। उस समय परशुराम जी को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने पिता के शरीर को तो भाइयों को

सौंप दिया और स्वयं हाथ में फरसा उठा कर क्षत्रियों का संहार कर डालने का निश्चय किया।

परशुराम जी ने माहिष्मती नगरी में जाकर सहस्त्रबाहु के सारे पुत्रों का सिर धड़ से अलग कर दिया। उन्होंने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय अत्याचारी हो गए हैं, इसलिए उन्होंने अपने पिता के वध को निमित बनाकर इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर दिया और कुरूक्षेत्र के समन्तपंचक में ऐसे-ऐसे पांच तालाब बना दिए जो रक्त के जल से भरे थे। परशुराम जी ने अपने पिता का सिर लाकर उनके धड़ से जोड़ दिया और यज्ञों द्वारा भगवान का यजन किया। जीती हुई पृथ्वी, ब्राह्मणों को दान में दे दी और स्वयं यज्ञान्त स्नान करके समस्त पापों से मुक्त हो गए। महर्षि जमदग्नि को स्मृतिरूप संकल्पमय शरीर की प्राप्ति हो गई और वे सप्तऋषियों के मंडल में सातवें ऋषि हो गए।

त्रेतायुग के अंत में जब भगवान राम ने मिथिला में सीता स्वयंवर में शिव-धनुष को भंग किया तब उसकी भयंकर ध्वनि को सुनकर परशुराम जी मिथिला में आए। शुरू में बहुत क्रोधित हुए, किन्तु बाद में भगवान के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर अपना धनुष और बाण श्रीराम जी को सौंप कर हमेशा के लिए महेन्द्र पर्वत पर तपस्या के लिए चले गए।

भगवान परशुराम अगले मन्वन्तर में सप्तऋषियों के मंडल में रह कर वेदों का विस्तार करेंगे। वे आज भी किसी को किसी प्रकार का दंड न देते हुए शांत चित्त से महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं। वहां सिद्ध, गंधर्व चारण उनके चरित्र का मधुर स्वर से गान करते रहते हैं।

*****

श्री आण्डाल — गोदा

आण्डाल के जन्म के बारे में एक प्रसिद्ध जनश्रुति है कि उनका जन्म सामान्य तरीके से नहीं हुआ था। परम वैष्णव भक्त विष्णुचित (पेरियालवार) जब अपनी पुष्प वाटिका में तुलसी के पौधे की देखभाल कर रहे थे, तब एक रहस्यमय रूप से शिशु के रूप में आण्डाल प्रकट हुईं। उनका जन्म भी कुछ इसी तरह हुआ था

जैसे पृथ्वी पर कन्या सीता देवी का। देवी के आदेशानुसार शिशु का नाम गोदा रखा गया। तमिल भाषा में 'कोदै' का अर्थ होता है — फूल के समान कोमल और सुंदर।

वैष्णवाचार्यों के अनुसार आण्डाल का जन्म ईसवी सन 715 में कर्क मास के पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था। विष्णुचित ने भक्तिपूर्वक गोदा का पालन-पोषण किया। एक वैष्णव भक्त के घर में पलने के कारण गोदा बचपन से ही भगवान के प्रति गहरा प्रेम और भक्ति भाव रखती थीं। वह रोज पिता के साथ मिलकर गीत गाती और भगवान के लिए फूलों की माला बनातीं, जिसे श्री रंगनाथजी को अर्पित किया जाता था। बचपन से ही गोदा ने भगवान को अपना पति मान लिया था। वे इतनी प्रेममयी थीं कि माला बनाकर पहले खुद पहनकर भगवान के सामने खड़ी हो जाया करती थीं और कहती थीं, "क्या मैं अपनी चंद्रमुखी सुंदरता, झंझनियों और इस सुगंधित माला के साथ आपकी योग्यता वाली पत्नी लगती हूं?"

इस प्रकार वे माला को भगवान को अर्पित करने से पहले स्वयं उसे पहनकर देखती थीं। एक दिन बड़ी श्रद्धा और प्रेम से बनाई गई माला पहनकर वे भगवान के सामने खड़ी हो गईं, पर जब माला उतारी तो उसमें उनका एक बाल चिपक गया। इसके कारण मंदिर के पुजारी ने उस माला को स्वीकार नहीं किया। जब विष्णुचित को इसका पता चला, तो उन्होंने गोदा को डांटा कि भगवान को अर्पित करने वाली माला पहले स्वयं नहीं पहननी चाहिए। लेकिन भगवान ने स्वप्न में विष्णुचित को दर्शन देकर आदेश दिया कि वे वही माला पहनाएं जो आण्डाल ने पहनी हो।

भगवान ने विष्णुचित को यह भी बताया कि वराहावतार के समय पृथ्वी ने उनकी आराधना की थी और इसी कारण आण्डाल का जन्म हुआ। भगवान ने उन्हें आण्डाल के नाम का संकीर्तन और पूजा करने की सलाह दी। विष्णुचित अपनी पुत्री की भगवद्भक्ति देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। तब से आण्डाल को 'धृतमुक्तमाला नायिका' या 'शुडिक्कोडुत नाच्चियार' कहा जाने लगा।

गोदा निरंतर भगवान के चिंतन में निमग्न रहतीं और सदैव श्री रंगनाथ की उपस्थिति का अनुभव करतीं। वह स्वयं को प्रभु की जन्म-जन्म की दासी मानकर

रात-दिन उन्हीं के ध्यान में रहतीं। अपने आप को गोपी मानकर गोपियों की तरह उसने व्रतों का पालन किया। धीरे-धीरे वह अपने प्रियतम के वियोग के दु:ख एवं मिलन के सुख को तरह-तरह से व्यक्त करने लगी। प्रेम में उन्माद होकर कभी वह हंसती तो कभी विरह के दु:ख में तड़पती हुई रोती रहती। प्रियतम के बिना उससे पल भर भी नहीं रहा जाता। प्रभु के प्रेम में उन्मत्त गोदा के मन में श्रीकृष्ण के रूप, गुण तथा लीलाओं को प्रतिच्छवियां इतनी गहरी पड़ गई कि वह व्रजेन्द्रनंदन श्री श्यामसुंदर की लीलाओं का आंतरिक अनुभव करने लगी। उसका मन सदैव श्रीकृष्ण के साथ किसी कुंज-निकुंज में विहरण करता रहता।

कभी वह श्रीकृष्ण के साथ रास लीला करती, कभी चीर हरण की लीला होती, कभी बंसी बजाकर वह उनके चित्त को चुरा लेते हैं। वह जोर-जोर से रोकर मेघों से प्रार्थना करती कि वे उसे श्रीकृष्ण से मिला दे। अपने संरक्षकों से वह यही कहती थी कि 'मेरे ये पीन पयोधर भगवान श्री रंगनाथ के लिए ही उद्भूत है। उसी के लिए उपभोग्य ये स्तन हैं, साधारण मनुष्य के लिए नहीं हैं। किसी मनुष्य द्वारा इनके भोग का प्रस्ताव मात्र सुनकर ही मैं जीवित न रह सकूंगी। मुझे वेंकटाद्रि नाथ से मिला दो।'

"कृष्ण मेरे सामने आकर अपना मानस साक्षात्कार दिखाकर मुझे सता रहा है, अत: यह अपयश फैलने से पूर्व कि माता-पिता के रहते ही यह अपने मार्ग में चली गई, मुझे श्रीकृष्ण से मिला दो।"

भगवान रंगनाथ ने गोदा की भक्ति से आनंदित होकर उसको अपनी प्रियतमा के रूप में स्वीकार किया।

श्री रंगनाथ ने स्वप्न में विष्णुचित को आदेश दिया कि वह गोदा को लेकर मंदिर में उपस्थित हों और गोदा का उनसे विधिवत् प्राणिग्रहण की तैयारी करें। स्वयं आण्डाल ने भी स्वप्न देखा कि धूमधाम से उनका विवाह श्री रंगनाथ से हो रहा है। सब देवतागण पधारे हैं। स्वयं गिरिजा ने गोदा को 'मंगल वस्त्र' पहनाए। वेदपाठी ब्राह्मण मंत्र पढ़ रहे थे और श्री रंगनाथ उसके हाथ पकड़कर अग्नि की परिक्रमा कर रहे हैं।

श्री रंग मंदिर से गोदा को लेने के लिए पालकी, छत्र, चामर, गाजे-बाजे के साथ पुजारी आए। पेरियालवार अपनी पुत्री को श्री रंग-क्षेत्र में ले गए। गर्भ-गृह में प्रवेश करते ही गोदा श्री रंगनाथ की प्रतिमा में विलीन हो गई।

तब से गोदा 'आण्डाल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। आण्डाल शब्द का अर्थ 'जिसने भगवान को प्राप्त किया'; ऐसा होता है।

गोदा देवी के भगवान में विलीन हो जाने के उपरांत पेरियालवार अपनी पुत्री के वियोग में गदगद होकर कह उठे -

"मैंने अपनी इकलौती पुत्री को लक्ष्मी के सदृश पाला-पोसा, और उसे रक्त नैत्री श्री रंगनाथ ने मुझसे छीन लिया।"

*****

श्री हनुमान जी—

श्री हनुमान जी महाराज भगवान की दास्य भक्ति के आचार्य हैं। वे स्वयं अपने विषय में कहते हैं - 'दासोऽहं कौसलेन्द्रस्य' अर्थात् 'मैं कोसलेन्द्र श्रीरामचंद्र जी का दास हूं।' हनुमान जी के प्रागट्य के संबंध में यह कथा प्रसिद्ध है कि अपने स्वामी श्रीराम की सेवा करने के लिए स्वयं भगवान शंकर वानर रूप में अवतरित हुए थे। गोस्वामी जी दोहावली में कह रहे हैं -

जेहि शरीर रति राम सो सोई आदरहि सुजान।
रुद्र देह तजि नेहबस बानर भे हनुमान।।

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरूखा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान।।

अर्थात् सज्जन उसी शरीर का आदर करते हैं, जिसे श्रीराम से प्रेम हो। इसी प्रेम के वश रुद्रदेह को त्याग कर हनुमान जी ने वानर का शरीर धारण किया। इसी प्रकार श्रीराम जी की सेवा का आनंद अपने मन में जानकर ही ब्रह्माजी, जामवंत और शंकर जी, हनुमान के रूप में अवतरित हुए।

चैत्र शुक्ला 15,मंगलवार के दिन अंजना के गर्भ से भगवान शंकर ने वानर रूप में अवतार ग्रहण किया। अंजना और केसरी के आनंद की सीमा न रही।

दोनों पति-पत्नी बालक का लालन-पालन बड़े मनोयोग से करने लगे। धीरे-धीरे बालक बड़ा हुआ, एक दिन बच्चे को घर पर छोड़कर अंजना कहीं फल लाने चली गई। बालक को भूख लगी हुई थी, उसने इधर-उधर देखा, पर उसे कोई चीज नहीं मिली। इतने में उनकी दृष्टि सूर्य पर पड़ी, प्रातःकाल का सूर्य देखकर उनको लगा, ये बड़ा सुंदर लाल-लाल फल है। ऐसा सोचकर उसने सूर्य की तरफ पहुंचने की चेष्टा की, यह बालक आकाश में उड़ने लगा, क्योंकि वायु ने पहले ही उन्हें उड़ने की शक्ति प्रदान कर दी थी।

बालक आकाश में उड़ने लगा। देवता, दानव, यक्ष आदि उसे देखकर विस्मित रह गए। सूर्य की तप्त किरणें हनुमान जी के शरीर पर पड़ती थीं, परन्तु फिर भी वे आकाश की छाती को चीरते हुए बढ़ते गए। इन्द्र ने क्रोधित होकर इन पर अपने वज्र का प्रहार किया, जिससे उनकी बांयी हनु (ठुड्डी) टूट गई, तब से वे हनुमान कहलाए। सभी अन्य देवताओं ने भी उनको आर्शीवाद एवं वरदान दिए।

वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। वे आंजनेय, महावीर तथा मारुति के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। हनुमान जी सात चिरंजीवियों में से एक हैं एवं ब्रह्मचर्य के साकार रूप हैं, तथा ज्ञानीनामअग्रगण्यम् है, अर्थात् ज्ञानियों में शिरोमणि हैं। बाल्यावस्था में वे बड़े नटखट थे, वे ऋषि-मुनियों को बड़ा तंग करते थे, इसलिए ऋषियों ने उनको शाप दिया कि 'तुम अपने बल को भूल जाओ', जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्ति की याद दिलाएगा, तब तुम अपने बल का स्मरण करके पुनः ऐसे ही हो जाओगे।

श्रीराम जी ने सीता अन्वेषण के लिए सब वानरों को अलग-अलग दिशाओं में भेजा, तब दक्षिण दिशा में ढूंढ़ने का काम बड़ा ही महत्वपूर्ण था, इसलिए यह काम मुख्य वानरों को सौंपा गया। हनुमान जी को ही उन वानरों में से सीता जी की खोज के लिए अपना दूत चुना और अपनी मुद्रिका उन्हें दी। समुद्र लांघ कर लंका पहुंचना सभी वानरों के लिए एक बड़ी समस्या थी। जामवंत जी की प्रेरणा से हनुमान जी लंका यात्रा के लिए कटिबद्ध हुए, उन्होंने सभी वानरों में आशा एवं साहस का संचार करते हुए ये वचन कहे "मैं वायु पुत्र हूं, जो पर्वतों को ध्वस्त कर देता है। मैं मेरू पर्वत की सहस्त्र बार परिक्रमा कर सकता हूं, मैं समुद्र को सोख सकता हूं, समुद्र को उलीच सकता हूं, मैं पर्वतों को ध्वस्त कर सकता हूं, तथा सूर्य

और चंद्रमा का अतिक्रमण कर सकता हूँ। इस प्रकार से सिंहवत् गर्जना करते हुए समुद्र को लांघ कर हनुमान जी लंका में पधारे। रास्ते में नाग माता- सुरसा ने उनके बल, वीर्य, कौशल तथा ज्ञान की परीक्षा ली। हनुमान उस परीक्षा में सफल हुए।

लंका में जाकर सीताजी को उन्होंने राम जी की मुद्रिका दी और सीता जी का शोक दूर दिया। सीताजी, हनुमान से बहुत प्रसन्न हुई और यह आर्शीवाद दिया कि तुम बड़े बलवान, शीलवान, अजर-अमर और गुणी होओ। भगवान सदा तुम पर स्नेह रखें। अष्ट सिद्धि और नव निधि सदा तुम्हारे पास रहे। (इसी से हनुमान जी के पास अणिमा, लघिमा, गरिमा आदि सिद्धियां थी।)

यह सुनकर हनुमान जी प्रसन्न हुए और आज्ञा लेकर लंका दहन करके उनका संदेशा लेकर श्रीरामजी के पास लौट आए। उन्होंने सीताजी द्वारा दी गई चूड़ामणि श्रीराम को प्रदान की।

व्यक्ति के शरीर में प्राणों का संचरण हनुमान जी की कृपा से ही होता है। नाभि से लेकर नाक तक श्वासोच्छवास की क्रिया वायु के रूप में हनुमान जी की प्रेरणा से होती है। शरीर में पांच प्रकार के प्राण हैं- प्राण, अपान, उदान, प्यान और समान। ये विभिन्न शारीरिक कार्यों को नियंत्रित करते हैं।

हनुमान जी ने रामायण में विशेषतः पांच व्यक्तियों के प्राणों की रक्षा की।

सुग्रीव - सुग्रीव को लक्ष्मण जी के क्रोध से बचाकर उनके प्राणों की रक्षा की।

सीता - सीताजी को भगवान की मुद्रिका देकर उनके शोक को दूर किया और सांत्वना देकर प्राणों की रक्षा की।

लक्ष्मण - मेघनाद के शक्ति अस्त्र लगने से लक्ष्मण को मूर्छा आ गई और प्राण संकट में आ गई, तब द्रोणाचल पर्वत सहित संजीवनी औषधि लाकर उनकी प्राण रक्षा की।

विभीषण - रावण का भाई जानकर सभी वानर विभीषण को बंदी बना कर रखने की सलाह दे रहे थे, तभी उनकी भगवान से भेंट करा कर उनकी शरणागति करवा दी, और प्राण रक्षा करके अभय करवा दिया।

भरत – वनवास की अवधि पूरा होने में एक दिन ही शेष रह गया था, तब प्रभु की आज्ञा से कि कहीं भरत के प्राणों पर संकट न आ जाए, हनुमान जी ने ब्राह्मण वेश में आकर उनको शुभ संदेश सुनाया और इस तरह उनके प्राणों की रक्षा की।

हनुमान जी के जीवन में यह विशेषता है कि जो भी उनके सम्पर्क में आया, उन्होंने किसी न किसी प्रकार उसे भगवान के सानिध्य में पहुंचा ही दिया, क्योंकि हनुमान जी भगवान के अद्वितीय भक्त हैं। भगवान राम जब लीला संवरण करके परम धाम जा रहे थे, तब हनुमान जी भगवान के साथ उनके धाम में नही गए। जब पूछा तो हनुमान जी ने कहा, प्रभु आपके धाम में आपकी कथा सुनने को मिलेगी? प्रभु ने कहा, कथा तो यहां मृत्युलोक में ही है, वहां कथा नहीं होती। तो हनुमान जी ने कहा, कि जहां आपकी लीला कथा का गायन श्रवण होता है, मुझे उसी लोक में रहना है। भगवान के परम धाम पधारने के पश्चात् हनुमान का एकमात्र काम रहा, भगवान के नाम लीला और गुणों का कीर्तन एवं श्रवण। आज भी जहां-जहां भगवान की कथा होती है, वहां हनुमान जी उपस्थित रहते हैं।

यत्र यत्र रघुनाथ कीर्तनं, तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिम्।
बास्पवारि परिपूर्णलोचनं, मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्।।

"जहां-जहां भगवान राम का कीर्तन होता है, वहां-वहां हनुमान जी मस्तक झुकाकर, आंखों में आंसू भर कर उपस्थित होते हैं, हनुमान जी राक्षसों का संहार करने वाले हैं।"

निरंतर राम नाम का जप करते रहते हैं, उनके रोम-रोम में राम नाम समाया है। श्रीराम जी सदा अपनी प्रिया जानकी समेत हनुमान जी के हृदय आगार में निवास करते हैं। भगवननाम के प्रभाव से उन्होंने प्रभु को अपने अधीन कर दिया है। 'सुमिरि पवनसुत मंगल नामु, अपने बस करी राखे रामु"

आज भी हनुमान जी हमारे बीच में ही हैं, केवल हम उनको पहचानते नहीं हैं। तुलसीदास जी आदि महात्माओं ने इसी युग में हनुमान जी का साक्षात्कार किया है।

*****

चतुर्थ खण्ड

प्रश्नोत्तरी

साधकों द्वारा ब्रह्मचर्य विषयक पूछे गए महत्वपूर्ण प्रश्नों पर
श्रीहित प्रेमानंद गोविंद शरण जी महाराज के उत्तर

प्रश्न-सूची

प्रश्न- हस्तमैथुन कैसे छोड़ें ?

महाराज जी - सबसे पहले आपको यह समझना होगा कि जो क्रिया आप कर रहे हैं, वह स्वार्थ और परमार्थ दोनों के लिए गलत है। इसके परिणाम आप स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि आपको कितनी परेशानी हो रही है। इसलिए सबसे पहला कदम है - दृढ़ निश्चय करना, कसम खाना कि- *'मैं किसी भी परिस्थिति में इस गंदी क्रिया को नहीं करूँगा।'* क्योंकि किसी भी ऐसी क्रिया से ब्रह्मचर्य का नाश होना-शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक होता है।

दूसरा उपाय - उन सब बातों से दूरी बनाइए जो आपको इस क्रिया के लिए प्रेरित करें - गंदे दृश्य, गलत संगति अर्थात् विषयी पुरुषों का संग।

तीसरा उपाय - आपका भोजन शुद्ध और सात्विक होना चाहिए। मांस, अधिक मिर्च-मसाले और अशुद्ध आहार से अवश्य बचें। अन्यथा आप इस बुराई से नहीं निकल पाएंगे। साथ ही किसी अच्छे आयुर्वेदाचार्य से मिलकर धातु-पुष्टिक औषधि लीजिए और संयमपूर्वक रहिये। इस तरह कई महीनों तक अभ्यास कीजिये।

प्रारंभिक समय में, अभ्यास करते हुए भी कभी-कभी स्वप्नदोष या बिना चेष्टा के वीर्यपात हो सकता है। इससे घबराना नहीं है। यदि आप संयम और धैर्य रखेंगे तो धीरे-धीरे स्थिति सुधर जाएगी। यदि संयम नहीं रखा तो इससे आपका मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जाएगा।

यह जो आप कह रहे हैं कि आपको बहुत चिंताएं परेशान कर रही हैं, वह इसलिए है क्योंकि आपकी वह धातु जो आपको पुष्ट करने वाली है, वो नष्ट हो चुकी है। जो हमें बहुत सी चिंताओं से हमें मुक्त करती है-उसे *मेधा शक्ति* (विचार शक्ति) कहते हैं। यदि मेधा शक्ति बलवान हो तो वह एक मिनिट में सारी चिंताओं को काटकर मन को शीतल कर देती है; किन्तु अब आपकी मेधा शक्ति बलवान है नहीं, तो सब चिंताएं आपको बार-बार क्लेश पैदा करती हैं।

जो लोग ब्रह्मचर्य का नाश करते रहते हैं, उनकी मेधा शक्ति क्षीण हो जाती है, स्मरण शक्ति घटती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, थोड़ी सी बात पर उन्हें

क्रोध आ जाता है और बुद्धि में गहराई से सोचने की क्षमता नष्ट होने लगती है यानी दिमाग में ज्यादा बल लगाने की सामर्थ्य नहीं रह जाती। बार-बार कोई उनसे प्रश्नोत्तर करे तो वे एकदम गुस्सा हो जाते हैं। इसलिए बहुत सावधान हो जाने की आवश्यकता है।

यद्यपि इस विषय पर प्रायः चर्चा गुप्त रूप से की जाती है, पर हम इसलिए थोड़ा खुलकर इस पर बोल रहे हैं क्योंकि आज जो नई पीढ़ी है उसमें ज्यादातर सभी इस रोग से पीड़ित हैं।

सोचो, नन्हे बच्चे, जो मात्र १२ वर्ष के होते हैं, जब इस गंदी आदत (हस्तमैथुन) में पड़ते हैं, तो २२ वर्ष की उम्र तक उनकी स्थिति बहुत खराब हो जाती है। इसके विपरीत जब कोई युवक २५ वर्ष की उम्र तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है और फिर वह गृहस्थी में भी जाता है तो गृहस्थ जीवन उसे हानि नहीं पहुँचा पाता; क्योंकि तब तक उसकी सप्तम धातु पुष्ट होकर परिपक्व हो चुकी होती है। अब उसे जो संतान होगी, वह उत्तम संतान होगी और वह स्वयं धैर्यवान होगा। उसका दिमाग ठीक से काम करेगा और अच्छे से वह सोच पायेगा कि हमें संयम से रहना है।

इसलिए इस अत्यंत हानिकारक गंदी क्रिया को आज से ही बंद करके संयम और शुद्ध आहार के साथ-साथ व्यायाम और प्राणायाम को जीवन में अनिवार्य रूप से शामिल कीजिए। शरीर को श्रम से थकाइए, इससे भी ब्रह्मचर्य पालन में मदद मिलती है। गंदी फ़िल्में, चित्र और ऐसे मित्रों का संग छोड़ दीजिए जिनसे बुरी प्रेरणा मिलती है। आप थोड़ा उत्साहित होइए; क्योंकि निरुत्साहित व्यक्ति स्वार्थ या परमार्थ किसी भी मार्ग में आगे नहीं बढ़ पाता है। अतः उत्साह सम्पन्न बनिए। आप पुनः वैसे ही ठीक हो जाएंगे, आपकी मानसिकता भी बिल्कुल ठीक हो जाएगी।

ध्यान रहे, दवाइयाँ केवल सहायक हैं। वास्तविक समाधान संयम और दृढ़ता से ही होगा। इसमें कुछ समय लगता है जैसे छह माह या एक वर्ष; अतः धैर्य रखना होगा, उत्साहित रहकर नाम जप जरूर करना होगा। यह नाम जप अगर नहीं होगा, तो कोई लाभ नहीं दिखेगा। ठीक होने के लिए सबसे आवश्यक है- गलत

चिंतन बदलना। यदि आपका चिंतन नहीं ठीक हुआ तो दवाइयाँ लेकर भी कुछ ज्यादा असर नहीं पड़ेगा। लेकिन यदि आप नाम-जप को जीवन का आधार बना लेंगे तो सफलता निश्चित है।

जैसे आप बहुत बढ़िया दवाइयाँ ले रहे हैं, प्राणायम-व्यायाम भी नित्य कर रहे हैं, उचित सात्विक भोजन भी पा रहे हैं, कुसंग भी नहीं कर रहे हैं, स्वयं से वीर्यनाश की क्रिया भी नहीं कर रहे हैं, परन्तु आपका चिंतन यदि गलत बना हुआ है- वही गंदा चिंतन है तो फिर ब्रह्मचर्य रोक पाना कठिन हो जाएगा। ब्रह्मचर्य रोकने के लिए आवश्यक मुख्य बात है कि हमारा चिंतन बदले। इसलिए नित्य नियम से थोड़ा नाम जप करें। जो भी नाम आपको प्रिय लगे; जैसे- राम, कृष्ण, नारायण, हरि या राधा आदि। उसको प्रतिदिन जपने का १०-२० मिनट अभ्यास कीजिये, यही मन को शुद्ध करेगा, चिंतन को बदल देगा और ब्रह्मचर्य पालन में वास्तविक बल प्रदान करेगा।

यदि बीच-बीच में बिना किसी क्रिया के स्वाभाविक रूप से धातुपात हो भी जाए तो चिंता न करें। बस, स्वयं से गलत क्रिया मत कीजिए, संयम रखिए। धीरे-धीरे एक दिन सब ठीक हो जाएगा।

प्रश्न- हम तो ब्रह्मचर्य रहना चाहते हैं, पर जीवनसाथी को कैसे समझाएं ?

महाराज जी - इस स्थिति में सबसे पहले आवश्यकता है कि आप अपने जीवनसाथी को प्यार से अपने अनुकूल बनाइए। ऐसा न हो कि आप हठपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण कर लें और वे व्यभिचार प्रवृत्ति में उतर जाएँ। यह उचित नहीं होगा।

आपने जब सद्गृहस्थी का आश्रय लिया है, तो शास्त्र-सिद्धांत के अनुसार शरीर से निरपेक्ष होकर समागम कीजिए और धीरे-धीरे उन्हें अपने अनुकूल कीजिए। उनके मन में यह भाव बैठाइए कि यह क्रिया ही जीवन का परम सुख नहीं है। इससे ऊपर भी कोई सुख है।

यदि संतान उत्पत्ति की आवश्यकता है तो वह निंदनीय नहीं है। संतान उत्पन्न करना भगवान की पूजा है, क्योंकि सृष्टि के क्रम को आगे बढ़ाना उसी का कार्य है। परंतु जब संतानोत्पत्ति पूरी हो चुकी है और फिर भी केवल कामासक्त होकर उसमें प्रवृत्त रहना ठीक नहीं। इसलिए दोनों को मिलकर समझौता करना चाहिए।

शास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार अपने मन को शांत करने का प्रयास करें; और यदि कभी आप इस सिद्धांत से असफल हो जाएँ तो अपराध नहीं लगता, क्योंकि आप गृहस्थ हैं। फिर भी सावधानीपूर्वक, धीरे-धीरे जीवनसाथी को अनुकूल बनाना आवश्यक है।

हाँ, यदि कभी ऐसी स्थिति आ जाए कि जीवनसाथी एकदम भजन-विमुख होकर अधर्माचरण करने लगे और आपको भी बाधा पहुँचाए, तब प्रभु से प्रार्थना कीजिए- *"हे नाथ! यह सब आपका कार्य है। आप ही जीवनसाथी के रूप में हैं। मैं आपके भजन, आपके चिंतन और आपके चरणारविंद को नहीं छोड़ सकता। अब जो उचित हो, आप ही कीजिए।"* आगे का मार्ग प्रभु स्वयं बनाते हैं।

फिर भी अभी के लिए प्रयास यही हो कि प्रेमपूर्वक जीवनसाथी को सहयोगी बनाइए। एक नियम और सीमा निश्चित कीजिए, जिसमें दोनों सहमत होकर रह सकें। प्रेम से सब संभव है। प्रेम की शक्ति से दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति भी महात्मा बन सकता है। हां, कुछ समय तक वह आपके अनुकूल नहीं चलेगा, आपको उसके अनुकूल चलना पड़ेगा। जैसे कितने जीव यहाँ आते हैं जो बिल्कुल परमार्थ लायक नहीं, बिल्कुल घोर विषयी हैं, लेकिन उनको प्यार करके, दुलार करके, अवसर आने पर कभी उनको डांटकर के सत्मार्ग पर लगाया जाता है। इन तीनों प्रकार की दवाओं की आवश्यकता पड़ती है। जब कभी डांट का अवसर होता है तो कड़वी से कड़वी डांट, फिर तत्काल इतना प्यार कि वह बेचारा विवश हो जाए यह सोचने पर कि 'यह मेरे हैं', और इसी मेरे पन में उसे ऊँचा उठाया जा सकता है।

यदि आप प्यार से अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त होकर अपने जीवनसाथी को समझाकर कहेंगे- कि देखो, *"हम दोनों मित्र हैं। मैं आपका विरोध नहीं करता। यदि आप कहें तो हर बात के लिए तैयार हूँ। पर थोड़ा विचार कीजिए, क्या जीवन*

का सार यही विषय-भोग है?" तो निश्चित वे आपके अनुकूल हो सकते हैं। इस प्रकार उनको अनुकूल करने का आप प्रयत्न कर सकते हैं।

यदि आप आवेश में आकर उनके प्रतिकूल बर्ताव करेंगे तो आपके जीवनसाथी के हृदय में नकारात्मक भाव आ सकता है, स्थिति बिगड़ सकती है और ऐसी स्थिति जीव को और पतन की ओर ले जा सकती है। इसलिए आपको भी उनके प्रतिकूल नहीं चलना चाहिए।

गृहस्थ के लिए सहवास कोई अपराध नहीं है। विरक्त यदि ऐसा करे तो वह घोर अपराध है, पर गृहस्थी में यह सर्वथा निषिद्ध नहीं है।

आप स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि आप जितना ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, उतना ही प्रभु के चिंतन में आनंद मिलता है, भजन/साधन में मन लगता है। यह परम सत्य है। ब्रह्मचर्य क्षीण होते ही साधन-भजन के प्रति उत्साह घट जाता है।

इसलिए यदि दोनों की रुचि हो तो दोनों ब्रह्मचर्य से रहें। यदि एक की रुचि न हो तो दूसरा सहयोग दे; ताकि वह कहीं लड़खड़ा कर पतित न हो जाए। अगर पति-पत्नी दो मिलते हैं, दोनों मित्र बनते हैं तो एक-दूसरे की रुचि का आदर और परस्पर सहयोग करें। तभी जीवन-यात्रा ठीक चलेगी।

ऐसे नहीं चलेगा कि आप ब्रह्मचारी बनकर के बैठो और आपका जीवनसाथी व्यभिचार में प्रवृत्त हो जाए। ऐसी स्थिति में आपका ब्रह्मचारी बनकर रहना इतना महान नहीं होगा, जितना आपके जीवनसाथी की भावना का आदर करके उसका सहयोग करना होगा।

याद रखिए – प्रेम से भगवान को भी वश में किया जा सकता है, तो जीव की क्या बात है? परंतु इसके लिए धैर्य की आवश्यकता है। धीरे-धीरे, समय लेकर, प्रेमपूर्वक जीवनसाथी को अनुकूल बनाइए।

प्रश्न–हम चाहते हैं कि हमारी संतान के रूप में एक भक्त पैदा हो, उसके लिए क्या करना पड़ेगा ?

महाराज जी – आपको स्वयं भगवान् की आराधना करनी पड़ेगी। जब तक माता-पिता भक्त नहीं होंगे, भगवान के चिंतन परायण नहीं होंगे, सतोगुणी नहीं होंगे, तब तक भक्त संतान कैसे हो सकती है? यह तो बड़े भाग्य होते हैं, जब पुत्र भगवान का भक्त होता है–

"कुलं पवित्रं जननीकृतार्था वसुंधरा पुण्यवती च येन।"

वह भूमि पावन हो जाती है, वह कुल पावन हो जाता है, वह मां जय-जयकार करने योग्य हो जाती है– जिसका पुत्र भगवान का भक्त पैदा हो।

अर्थात् वो माता-पिता धन्य, वो कुल धन्य, वो देश धन्य, वो गांव धन्य, जिसमें भगवान का अनुरागी भक्त हुआ हो।

इसलिए कुछ नियमों का पालन यदि आप करें और भगवान का भजन करें तो भक्त संतान होने की संभावना है, वह भी भगवान की कृपा से। पहली बात तो जिस दिन से गर्भ आ जाए, उस दिन से पति और पत्नी दोनों ब्रह्मचर्य से रहें, सात्विक भोजन पावें, तीर्थों का अवगाहन करें, धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय या श्रवण करें, नाम जप करें और भगवान से बारम्बार भक्त संतान होने की प्रार्थना करें; तो जरूर भगवान का भक्त गर्भ से प्रकट हो सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

संसार का त्याग करके, रात-दिन भगवान में चित्त जोड़ना ये बहुत बड़ी बात है। इसलिए भगवान से प्रार्थना करें और संयम से चलें, नाम जप करें तो वही संस्कार गर्भस्थ शिशु में पड़ेंगे, इससे जरूर वह भगवान का भक्त या देश भक्त पैदा होगा और माता-पिता का जीवन कृतार्थ हो जायेगा।

अतएव जैसे परमाणु हम अपने परिवार को देते हैं, वैसा ही हमारा परिवार बन जाता है। संतान किस प्रकार के स्वभाव (उद्दण्ड या सौम्य) से युक्त होगी, इसमें माता-पिता द्वारा दिए संस्कारों का विशेष योगदान होता है। अब कोई दम्पति गंदे आचरण कर रहे हों-गर्भ में शिशु है और उल्टा-सीधा खा रहे हों, उल्टी-सीधी

बातों का श्रवण-मनन कर रहे हों तो वही संस्कार गर्भस्थ शिशु पर पड़ते हैं। जब बच्चा थोड़ा सयाना होता है और उसका पिता उससे ही बीड़ी मंगा रहा हो, उसके सामने शराब पी रहा हो, तो संतान में भी वही संस्कार पड़ते हैं।

अगर माता-पिता अपने पुत्र को भगवद् भक्त बनाना चाहते हैं तो गर्भाधान से ही सावधानी रखनी पड़ेगी। ज्योंहि बालक गर्भ में आ जाये, तब से पति-पत्नी को पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए; किन्तु आज के समय में कौन माता-पिता ऐसे हैं जो इसका पालन करते हों? कोई विरले संयमी ऐसे होंगे जो ऐसा सोचते होंगे कि अब हमें एक वर्ष ब्रह्मचर्य से रहना है। बहुत कठिन बातें हैं ये। तभी तो आज की संतानें देखो- सब कामुक प्रवृत्ति की, मन में मलिनता लिए हुए अपने माता-पिता का भी अपमान करने वाली, समाज में द्रोह पैदा करने वाली, समाज में हानि पैदा करने वाली उत्पन्न होती हैं; इसलिए बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

प्रश्न- स्वप्नदोष हो जाता है, क्या करें?

महाराज जी - लोगों के आचरण कुछ गलत हो जाते हैं, जिन आचरणों के कारण वह अपनी दिनचर्या को नहीं संभाल पाते। गलत संग, गलत भोजन, गलत चिंतन आदि ऐसे कई कारणों से वे इस दोष से युक्त हो जाते हैं। किसी क्रिया का बार-बार अभ्यास करने पर वह स्वभाव बन जाती है। ऐसे ही आपका अभ्यास हो गया धातु क्षीण करने का; अब यदि आप वह क्रिया बंद भी कर दोगे तो भी वीर्य क्षीण हो जाएगा। क्योंकि उसका अभ्यास बन चुका है निकलने का। इसके अलावा रजोगुणी-तमोगुणी भोजन जैसे- ज्यादा खट्टा, अधिक मीठा, मसालेदार पाने से कब्ज बन जाए तो उससे भी वीर्य नष्ट हो जाता है। यदि स्वप्न में गलत चिंतन हो जाए तो भी स्वप्नदोष हो जाता है।

अब अगर साधक स्वप्नदोष से बचना चाहता है तो सर्वप्रथम उसे भगवान की शरण होना होगा, जिससे उसका अंतःकरण जो मलिन चिंतन से युक्त है, उसका सुधार होगा। चिंतन बदले बिना आप इसे रोक नहीं सकते। आपका भोजन शुद्ध

हो, पेट साफ हो, आप नियमित व्यायाम भी करते हों, गलत क्रिया भी नहीं करते हों, लेकिन यदि गलत गाढ़ चिंतन हो गया तो आप धातु रहित हो जाएंगे।

इसलिए प्रभु की शरण में होकर नाम जप करें, सत् शास्त्रों का स्वाध्याय करें, सात्विक भोजन करें और शरीर को खूब थकाएं। प्रातः काल उठकर एक घंटा यदि व्यायाम करो तो आप देखोगे धातु क्षरण में अंतराय होता चला जाएगा।

आपने छोटी अवस्था से ही गलत क्रियाएं की हैं हस्तमैथुन आदि; इसलिए अब आपको संभलना बहुत कठिन हो रहा है। लेकिन फिर भी संभलने का उपाय है- अपने चिंतन को सही करो और किसी अच्छे वैद्य की सलाह से धातु पुष्टता की औषधि लो; और साथ में व्यायाम, भोजन सुधार, संग सुधार, शास्त्र स्वाध्याय और नाम जप करो तो सुधार हो सकता है। किन्तु यदि औषधियां लेते रहोगे और विचार शुद्ध नहीं करोगे, तो बात नहीं बनेगी। औषधि उतना प्रभाव नहीं कर पाएगी।

प्रश्न-पति-पत्नी दोनों ब्रह्मचर्य से रहना चाहते हैं, ये सही है ?

महाराज जी - बहुत सुंदर !हम आपकी इस भावना को हृदय से प्रणाम करते हैं। आप निश्चय ही ठाकुर जी के कृपा-पात्र हैं। स्वाप्निक विषय-भोगों में फँसना मनुष्य का कोई कर्तव्य नहीं है। जो संयम से नहीं रह पाते, उनके लिए शास्त्रीय सिद्धांत है कि महीने में एक बार जब स्त्री मासिक धर्म से निवृत्त होकर एक सप्ताह बाद पवित्र होती है तब अपने गृहस्थ धर्म का वे सेवन कर सकते हैं। वह भी जब उन्हें संतान प्राप्ति की इच्छा हो तब। नहीं तो वास्तविक बात तो यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भगवत् आराधना करके यह जन्म सुधार लेना चाहिए।

ये सब विषय-भोग तो सुअर, कुत्ता, गधा, कौआ, कबूतर, बंदर आदि अन्य योनियों में भी उपलब्ध हैं। किन्तु मनुष्य जीवन का उद्देश्य इनसे अलग और श्रेष्ठ है। शास्त्र कहता है- **"स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे"** अर्थात् मनुष्य का परम धर्म यही है कि उसका चित्त भगवान श्री हरि के चरणों में समर्पित हो

जाए और उनके चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाय। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण आदेश करते हैं- **"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"** अर्थात् सारे धर्मों का त्याग करके केवल मेरे चरणों का आश्रय लो।

हम तो हृदय से प्रणाम करते हैं उन सद् गृहस्थों को, जो गृहस्थ होकर भी एक संत की तरह जीवन यापन करते हैं। आप दोनों ने यह जो ब्रह्मचर्य से रहने का विचार किया है, यह बहुत सही है। आप सुखपूर्वक भगवत् मार्ग में आगे चलो, चिंता करने की कोई बात नहीं।

प्रश्न-ब्रह्मचर्य जीवन जीना चाहता हूं, पर विषयों का आकर्षण है। ऐसे में मुझे विवाह करना चाहिए या नहीं?

महाराज जी – आपको विषयों का आकर्षण है तो आपको गृहस्थाश्रम में जाना चाहिए। और यदि ब्रह्मचर्य जीवन निर्वाह करना हो तो फिर विरक्त वेष लेना चाहिए। दो ही मार्ग हैं- प्रवृति या निवृति। या तो विवाह करके गृहस्थी में रहकर फिर पत्नी को अनुकूल बनाकर के ब्रह्मचर्य पर चलें या फिर विरक्त होकर संपूर्ण जीवन प्रभु को समर्पित करके आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करें। यदि प्रवृत्ति मार्ग में हैं और विवाह नहीं किया तो ब्रह्मचर्य धारण करना बहुत कठिन हो जाएगा; क्योंकि जैसे वातावरण में हम-आप रहते हैं, उसमें बार-बार जो दृश्य हम देखते हैं वो हमारे ऊपर प्रभाव डालता है। यदि विवाह करके गृहस्थी में हैं तो प्रभाव पड़ा तो भी वह आपको धर्म भ्रष्ट नहीं कर सकता।

इसलिए यदि विषयभोग की थोड़ी भी गुंजाइश आपके मन में हो तो आपको विवाह करके एक सद्गृहस्थ बनकर चलना चाहिए। परन्तु अगर ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब मुझे यह विषय-प्रपंच बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होता और विषय-भोगों को भोगने की कोई गुंजाइश नहीं, तो फिर निवृति मार्ग का पथिक बनकर भगवत् मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए।

प्रश्न– ब्रह्मचर्य नाश के कारण ना गृहस्थी ना विरक्ति लायक रह गया हूं, अब क्या करूं ?

महाराज जी – गृहस्थाश्रम में शास्त्र विधान से संतान उत्पत्ति की क्रिया को भगवान की सृष्टिजनक पूजा माना गया है। लेकिन जो केवल खिलवाड़ में मनोरंजन समझकर वीर्य का नाश करते हैं, वह उनका सर्वनाश कर देगा। यदि २० वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके फिर विवाह करके स्त्री सहवास किया जाए तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। अगर शास्त्र मर्यादा से चलोगे तो कुछ बरसों के बाद उसे इन विषयों से वैराग्य हो जाएगा और वह एक सच्चा महात्मा बन सकता है। उसकी संतान भी बलिष्ठ, ज्ञानी और सर्वांग पुष्ट होगी। किन्तु आज के समय में कोई ब्रह्मचर्य का महत्व ही नहीं समझना चाहता। जैसे खिलवाड़ में दाद को खुजलाने से प्रारंभ में थोड़ा सुख मिलता प्रतीत होता है, ठीक ऐसे ही क्षणिक अज्ञानजनित सुख के लिए लोग वीर्यपात जैसी भयानक क्रिया में उतर रहे हैं।

आश्चर्य की बात तो यह है कि उन लोगों को सलाह देने वाले कुछ डॉक्टर्स और दोस्त भी ऐसे हैं, जो उनको बोलते हैं कि कामवासना के वेग को रोकना नहीं चाहिए और इस तरह वे हस्तमैथुन को काम को शांत करने का बढ़िया उपाय समझकर उसमें प्रवृत्त हो जाते हैं। यह कितनी बुरी बात है। इस तरह से समाज का उत्थान कैसे होगा? ये हमारे समाज की बहुत बड़ी हानि है। अब जिन बच्चों में ये प्रवृत्ति बन गई है तो वे आगे चलकर गृहस्थ में जाने के बाद भी अपनी एक पत्नी या एक पति से कभी संतुष्ट नहीं रह सकते और इस तरह वे व्यभिचार प्रवृत्ति में उतरते चले जाते हैं।

आपने स्वयं अपना नाश कर लिया, किन्तु अभी भी आप सुधरना चाहो तो सुधार हो सकता है। अभ्यास नाम की एक चीज होती है। अभ्यास अच्छी क्रिया का भी होता है और गंदी क्रिया का भी। अब जिसने गंदी क्रिया का अभ्यास डाल दिया, तो वह कसम खाने पर भी नहीं रुकने वाला। इसी तरह यदि अब अच्छी क्रियाओं का अभ्यास डालना शुरु किया जाये तो संभल सकते हो– नित्य सत्संग सुनो, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करो, नाम जप करो, इसी से इस बात का धीरे-धीरे

प्रभाव दिखेगा कि चिंतन सुधर जाएगा। बस एक बार चिंतन ठीक होने लगा फिर धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा।

भगवान के नाम के बल से आप सब कुछ कर सकते हैं। कभी अपने मन को निराश मत करो। बार-बार हार जाने पर भी खड़े होकर इस काम को जीतने का प्रयास करो तो एक दिन आपकी जीत होकर रहेगी। इन काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि विकारों की स्वयं कोई सत्ता नहीं है। आप इनको सत्ता देते हो, तभी वह हावी हो जाते हैं; अन्यथा उनमें सामर्थ्य नहीं कि आपको जीत सकें, क्योंकि आप प्रभु के अंश हैं।

इसलिए हमारे साथ भगवान हैं- ऐसा दृढ विश्वास रखकर भगवान का आश्रय लो, भगवान के नाम का जप करो, भगवत् चर्चा सुनो और गंदे आचरण मत करो तो धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा।

प्रश्न- काम वासना बार-बार गिरा देती है, क्या करें?

महाराज जी - जब भी आपके हृदय में काम जागृत हो और आपका हृदय कामना से विकल हो, तब आप तटस्थ भूमिका रखिए और सोचिए कि मेरे में काम नहीं है, मन में कामना जागृत हुई है और यह भोगने से नष्ट नहीं होगी, अपितु सहने से होगी। यदि आपने यह धारणा की कि मैं बहुत जल रहा हूं, किसी क्रिया के द्वारा इस वेग को शांत कर दूं तो यह बहुत बड़ी भूल कर रहे हो। क्योंकि जहां काम का वेग आने पर आपने कोई भी काम संबंधी चेष्टा की, तो काम की पूर्ति से वासना जागृत होगी, फिर भोग तृष्णा जागृत हो जाएगी। इसलिए भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता में काम को बहुत बड़ा शत्रु कहा है। ये बहुत खाने वाला, कभी नहीं अघाने वाला है। इसको नष्ट करने का और कोई उपाय नहीं, केवल सहना ही इसके नष्ट करने का उपाय है-

''मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यः तांस्तितिक्षस्व भारत।।

भगवान आदेश करते हैं कि – 'हे अर्जुन, यह अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुख-दुख आदि जितने भी द्वंद हैं, ये आने-जाने वाले हैं, नित्य नहीं हैं, तू उन्हें सहन कर।'

आप भगवत् मार्ग के पथिक हैं, यदि हृदय कामना से दूषित हो भी जाए तो न आपको किसी से बोलना है कि हमारे अंदर कामना है और न ही काम सम्बंधी कोई चेष्टा करनी है। बस चुपचाप सह जाना है। अगर आप कहीं भी रोकर कह देंगे कि आपके अंदर काम है तो आपने उस असत् वृत्ति को सत्ता दे दी। अब वह काम आपके पीछे पड़ जाएगा, आपको सताएगा और आपको अशांत करके परमार्थ से भ्रष्ट कर देगा। अरे! इन विकारों की कोई सत्ता ही नहीं है। इन काम, क्रोध आदि को केवल भ्रम के कारण आप सत्य माने बैठे हो।

आप जिस मार्ग के पथिक हैं, उसका स्वरूप है सहन करना। जब प्रभु देखेंगे कि मेरा भक्त मेरे लिए कितनी जलन सह रहा है तो निश्चित वे कृपा करेंगे। प्रतिपल वो हमें देख रहे हैं- चाहे हम शास्त्र अनुकूल आचरण करें या शास्त्र विरुद्ध।

आप बहादुर हैं, घबराइये नहीं। जैसे कोई योद्धा अपने देश प्रेम पर न जाने कितने शस्त्रों का प्रहार हंसकर सहन करता है, ऐसे ही यह शूरवीरों का मार्ग है, माया के हजारों वार हों, फिर भी उपासक '**हरिः शरणम्**' कहता हुआ अपने प्रभु को पुकारता हुआ आगे बढ़ता है। इन विकारों को सत्य मानना ही पतन का कारण है। साधक वही है जो विकारके आते ही उसे विवेक से काट दे और नाम जप करे। यदि ऐसे चलोगे तो कुछ देर जलन होगी, फिर वह शांत हो जाएगी। जो जलन आई थी वह अगली बार कम आएगी, फिर इससे भी कम, और फिर एकदम खत्म हो जाएगी।

एक क्षण के लिए भी प्रभु का नाम, उनका स्मरण न छूटे। फिर देखो, कौन सा विकार आपको परास्त करता है। जब आप विकारों को स्वीकार करते हैं, तब काम है; जब प्रभु का, उनके नाम का विस्मरण करते हैं, तब काम है; नहीं तो **'राधावल्लभ लाल कौ हृदय ध्यान मुख नाम'**।

जब आप एकाग्रतापूर्वक सत्संग सुनते हैं तब काम कहां आता है? अर्थात् बिलकुल नहीं आता; क्योंकि उस समय आपका चित्त प्रभु की लीला श्रवण में, प्रभु

के सिद्धांत श्रवण में लगा हुआ है। यही स्थिति आप सत्संग के बाद में भी बनाए रखने का अभ्यास करिए; फिर आपके हृदय में ऐसा आनंद बना रहेगा कि ये सब काम, क्रोध आदि उस आनंद के सामने कोई प्रभाव नहीं दिखा पाएंगे। नाम का ऐसा प्रभाव है कि जो भी व्यक्ति नामजापक के सामने आता है तो वह भी भगवत् चिंतन परायण हो जाता है। इसलिए नाम जप करो और आने-जाने वाले विकारों को सह जाओ, सहने में जो आनंद है, वह भोगने में नहीं।

प्रश्न-हॉस्टल में गंदी फिल्में देखने से 3-4 बार हस्तमैथुन की लत लग गई है, क्या करूं ?

महाराज जी - यह गलत अभ्यास का परिणाम है। जैसे यदि एक सप्ताह में आपने वीर्य के नाश का अभ्यास बना लिया हो तो अब आपकी सामर्थ्य नहीं कि एक सप्ताह के ऊपर आप सह सकें। शरीर में एक मनोवहा नाम की नाड़ी है, जब कोई गंदी बातें देखता-सुनता है, गंदा चिंतन करता है, तो जैसे दूध में विराजमान घी मंथन से निकलता है; ऐसे ही पूरे शरीर में स्थित वीर्य गंदा चिंतन होते ही शरीर को मथ करके बाहर निकल जाता है। यदि आप इसे अभी नहीं संभल सके तो यह कोरोना वायरस से भी खतरनाक रोग है।

इसलिए कई बार हमने बड़ी पीड़ा से युक्त होकर के कहा है कि जो नौजवान लोग इस गंदी आदत में फंसे हैं, उनको बहुत गलत सलाह मिल रही है। तथाकथित कुछ बुद्धि जीवी लोग उनको इस क्रिया के प्रति और प्रेरित करते हुए कहते हैं कि-'यह हस्तमैथुन की क्रिया सामान्य बात है और इससे मन की निराशा कम होती है।' अब जरा विचार कीजिये, यदि यह सामान्य बात है तो नए-नए बच्चों की ऐसी बुरी हालत कैसे हो रही है? अच्छा चिंतन करने की उनकी सामर्थ्य नहीं रह गई है। इतनी नकारात्मक सोच उनके अन्दर आ गई है कि वे जीवन से निराश हो चुके हैं और आत्महत्या करने की तक सोचते हैं। अब जो लोग इस क्रिया को सामान्य कहते हैं- वे स्वयं ही देखें कि कैसे यह नई पीढ़ी बर्बाद हो रही है। नवयुवक निरंतर अपनी जीवनी शक्ति का सर्वनाश कर रहे हैं। यह सामान्य बात

नहीं है। जैसे गेहूं की फसल में अभी बाली नहीं आई और आप काट लो, तो कोई अन्न का दाना आपको प्राप्त नहीं होगा, यहाँ तक की भुस भी तैयार नहीं होगा। ऐसे ही जब तक वीर्य परिपक्व नहीं हुआ और आप गंदे आचरणों में उतर गए तो न गृहस्थी लायक रहोगे न संतान उत्पन्न करने लायक।

इसीलिए अभी संभल जाओ तो बचने की संभावना है, नहीं तो फिर बाद में इसको सुधारना बहुत कठिन है। भगवान का नाम लो, भगवत् चिंतन करो, कोई कुचेष्टा मत करो, आहार पवित्र रखो, व्यायाम-प्राणायाम करो, तो धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा।

प्रश्न - मैंने हस्तमैथुन के कारण महापाप कर दिया, मुझे बचा लो।

महाराज जी - देखो जब व्यक्ति फिसलता है तो उसको यह नहीं दिखता कि अब क्या होगा? फिर उससे सब कुछ हो सकता है; जैसे सीढ़ी से फिसल गए तो हाथ टूट सकता है, पैर टूट सकता है, सिर फूट सकता है, अर्थात् कुछ भी हो सकता है। अब फिसल गए, तो फिसल गए लेकिन अभी कम से कम संभलने का तुम्हें अवसर मिल गया है। विषय-भोगों के चिंतन में लगा हुआ मन ही हमारा संसार में सबसे बड़ा दुश्मन है। जैसे काम ने आपके अंदर अपना अधिकार कर लिया, तो फिर पशु में और आप में अंतर ही क्या रहा? जैसे पशु कोई संबंध नहीं देखता, वैसे काम में मदांध व्यक्ति भी कुछ भी कर सकता है, वो संभल नहीं पाएगा और काम के वश में होकर अपना सर्वनाश कर देगा। इसलिए अब आप पीछे की बात भूल जाओ, उसे बुरा स्वप्न मानकर के दिमाग से निकाल दो; अब आगे कैसे चलना है, उस पर अपना ध्यान केंद्रित करो।

यह बड़े दुःख की बात है कि आज नवीन पीढ़ी बहुत बुरी तरह बर्बाद हो रही है। दुर्भाग्यवश उनको अविवेकी लोगों के द्वारा ऐसी सलाह मिलती है कि - 'अगर तुम्हें निराशा/डिप्रेशन को शांत करना है तो इसके लिए हस्तमैथुन बहुत लाभदायक है।' ऐसी बातों से बच्चे इस गन्दी क्रिया को करने में और भी प्रोत्साहित होते हैं। इसका परिणाम देखो, आपका चेहरा कितने तनाव में है। जो संयम-सदाचरण

से युक्त होता है उसका चेहरा तनाव मुक्त रहता है। ब्रह्मचारी का चेहरा एकदम प्रसन्न होता है। ब्रह्मचारी के शरीर में एक तरह की अद्‌भुत स्फूर्ति होती है।

अभी तो आपकी अवस्था बहुत छोटी है। यह अवस्था ब्रह्मचर्य को क्षीण करने की नहीं है। जो नई अवस्था के बच्चे हैं– उनको तो यह पता ही नहीं कि शरीर में एक मनोवहा नाड़ी है, जैसे दूध में स्थित घी मंथन करके बाहर निकलता है, वैसे ही जब गलत चिंतन या क्रिया होती है तो यह नाड़ी पूरे शरीर को मथकर के सप्तम धातु के रूप में वीर्य शक्ति को निकाल के बाहर कर देती है। बच्चों को तो ऐसा लगता है कि इसमें सुख है; लेकिन इससे कितना भयानक नुकसान हो रहा, यह कोई नहीं समझ रहा। अब आप कह रहे हैं कि– 'इसके चलते मेरे से बहुत बड़ा पाप हो गया।' अब इस प्रकार के विचारों के कारण मन में तनाव बढ़ता चला जाएगा और आपकी निर्णायक बुद्धि भी बहुत कमजोर होती जायेगी और फिर अंत में आत्महत्या तक करने के विचार मन में आ जाते हैं। ऐसा नहीं है कि केवल लड़को में यह दोष है, लड़कियों में भी है। ये दोष बराबर दोनों में है।

इससे चिड़चिड़ा स्वभाव हो जाता है। आज कई लड़के-लड़कियां ड्रग्स ले रहे है, गांजा पी रहे हैं, कई तरह के नशा कर रहे हैं– इसके चलते देखो उनकी क्या हालत हो गई है। यह तो आपके ऊपर भगवान की बड़ी कृपा है कि संतों की वाणी आप तक पहुंच रही है, नहीं तो प्रायः समाज में इन विषयों पर कम ही चर्चा होती है।

हम तो यही कहेंगे कि नाम जप करो भाई! हम कोई गलत भ्रांतियों में विश्वास नहीं करते; यहाँ तो धर्म से चलने की, शास्त्र संयम से चलने की, भगवत् मार्ग में चलने की चर्चा होती है। हम कोई और दवाई नहीं जानते हैं। आपको किसी आयुर्वेदिक वैद्य से मिलना चाहिए और कोई औषधि लेनी चाहिए; क्योंकि अब इस समय आपकी स्थिति बहुत बिगड़ गयी है। दुलार और अनुशासन दोनों तरह से निरीक्षण और उचित औषधि से मामला कुछ सुधर सकता है। माता-पिता को भी अपने बच्चों से मित्रवत व्यवहार करना चाहिए और इतना दुलार करना चाहिए कि बच्चे आपसे कुछ छिपा न सकें। अब माता-पिता ही विलासिता में इतने निमग्न हैं कि उन्हें कुछ पता ही नहीं कि हमारे बच्चे क्या कर रहे हैं।

अब आपको औषधि की जरूरत है, क्योंकि दिमागी स्तर आपका बिल्कुल गिर गया है। आप 'राधा-राधा' नाम जप करो और अब कुछ गलत मत करना और कभी भयभीत मत होना। धीरे-धारे सब सब ठीक हो जाएगा।

प्रश्न-ब्रह्मचर्य नियम बार-बार टूट जाता है, अखंड ब्रह्मचर्य रहना चाहता हूं, कैसे रहूं ?

महाराज जी - अखंड ब्रह्मचर्य बहुत कठिन बात है, उसके लिए निरंतर प्रगट में संतों का, गुरुजनों का सान्निध्य चाहिए। खान-पान में संयम और आसन-व्यायाम-प्राणायाम-ये सब बहुत आवश्यक हैं। यह अखंड शब्द उनके अंदर आता है जो गुरुकुलों में रहे हैं, ऋषियों के आश्रमों में उनके अनुशासन में रहे हैं। जहां संसार में इतनी विषय-भोगों की बाहुल्यता है, खान-पान अपवित्र है, दूषित संग है, वहां बिना कोई क्रिया किए भी वीर्य ऊर्ध्वगामी नहीं हो सकता और वीर्य ऊर्ध्वगामी हुए बिना कोई अखंड ब्रह्मचर्य से नहीं रह सकता।

अखण्ड ब्रह्मचर्य के लिए पद्मासन एवं सिद्धासन में बिना हिले-डुले ६-६ घंटे तक बैठना पड़ता है। भीषण कष्ट हो तो भी उसे शांत रहकर सहना होता है। तब सुषुम्ना नाड़ी खुलती है और वीर्य ऊर्ध्वगामी होता है। जिसका वीर्य उर्ध्वगामी हो जाता है, उसे कहते हैं- 'अखंड ब्रह्मचारी'। अब जब वीर्य अधोगामी हो गया तो उसका प्रवाह बन जाता है, फिर क्रिया करो या न करो, उसका एक समय होता है, फिर अपने समय से वह प्रवाह में निकल जाता है। यदि क्रिया नहीं की और स्वप्न में गंदे दृश्य भी नहीं देखे, तब भी वह स्वभाविक निकल जाता है। इससे आपको अपराध नहीं लगेगा, लेकिन आप अखंड ब्रह्मचारी नहीं कहे जाओगे। इसलिए आप तो ब्रह्मचर्य सुरक्षित रखने का प्रयास करो।

खान-पान में संयम, थोड़ा व्यायाम-प्राणायाम, गंदी क्रियाओं का तत्काल त्याग और नाम जप; तब तो ब्रह्मचर्य लंबे समय तक चलेगा, पर वह अखंड नहीं हो सकता। व्यवहार में, सांसारिक वातावरण में, भोगों के बीच में, मनमाना भोजन

करते हुए अखंड ब्रह्मचर्य नहीं रहा जा सकता। इसलिए आप अधिक से अधिक इसका संयम रखें। स्वयं से कोई गंदी चेष्टा न करें, कोई गंदा दृश्य न देखें तो धीरे-धीरे फिर लंबे समय तक ब्रह्मचर्य से रह पाएंगे।

प्रश्न - गलत क्रिया सीखने के कारण लंबे समय तक हस्तमैथुन क्रिया, अब बिना इस क्रिया किए लघुशंका के रास्ते वीर्य निकलता रहता है, क्या करूं ?

महाराज जी - आप सच मानिए, यदि छोटी अवस्था से ही आप हस्तमैथुन करेंगे तो ब्याह होने के बाद आप गृहस्थी लायक यानी संतान उत्पन्न करने लायक नहीं रहेंगे। जो वीर्य है-वह बल है। वह अगर क्षीण हो गया तो शरीर में कमजोरी आ जाएगी-कमर दर्द करेगी, चक्कर आएंगे, घबराहट पैदा होगी, कोई काम करने की इच्छा नहीं होगी, जरा सी बात सोचने में तुम घबरा जाओगे, लघुशंका में बैठोगे तो जरा स्पर्श करते ही वीर्य निकल जाएगा। इस तरह आपकी दुर्गति हो जाएगी।

लेकिन अभी भी सुधार हो सकता है। आप में अभी आत्मबल है, तभी आपने अपनी कमी को समाज में कह दिया। अब से आप संयम से रहिए। आप सुबह ब्रह्ममुहर्त में ४ बजे उठने का अभ्यास करो, नियमित थोड़ा व्यायाम करो, सत्संग सुनो, आहार पवित्र रखो और नाम जप करो। आपकी बुद्धि में बैठ गया है कि हस्तमैथुन क्रिया में सुख है। इसको हटाने के लिए नाम ही बल है, दूसरा कोई बल नहीं। अभी तुम्हारा मन ठीक नहीं है। बस, हमारी बात मान लो, नाम जप शुरू कर दो और किसी आयुर्वेदिक वैद्य से वीर्य पुष्ट करने के लिए कोई औषधि लो। हमारे द्वारा बताई गईं इन बातों का पालन करने से आपमें निश्चित परिवर्तन हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं करना कि तीन-चार दिन इन नियमों का पालन करके ऊब गए। आपको धैर्यपूर्वक इनको लम्बे समय तक करना होगा, तो निश्चित लाभ होगा।

dha Radha Radha Radha Radha
dha Radha Radha Radha
Radha Radha

प्रश्न – हम ब्रह्मचर्य रहना तो चाहते हैं, पर क्यों नहीं रह पा रहे ?

महाराज जी – यदि आप गृहस्थ हैं तो हमारे सनातन धर्म में मर्यादा है कि एक पत्नीव्रती होकर के धर्मपूर्वक संतान उत्पत्ति के निमित्त सहवास करें और यदि आप विरक्त हैं तो ब्रह्मचर्य नष्ट करने वाला कोई ऐसा आश्रय ही न रखें। अगर आप ऐसा कोई आश्रय अर्थात् व्यक्ति, स्थान या क्रिया का अवलंबन रखेंगे तो आप भ्रष्ट हो जाएंगे। पक्का समझ लीजिए, इसमें कोई संशय नहीं है। कुछ ऐसी चेष्टाएं होती हैं जैसे यदि आपने किसी माता-बहन की तरफ गन्दी नजर से देखा तो फिर बैठे-बैठे वही गन्दा चिंतन चलता रहेगा, भगवत् चिंतन में मन नहीं लगेगा। इसलिए गोस्वामी जी ने कहा कि –

जो चाहे आपन कल्याना, सुजस सुमति शुभगति शुभ नाना।
सो परनारि लिलार गोसाई, तजो चौथ के चंद की नाई।।

यदि संपूर्णतया ब्रह्मचर्य रहना है तो पहली बात यह है कि साधक हमेशा विपरीत शरीर से ज्यादातर दूरी बनाकर रखे। भगवत् मार्ग के पथिक को ऐसा ही करना चाहिए। किसी भी तरह से यदि विपरीत शरीर वाला आपसे बात करेतो फिर आपका मन आपको चैन नहीं लेने देगा; पक्का नहीं लेने देगा। बड़ों-बड़ों को नहीं लेने देता। इसलिए बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। जरा सी चूक हो जाने पर दीर्घकाल से की गयी सारी साधना चौपट हो जाएगी और भ्रष्ट होना पडेगा।

दूसरी बात, शरीर को इतना थका देना चाहिए कि वह काम आदि का चिंतन करने की चेष्टा ही न करे। जैसे यदि किसी को ब्रह्मचर्य को पुष्ट रखना है और वह ब्रजमंडल में कहीं रहता है, तो ले लो नियम वृन्दावन या गिरिराज जी की नित्य परिक्रमा करने का; अगर आपका मन काबू में न आ जाए तो बताना। क्योंकि इतनी थकावट हो जाती है कि परिक्रमा के बाद यदि आप मन को कहो भी कि कुछ चिंतन कर तो भी मन कहेगा कि थोड़ी देर शांति से पड़े रहने दो मुझे, अब मेरी चिंतन करने की सामर्थ्य नहीं। अब जिन साधकों को ऐसी सुविधा नहीं परिक्रमा आदि करने की, तो वे आसनों (सिद्धासन, पद्मासन आदि) में चार-छः घंटे बैठकर

अपने शरीर को कसें। आसनों में ज़रा २०-२५ मिनट बैठकर के देखो- जंघा की नसें टूटने लगेगीं। इतना कष्ट होगा कि बस आपको लगेगा कि बस उठो। ठीक उसी समय मनीराम की परीक्षा हो रही है। उस समय एकदम गंभीर, शांत रहना और अंदर से चिंतन करना कि यह तप हो रहा है, इससे मन निष्पाप हो रहा है। कुछ समय बाद धीरे-धीरे शून्यावस्था आ जाती है फिर जितनी देर बैठोगे मन किसी और चिंतन में जाएगा ही नहीं। मन विषयों में जाने के लिए हम स्वयं उसको रास्ता देते हैं- तभी वह बाहर अन्य गंदे चिंतन में जाता है। अगर साधक आसनों में नहीं बैठता, व्यायाम-प्राणायाम नहीं करता, सेवा आदि के माध्यम से अपने शरीर को थकाता नहीं है, तो कोई भी हो वो ब्रह्मचर्य से नहीं रह सकता; पक्का कह रहे हैं।

ब्रह्मचर्य कोई साधारण बात नहीं, बहुत समझने का विषय है। जब ब्रह्मचर्य शरीर में होगा न तो आप चैन से बैठ भी नहीं सकते, वह आपको क्रियाओं में इतना प्रेरित करेगा, आप जिस कार्य में लगेंगे सांगोपांग उसे पूरा करेंगे। ब्रह्मचर्य एक तेजोमय ज्वलंत शक्ति है। चार लोगों के बीच में ब्रह्मचारी अलग ही दिखाई देगा। जैसे आग दिखाई देती है न ऐसे ही ब्रह्मचारी आग की तरह तेजोमय होता है। वह स्पर्श से, दर्शन से, संभाषण से दूसरों के पाप नष्ट कर देने की सामर्थ्य रखता है। ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहने से कोई भी रोग, कोई भी शोक, कोई भी ताप, उसे स्पर्श नहीं कर सकता। वह एकदम, हर समय प्रफुल्लित रहता है।

इसलिए अगर इस मार्ग में यदि चलने की हिम्मत न हो, तो विवाह कर लो और गृहस्थी में रहो। ऐसी स्थिति में गृहस्थी में रहना बहुत अच्छा रहता है। कोई ऐसी साध्वी पत्नी देख लो, जो भगवत् भक्ति से युक्त हो और विवाह करके सद्गृहस्थी में पवित्र आहार-विहारपूर्वक रहो तो ज्यादा अच्छा है। इससे धैर्यपूर्वक जीवन कट जायेगा। किन्तु यदि विरक्त मार्ग में चलते हो तो फिर ये आग का मार्ग है, इसमें शरीर को थकाना होगा। जो साधक ६ बजे तक सोता रहता है, वह ब्रह्मचारी कदापि रह ही नहीं सकता; बिल्कुल नहीं रह सकता-यह पक्की बात है।

सुबह चार से छः बजे तक सोने वाला साधक निश्चित भ्रष्ट हो जायेगा और किसी काम का नहीं रहेगा। २ से ३ बजे के बीच हर साधक को उठ जाना चाहिए।

किसी सेवाकार्य के कारण अगर रात्रि में ज्यादा विलंब से सोते हो तो ज्यादा से ज्यादा चार बजे तक उठ जाना चाहिए। चार बजे के बाद यदि शैया पर पड़े-पड़े सो रहे हो तो फिर साधना का मतलब ही क्या रहा? इसलिए साधक की प्रत्येक चेष्टा-सोना-जागना, खाना-पीना आदि शास्त्र सम्मत होनी चाहिए।

इस मार्ग के पथिक को चाहिए कि ज्यादा व्यवहार-कुशल न बने, नहीं तो वह माया में फंस जाएगा। यह भगवान की जो विश्व मोहिनी माया है, वह अच्छे-अच्छों को फंसा देती है। इसलिए भगवत् शरणागत होकर रहो, व्यवहार से उदासीन रहो, निरंतर नाम जप करो, ब्रह्मचर्य पचाने के लिए शरीर को दो-चार घंटे खूब थका दो - परिक्रमा करके, आसनों पर बैठकर या अन्य सेवा कार्य करके। बैठे-बैठे ब्रह्मचर्य नहीं पचता, उसके लिए या तो सिद्धासन-पद्मासन या तो कम से कम २० किलोमीटर परिक्रमा अथवा सुबह कम से कम पांच कोस दौड़ लगाना। इसलिए दिनचर्या में आपसे कहीं न कहीं चूक हो रही है, जिस कारण से आप चाहते हुए भी ब्रह्मचर्य से नहीं रह पा रहे हैं।

प्रश्न-बहुत परेशान हूं महाराज जी, काम वासना बहुत सताती है, क्या करूं ?

महाराज जी- इस संसार में सबका प्रादुर्भाव ही काम से हुआ है, तो सब के रग-रग में काम के परमाणु हैं। कोई ऐसा नहीं जो इससे बच पाया हो। बातें कोई भले कितनी ही बनावे, लेकिन हर किसी में काम के परमाणु हैं। तो यह जो आप बोले कि कामवासना सताती है। यह कोई आश्चर्य वाली बात नहीं; क्योंकि ये सबके हृदय में है। पशु-पंछी, कीट-पतंगे, सुर-नर आदि सबके अंदर यह कामभाव विद्यमान है। अब हमको इस काम से बाहर निकलना है; क्योंकि यह बहुत जलाता है और असत् क्रियाएं कराता है। अब इससे बहार निकलने के लिए हमें अध्यात्म बल चाहिए और वह आध्यात्म बल सत्संग और नाम जप से मिलता है। आप जितना अधिक नाम जप /भजन / सत्संग करोगे, उतना आपके अंदर बल आएगा। उसी बल से आप ठीक होते चले जाओगे।

प्रभु की शरण में होकर हृदय से आर्त भाव से उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि- *'हे करुणामय! आप देख रहे हो हमारी दुर्दशा, इससे हम बाहर नहीं निकल पा रहे हैं। आप कृपा करके बल प्रदान कीजिये नाथ! जिससे हम इस काम पिशाच से मुक्त हो सकें।'*

यह केवल आपकी बात नहीं, यह सबकी बात है। किसी को भी एकांत में बैठाकर यदि पूछो, तो वह भी आपको यही बतायेगा जो आप कह रहे हो कि मुझे कामवासना बहुत सताती है। इसका कारण है कि सबकी उत्पति कामना के द्वारा ही हुई है। अब इसी कामना को यदि हम भगवान् की तरफ मोड़ दें तो वास्तविक सुख की प्राप्ति हो जाएगी।

जब हृदय में अन्य कोई कामना नहीं रह जाती, तब वास्तविक भगवदानंद की अनुभूति होती है। इसलिए इस कामना के नाश के लिए भागवतिक कामना का ही प्रयोग करें। हम कामना करें अधिक से अधिक नाम जप/भजन की, भगवत् चरित्र गायन-श्रवण की, तो धीरे-धीरे लौकिक काम शांत हो जायेगा। जहां तक हो स्वयं से इससे बचने की चेष्टा करनी चाहिये। जब आप फिसल जाओ, तो प्रभु को पुकारो कि नाथ! मैं नहीं संभल पा रहा हूं, आप बल प्रदान करो। तो वह सब बलों के बल हैं, वह कृपा करेंगे, बिलकुल सब ठीक हो जाएगा।

कभी जीवन में निराश मत होना, हजार बार गिर जाओ तो भी निराश मत होना; फिर उठकर, खड़े होकर के फिर दौड़ने की कोशिश करना। फिर गिर जाओ तो फिर खड़े होना, फिर से प्रभु को पुकारना। एक बार अगर आपकी फरियाद लग गई, तो फिर इस काम को लांघ जाओगे। प्रभु ऐसे सामर्थ्यवान हैं कि यदि किसी का पैर टूटा हुआ है तो उससे भी वह सुमेरु पर्वत को लंघवा देंगे। ऐसे सर्वसमर्थ प्रभु के दास बनकर बिल्कुल निराश मत हो। यह सब कुछ उनके हाथ में रिमोट की तरह है, जिस दिन वह कृपा करेंगे, एकदम सब ठीक हो जाएगा। बड़े से बड़े व्यभिचारियों, हिंसकों को भी प्रभु ने महात्मा बनाकर जगत् पावन करने वाला बना दिया।

मूकं करोति वाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वंदे, परमानंद माधवम्।।

प्रश्न–मैं ब्रह्मचर्य रहना चाहती हूं, और भगवान को पाना चाहती हूं, क्या करूं ?

महाराज जी – अपने माता–पिता के सान्निध्य में रहकर भजन करें और कभी भी किसी भी पुरुष का किसी भी तरह का एकान्तिक संग स्वीकार न करें। फिर चाहे वो रिश्तेदार–नातेदार आदि कोई भी क्यों न हों। किसी के साथ कभी एकान्तवास न होने पाए। जिस समय आप घर में अकेली हैं कोई और नहीं है तो उस समय किसी से नहीं मिलना चाहिए–चाहे वह पूज्य से पूज्य या वृद्ध/जवान कोई भी पुरुष क्यों न हो।

दूसरी बात, अपने द्वारा किसी भी तरह की गंदी हरकत नहीं करनी है- मोबाइल से गंदी बातें देखना, अपने आपमें अपने शरीर से स्वयं गंदी चेष्टा करना, यह सब नहीं करना चाहिए; नहीं तो फिर वो सब दिखावटी वैराग्य नाटक–नौटंकी बना रहेगा। फिर उससे कोई लाभ नहीं मिलेगा। आहार बड़ा सूक्ष्म करते चलें, क्योंकि ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य को पचाने के लिए भोजन कम पाना चाहिए। कम भोजन पाने से ऊर्जा शक्ति बढ़ती है और दैवीय शक्ति का विकास होता है। इसके अलावा कम से कम २ घंटे पद्मासन आदि आसनों में बैठना सीखें, तभी ब्रह्मचर्य पचेगा नहीं तो उद्दंडता आ जाएगी।

प्रश्न–हस्तमैथुन करो Height बढ़ेगी, ऐसा लोगों ने कहा, इसलिए गंदी आदत पड़ गई।

महाराज जी – यह सब भ्रमात्मक और बहुत गलत बातें हैं। जब ४० किलो पूरा भोजन पेय पदार्थ सहित पचता है, तब एक संतान उत्पन्न करने के योग्य वीर्य बनता है। और आप उसे हस्तमैथुन द्वारा दिन में कई बार बाहर करो तो फिर कितना हानिकारक होगा?

इसके कारण सर दर्द, कमर दर्द, पैरों में दर्द, भोजन अच्छा न लगना, किसी काम में रुचि न होना, डिप्रेशन आदि सब समस्याएं शुरु हो जायेंगी। हस्तमैथुन का

ऐसा अभ्यास हो जाएगा कि फिर आपका न चाहते हुए भी सोते-सोते वीर्य नाश हो जाएगा; इस तरह जीवन पूरा नष्ट हो जाएगा।

यह जो आपसे किसी ने कहा है कि हस्तमैथुन करने से Height बढ़ती है, यह सब बुद्धि भ्रष्ट करने वाली बातें हैं। ब्रह्मचर्य नष्ट करने से Height थोड़ी बढ़ती है, यह सब भ्रमात्मक बातें हैं। अभी तो आप नए बच्चे हो, निराश मत होइये, आप इस गंदी क्रिया को छोड़ सकते हो। इसे छोड़ना तो आपको ही पड़ेगा। पहले इसके लिए अभक्ष्य खान-पान और व्यसन करना छोड़ो और भगवान् के नाम का जप करो; तभी तो तुम्हारी बुद्धि शुद्ध होगी और तुम्हारे अन्दर इस क्रिया को छोड़ने की सामर्थ्य आयेगी। आज से यह शपथ लो कि आज के बाद कभी हस्तमैथुन नहीं करूंगा; और यह याद रखो कि हमने वृंदावन में शपथ ली है कि अब से हस्तमैथुन की क्रिया नहीं करूँगा और साथ में नाम जप करो, उससे तुम्हें बल मिलेगा।

प्रश्न - पुरुष शरीर से आकर्षण की वजह से पूर्व में बहुत गलतियां हुई हैं, अब क्या करूं ?

महाराज जी - अब तक जो हुआ उसे भूलकर अब आगे से ऐसा न हो इसके लिए दृढ़ निश्चय करो कि आज तक जो मैंने गलतियाँ की हैं, वह अब नहीं करूंगा। यदि ऐसा निश्चय करके भगवान् की शरणागति ग्रहण कर लो तो भगवान अपने शरणागत के पूर्व के किए हुए पापों को नष्ट कर देते हैं। परन्तु आगे पुनः ऐसे आचरण न करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। पूर्व में जो भी गलतियाँ हुई हैं वे पुनः न हों इसके लिए नाप जप करो, सद्ग्रंथों का स्वध्याय करो, सत्संग सुनो, गंदे आचरणों की तरफ घृणा का भाव रखो, धर्म पूर्वक विषय-सुख भोगो, न कि अधर्म पूर्वक। अगर अब भी यही अधर्म आचरण करते रहोगे तो फिर जीवन नरक बन जायेगा। यह दुर्लभ मनुष्य जीवन मिला है, आप अपने आप को अभी संभाल लो, तब तो इससे बच पाओगे नहीं तो माया रौंद डालेगी।

नामरूपी धन हमें भगवान् की कृपा अथवा संत कृपा से मिल गया है, अब हमें उसी को जपना है– 'राधा, राधा, राधा, राधा', बस इसी से सब ठीक हो जाएगा– पूर्व के पाप नष्ट हो जाएंगे, आगे पाप करने की प्रवृत्ति नहीं रह जाएगी और भगवदानंद का अनुभव हो जाएगा; इसलिए नाम जप में लगो।

शुरुआत में मन लगे या न लगे, आनंद की अनुभूति हो या न हो लेकिन निष्ठा पूर्वक नाम जपते रहो। मन को जहां जाना है, जाने दो; बस मन की प्रेरणा के अनुसार गंदी क्रिया न होने पावे। फिर एक समय ऐसा आएगा कि गंदी जगह मन जायेगा ही नहीं। अभी मन गंदी बातें बार–बार तुम्हारे सामने प्रकट करेगा पर उससे घबराना मत, उससे परेशान मत होना। वह गंदी बातें मन से बाहर निकल रही हैं। बस उसके अनुसार क्रिया मत करना। यदि उसके अनुसार क्रिया करोगे तो नया संस्कार जमा हो जाएगा। मन कहेगा मोबाइल में गंदी बातें देखूं, गंदी क्रिया करूं, आप बिल्कुल कुछ मत करना। तब वह आपको अन्दर से जलाएगा, उस जलन को आप सह जाओ, फिर अंत में वह शांत हो जाएगा। प्रभु ने प्रत्येक मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता दी है, निर्णय आपको करना है कि मुझे मन की गंदी बातों को मानकर उसके अनुसार आचरण करके काम, क्रोध आदि गंदे नाले में गोता लगाना है या नाम जप करके गंगाजी में गोता लगाना है।

प्रश्न – मैं समलैंगिक हूं, अब तक 150 से अधिक पुरुषों से संबंध बना चुका हूं, अब बहुत दुखी हूं, क्या करूं ?

महाराज जी – यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे ऊपर भगवान की विशेष कृपा है। कृपा यह है कि यदि आप पुरुष से संभोग न करें, तो स्त्री से आपका स्वाभाविक कोई आकर्षण या आसक्ति नहीं है। बस अब आपकी यह जो पुरुष शरीर के साथ गन्दी क्रिया हो रही, इसको रोक लेना है।

अच्छा, अब आप थोड़ा विवेक से सोचो कि अब तक आपने इतने पुरुषों के साथ सम्बन्ध बनाकर क्या प्राप्त किया? कोई सुख तो मिला नहीं न?

इसलिए यदि आप नाम जप करें और इसे कंट्रोल करें, तो आप बहुत उत्तम मनुष्य बन सकते हैं। जो व्यभिचार परायण है, वह न तो अपना कल्याण कर सकता है और न दूसरों का कल्याण कर सकता है। यह जो सृष्टि में काम भोग रखा है वो सृष्टि क्रम को बढ़ाने के लिए रखा गया है, और आपकी इस क्रिया में संतान उत्पत्ति योग आदि का संबंध तो होगा नहीं, केवल भोग विलासिता और मनोरंजन होगा। आप खुद विचार करके देखो कि आप कैसे अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं।

आपको नियम और संयम में आना चाहिए। जरा विचार करो, किस मलिन जगह से तुम सुख ढूंढ़ रहे हो? जहां दुर्गंध और मल भरा है, वहीं तुम्हारी रति है। ये पूर्व प्रारब्ध कर्म वश आपके दिमाग में यह संस्कार है और इस संस्कार को जीतने के लिए मनुष्य शरीर मिला है। कितना गंदा स्वरूप होगा, वह चाहे पुरुष का पुरुष से संबंध हो, या स्त्री का स्त्री से; ऐसे जीवन का क्या मतलब रहा ? यह केवल मनोरंजन के लिए ऐसी क्रियाएं होती हैं। धर्म से इसका कोई मतलब नहीं।

इसलिए आप संयम धारण करें और ब्रह्मचर्य से रहें। भगवत् परायण होकर समाज की सेवा करें और धर्म से चलें। यदि आपको संतान प्रिय है तो किसी की भी संतान गोदनामा से ले सकते हैं और अपने वंश को आगे बढ़ा सकते हैं।

यह समस्या केवल आपकी ही नहीं है, दुनिया में लाखों ऐसे पुरुष और स्त्रियां हैं जो समलैंगिक आकर्षण के शिकार हैं और ये बात उनके पूर्व प्रारब्ध वश उनके मस्तिष्क में आई है।

इसलिए इसका सुधार करो। नाम जप करो, ब्रह्मचर्य से रहो, माता-पिता की सेवा करो, समाज की सेवा करो, गंदा आचरण मत करो। गंदे आचरणों से अंतःकरण मलिन होता चला जाता है। स्वयं से घृणा होने लगती है। इसलिए उठो और अध्यात्म का आश्रय लेकर इस घृणित जीवन से बाहर निकलो। इसके लिए नाम जप बहुत आवश्यक है।

प्रश्न - मैं 12 साल का हूं, हस्तमैथुन की आदत को छोड़ नहीं पा रहा हूं।

महाराज जी - आज के समय में छोटे-छोटे बच्चे या तो मोबाइल से या अपने मित्रों से सीखकर इस रोग के ऐसे शिकार हो रहे हैं कि फिर इसी में ही अपना जीवन नष्ट कर देते हैं। इसकी कोई ऐसी वैक्सीन तैयार नहीं हुई कि यदि लगा दें तो उसके मन से यह विचार हट जाए। इस हस्तक्रिया में किसी दूसरे के सहयोग की भी जरूरत नहीं रहती और छोटे-छोटे बच्चों को और कोई सुख का साधन लगता नहीं, वो दिन में कई बार हस्तमैथुन करना सीख जाते हैं, जिससे उसका जीवन ही बर्बाद हो जाता है। बहुत बड़ी हानि है, जो ये बच्चों में गलत आचरण पहुंच रहा है। बड़ा कुसंग फैल रहा है। इसलिए माता-पिता को इस समय सहयोग करना चाहिए। बच्चों को मित्रवत बैठाकर उनसे पूछना चाहिए, उसको उचित शिक्षा देनी चाहिए कि यह गलत कार्य है, यह नहीं करना चाहिए। उन्हें समझाना चाहिए कि इस क्रिया को कभी नहीं करो, क्योंकि ये बहुत हानिकारक है।

अब आप दृढ निश्चय करो कि अब से वह क्रिया कभी नहीं करोगे और गंदे बच्चों का संग मत करना। नाम जप करो, प्रतिदिन एक किलोमीटर दौड़ा करो, थोड़ा व्यायाम करो तो शरीर स्वस्थ व बढ़िया हो जाएगा, अभी कुछ ज्यादा बिगड़ा नहीं है, अभी संभल सकते हो। आप कहते हैं कि आपकी गर्लफ्रैंड भी है। आज के नए बच्चों को यह पता ही नहीं कि संतान उत्पत्ति की क्षमता रखने वाला वीर्य १८ वर्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। यदि १८ वर्ष के बाद ब्याह हो जाए तो उसका जीवन बर्बाद नहीं होगा। लेकिन १८ वर्ष की आयु से पहले वीर्य का नाश, व्यक्ति की सब नस-नाड़ियों को निचोड़ देता है, उसकी हड्डियों तक का पावर नष्ट हो जाता है। वो संभलने लायक नहीं रहते; और आगे चलकर ऐसी मानसिकता हो जाती है कि छोटी-छोटी बात पर आत्महत्या कर लेना, छोटी सी बातों में इतना नकारात्मक सोच लेना कि अपने माता-पिता तक को मार देना। ऐसा समाज में प्राय: देखने में आता है, क्योंकि उनकी मानसिक क्षमता नष्ट हो गई होती है।

इसलिए बच्चों को प्यार से समझाओ कि वह इस तरह की गंदी क्रियाएं न करें, जिससे उसका जीवन कम से कम जीने लायक तो बना रहे। ज्यादा नहीं तो

कम से कम १८ वर्ष तक तो बच्चों को संभालो। जैसे छोटा पौधा होता है तो कोई बकरी उसे एक झटके में मुंह में चर जाए किन्तु वही जब बड़ा वृक्ष बन जाता है, तो बकरी खाते-खाते छक भी जाए, तो भी वृक्ष का कुछ नहीं बिगड़ता; ऐसे ही छोटी अवस्था में बच्चे गलत आचरणों में जाएंगे तो नष्ट हो जाएंगे। जब जवान हो, समर्थ हो, फिर गृहस्थ में जाए तो कोई परेशानी नहीं।

प्रश्न- पति से द्वेष के कारण परपुरुष से संबंध बना लिए, अब बहुत जलन हो रही है।

महाराज जी – आज के इस गंदे वातावरण में यही सब बातें फैल गई हैं। ये तो भगवान् की बड़ी कृपा समझो कि आप कहीं न कहीं अध्यात्म से जुड़ी हुए हैं, तभी आपके हृदय में अपनी गलती के लिए जलन और पश्चाताप हो रहा है, नहीं तो ऐसे कितने हैं कि जिनको ऐसी गंदी बातों पर कोई पश्चाताप नहीं होता। आज के समाज में प्रायः इस तरह की घटनाओं को मनोरंजन माना जा रहा है। इसलिए यदि हो सके तो इन गन्दी आदतों से बहार निकलो और सही मार्ग में लौटिए। अपने पति के प्रति भगवद् भाव लाओ। शास्त्र कहता है कि पति चाहे कैसा भी हो –

वृध्द रोगबस जड धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥

अर्थात् वृध्द, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यंत गरीब पति को अपमानित करने से स्त्री यमलोक में विभिन्न प्रकार के दुख भोगती है।

यदि पति अंधा है, किसी अंग विहीन है, कमजोर है तो भी पत्नी को पति का ही सेवन करना चाहिए, परपुरुष का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी एक दूसरे के जीवनसाथी हैं तो फिर पति से द्वेष क्यों? किन्तु आज ऐसी स्थिति बनती जा रही हैकि पति किसी और दूसरी स्त्री से प्यार कर रहा है, पत्नी किसी दूसरे पुरुष से प्यार कर रही है। अब इस स्थिति को जब तक दोनों पक्ष नहीं संभालेंगे, तब तक एक पक्ष को कैसे संभाला जा सकता है। जब पत्नी

देख रही है कि उसके सामने उसका पति किसी दूसरी स्त्री को घर ला रहा है, अब वो पत्नी क्या करे? ऐसी समस्या हो जाती है कि कुछ अच्छी लडकियां अच्छे से चलना चाहती हैं लेकिन ऐसी परिस्थिति होती है कि जैसे आपने कहा द्वेष वशात् ऐसा अनुचित कार्य हो गया। परन्तु अब आपको चाहिए कि अपने चरित्र को पावन रखें, चरित्र को दूषित नहीं करना चाहिए।

अब भगवान की शरण में हो, नाम जप, नाम कीर्तन करो। आगे से ऐसी गलती कभी मत करना। अगर पति के ऐसे आचरण हैं जिनके द्वारा आपको दुःख पहुंचता है। भले आप उस दुःख को सह लें लेकिन आप गंदा आचरण न करें। आप अपने जीवन को भगवान की शरण में रखकर पवित्र रखें; और अगर हो सके तो अपने प्यार से पति को वश में करें। ऐसा प्यार प्रस्तुत करें कि पति तुम्हारे अनुकूल हो जाए। बहुत से बिगड़ैल पुरुषों को अच्छी स्त्रियों ने सुधार दिया। अपने प्यार के प्रभाव से उनको वश में किया जा सकता है। इसके लिए पहले आपको स्वयं सुधरना चाहिए। गंदे आचरणों की तरफ आपका मन नहीं जाना चाहिए। पति प्रेम ही कल्याणकारी मार्ग की ओर या भगवान की तरफ बढ़ा सकता है, व्यभिचार नहीं। व्यभिचार तो नर्क ले जाएगा, पक्की बात समझ लो।

प्रश्न-१८ साल की हूं, नशा और व्यभिचार की आदत, दादी के गहने बेच दिए, बचा लो।

महाराज जी - यह तो बहुत हानि का विषय है। प्रायः समाज में गन्दी मानसिकता से बिगड़े हुए बच्चों में इस तरह के आचरण बनते जा रहे हैं। आज के समाज में यह जो गर्लफ्रेंड/बॉयफ्रेंड बनाने का नशा चला है, इससे नए अवस्था के बच्चों की दुर्दशा हो रही है। इस स्थिति में यदि आप स्वयं सुधरना न चाहो, तो कोई सुधार नहीं सकता। अगर आप सुधरना चाहो तो कुछ हो सकता है; क्योंकि अभी आप में कहीं न कहीं पवित्रता बकाया है, तभी तो आप में हिम्मत आई कि आप सभा

में अपनी बात रख पाई हैं। यदि अंतःकरण की वृत्ति पूरी अपवित्र होती, तो आप बोल ही नहीं सकती थीं।

इसलिए अब सबसे पहले तो यह नियम लो कि कभी शराब नहीं पिओगी, शराब से तात्पर्य नशा की वो सब चीजें, जैसे हुक्का, ड्रग्स आदि सब। दूसरी बात, अब तक जो हुआ, सो हुआ, अब जब तक विवाह न हो, तब तक किसी भी पुरुष का संयोग नहीं करोगी। यदि पूर्वाभ्यास वश मन में बहुत व्याकुलता बढ़े, तो उपवास कर लो क्योंकि एक-दो दिन भोजन न करने से मन की तीव्र चंचलता ठीक हो जाती है। यह उपवास कामवाशना पर विजय प्राप्त करने के लिए काफी सहयोग देता है। और इसके साथ नाम जप का अभ्यास करो। आपके अभी तक के जीवन में जो कुछ भी हुआ, उस पर मिट्‌टी डालो अर्थात् उसे भूल जाओ और अब आगे का जीवन संयम के साथ पवित्रता पूर्वक व्यतीत करो। अभी नये बच्चे ही हो, अभी ज्यादा कुछ नहीं बिगड़ा, सुधार कर लो अपना। आप कहते हो कि माता-पिता पुरानी गलतियों को लेकर बहुत सुनाते हैं तो यदि वे कुछ कहें तो उसे धैर्यपूर्वक सह लो, उससे आपका पाप नष्ट होगा। जब वे कुछ बोलें तब आप चुप हो जाओ, इससे आपके अन्दर एक प्रकार की जो जलन पैदा होगी, उससे आपके पाप नष्ट होंगे; इसलिए चुप रहकर सह जाओ और आगे अब कोई नया पाप मत करना।

वैसे आपने जो किया वह आचरण तो बहुत बुरा हुआ है। और आप जैसे बता रहे कि इसके कारण आपके माता-पिता आपको स्वीकार नहीं कर रहे हैं, तो इसमें हम तो यही कहेंगे कि ऐसी स्थिति में माता-पिता को चाहिए कि जैसे हमारे प्रभु का स्वभाव है कि अगर घोर वेश्यागामी भी जब सुधरना चाहा और भगवान की शरण में आया, तो भगवान ने उसे भी संत बना दिया। ऐसे ही हर जीव को एक अवसर मिलना चाहिए। जैसे कोई बच्चा है, अब माना कि उससे बहुत बड़ी गलती हो गई लेकिन अब वो सुधरना चाहता है तो माता-पिता को चाहिए कि प्यार-दुलार से अब उसे संभाल लें, इस तरह उसमें सुधार हो सकता है। सबके पास सुधरने का अवसर है, वृद्धावस्था तक अवसर है, यदि आखिरी में भी सुधर

जाए तो उद्धार हो जाए। इसलिए ऐसा नहीं होना चाहिए कि कोई गलत है तो उसे जीवन भर हम गलत कहकर परेशान करते रहें। गलती हो गई, लेकिन अब उसके सुधार में सहयोग करना चाहिए। अगर आप सुधरना चाहती हैं तो आपके माता-पिता को आपको सुधरने का अवसर देना चाहिए। यदि वे आपको अपने से बेदखल करते हैं तो फिर आप गंदी बातों में और ज्यादा गिरती चली जाओगी और इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जाएगा। यद्यपि आपने बहुत बड़ी गलती की है, दंडनीय गलती की है; पर अब आपको उसका प्रायश्चित्त हो रहा है और आप अपनी गलतियों को सुधारना चाहती हैं तो आपके माता-पिता को चाहिए कि वह आपको क्षमा करके, दुलार देते हुए आगे बढायें। गिरते हुए को थामते हुए आगे बढ़ाने के लिए सबको सहयोग करना चाहिए; न कि गिरते को और लात मार के गिरा देने का प्रयास करना चाहिए। यदि माता-पिता आपको त्याग देंगे तो आप और स्वतंत्र हो जाएंगी, फिर क्या होगा, अंतिम में बुद्धि इतनी निर्बल हो जाती है कि आत्महत्या का विचार मन में आ जाता है।

हम तो यही कहते हैं बात मान लो, अब तक जो कुछ हुआ उसे सुधार लो, नहीं तो ऐसी दुर्गति होगी, यहीं नहीं, परलोक में भी बड़ी दुर्गति होगी और इसके बाद अन्य योनियों में भी जाओगी तो वहां भी दुर्गति होगी। अभी मनुष्य हो अपने को सुधार सकती हो। अगर आप कहो कि मेरे में सामर्थ्य नहीं, मैं अपने को नहीं सुधार सकती हूँ; तो कैसे नहीं सुधार सकती हो? कैसे तुममें सामर्थ्य नहीं? ऐसे कैसे कि तुम शराब पीती हो, सिगरेट पीती हो, और अपनी दादी को तुम नशा देकर पुरुषों से व्यभिचार करती हो, ऐसी तुम्हारी हिम्मत कैसे हो गई? धिक्कार है तुम्हारे मनुष्य शरीर को। अभी तुम्हारे ऊपर अच्छे से शासन नहीं किया गया, इसलिए मनमानी कर रही हो। अगर बचपन से तुम्हें सुधारा होता न तो आज गंदे आचरण नहीं बनते तुमसे। जब तुमने पहली बार गलती की थी, उसी समय तुम्हें शासन में ले लिया गया होता, तो आप ठीक हो जाती। अरे! बूढ़ी दादी को पौष्टिक वस्तु पवानी चाहिए, कि उनको बेहोश करने वाली चीज पवानी चाहिए? तुम्हें ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए या पर पुरुष के साथ संयोग करके?

तुम भी सुधरो और माता-पिता को भी चाहिए कि क्षमा करके इनको एक अवसर दें। आत्महत्या करना कोई इस समस्या का हल नहीं है। आत्महत्या करने के बाद बहुत दुर्गति होती है, प्रेत योनि की प्राप्ति होती है। इसलिए आत्महत्या की तो सोचो ही मत। आत्महत्या करने की हिम्मत कर सकती हो लेकिन शराब, व्यभिचार आदि गंदे आचरण नहीं छोड़ सकती हो? नाम जप करो और आत्महत्या की कभी मत सोचना। अगर हिम्मत ही दिखानी है तो अपनी गलतियों को सुधारने में हिम्मत दिखाओ।

भजन मार्ग यूट्यूब चैनल प्लेलिस्ट

समाज में प्रचलित कुछ भ्रांतियाँ

1. **ब्रह्मचर्य का पालन करना असंभव और अस्वाभाविक है—**

भारतीय आयुर्वेद ने स्पष्ट किया है कि ब्रह्मचर्य का पालन स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी है और इसे अपनाना सरल भी है। आजकल कई डॉक्टर भी युवाओं को वीर्य की हानि न करने की सलाह देते हैं, जो सही है।

2. **पूर्ण ब्रह्मचर्य से हानि होती है —**

यह सोच पूरी तरह गलत और मिथ्या है। हमारे ऋषि-मुनि सदियों से ब्रह्मचर्य का समर्थन करते आए हैं। शास्त्रों में भी ब्रह्मचर्य से मिलने वाले अनेक लाभों का वर्णन मिलता है और इसका पालन कभी हानिकारक नहीं होता।

3. **ब्रह्मचर्य पालन से आयु घटती है —**

यह बात बिल्कुल गलत धारणा है। हमारे पूर्वज और ऋषि-मुनि ब्रह्मचर्य के कारण ही लंबे जीवन वाले थे। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। आधुनिक समय में भी विश्व के कई महान गणितज्ञ, विचारक और दार्शनिक ब्रह्मचारी थे और उन्होंने दीर्घायु प्राप्त की।

4. **स्वप्नदोष तो होता है, तो मैथुन और व्यभिचार क्यों न किया जाए —**

यह एक घातक भ्रांति है। विशेषज्ञ कहते हैं कि स्वप्नदोष कुछ सेकंड में होता है, जबकि अन्य प्रकार के मैथुन में अधिक समय और शक्ति खर्च होती है। स्वप्नदोष में जो वीर्य निकलता है, वह शरीर के लिए हानिकारक नहीं होता, लेकिन मैथुन और व्यभिचार शरीर को गंभीर नुकसान पहुंचाते हैं।

5. **ब्रह्मचर्य केवल सन्यासियों के लिए है —**

यह सरासर गलतफहमी है कि ब्रह्मचर्य सिर्फ सन्यासियों के लिए है, लेकिन असल में यह सभी के लिए जरूरी है—चाहे बच्चे हों, युवा

हों, गृहस्थ हों या विरक्त। विशेषकर विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यह मेधा बढ़ाने और लक्ष्य को पाने में मदद करता है।

6. **काम वासना से विषय भोग करने से मानसिक तनाव कम होता है और विश्रांति मिलती है —**

यह विचार पूरी तरह गलत है। अगर काम से आराम मिलता, तो भोग के बाद थकान और कमजोरी क्यों होती? जो काम हमारी ऊर्जा घटाता है, वह स्वास्थ्य के लिए कभी लाभकारी नहीं हो सकता।

7. **कामोत्पत्ति शरीर की भूख-प्यास जैसी स्वाभाविक है —**

असल में काम और भूख-प्यास में बहुत बड़ा अंतर है। भूख-प्यास शरीर की जरूरत को दर्शाती है, जिससे हमें खाने-पीने की जरूरत होती है ताकि शरीर को ऊर्जा मिले। खाना-पीना करने से शरीर में शक्ति का अनुभव होता है।

लेकिन काम कोई शारीरिक जरूरत नहीं, बल्कि मन के अशुद्ध विचारों का परिणाम है। जैसे हिंसात्मक विचार मन में लड़ाई पैदा करते हैं, वैसे ही काम की इच्छा भी मानसिक उत्तेजना से उत्पन्न होती है। मन के विचारों का असर शरीर पर पड़ता है और इंद्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं।

8. **वृद्धावस्था में कामवासना खत्म हो जाती है —**

यह सोच गलत है कि उम्र बढ़ने पर कामवासना समाप्त हो जाती है। महाराज भर्तुहरि ने कहा है:-

"वृद्धत्वेऽपि मना: कामतरलम्, शरीरं शनैः गच्छति।"

अर्थात, उम्र चाहे कितनी भी बढ़ जाए, मन कामुक ही रहता है, जबकि शरीर धीरे-धीरे कमजोर होता जाता है।

कामना तो मन में होती है, और मन की उम्र कभी नहीं बढ़ती। शरीर तो जन्म लेकर बढ़ता, बदलता, और अंततः नष्ट हो जाता है। यही वृद्धावस्था होती है, लेकिन मन बूढ़ा नहीं होता।

इस बात की पुष्टि राजा ययाति के चरित्र से होती है, जो इतिहास-पुराणों में प्रसिद्ध है। आज भी कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ वृद्धावस्था में भी लोग विवाह करते हैं, क्योंकि कामवासना खत्म नहीं हुई होती।

*****

ब्रह्मचर्य के विषय में महापुरुषों के उद्गार

- विषयासक्ति जीवन, कांति, बल, ओज, स्मृति, सम्पत्ति, कीर्ति, पवित्रता, भगवद्-भक्ति को नष्ट कर डालती है।

  —भगवान श्रीकृष्ण

- मन, वाणी तथा शरीर से सदा, सर्वत्र तथा सभी परिस्थितियों में सभी प्रकार के मैथुनों से अलग रहना ही ब्रह्मचर्य है।

  —याज्ञवल्क्य

- आपको ज्ञात हो कि आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी रहने वाले व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है। एक व्यक्ति चारों वेदों का ज्ञाता है तथा दूसरा व्यक्ति अखण्ड ब्रह्मचारी है। इन दोनों में पश्चादुक्त व्यक्ति ही पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यरहित व्यक्ति से श्रेष्ठ है।

  —महाभारत

- ब्रह्मचर्यरूपी महारत्न मृत्यु, व्याधि और बुढ़ापे को मार भगाने वाला अमृतरूपी परम उपचार है।

  —धन्वन्तरी

- शरीर को सुखाने का नाम तप नहीं है, अपितु ब्रह्मचर्य ही परम तप है।

  —भगवान शंकर

- ब्रह्मचर्य से ही सभी प्रकार का बल प्राप्त होता है।

  —कपिल मुनि

- जो ब्रह्मचर्य के नियमों को छोड़ देता है, वह पतित होता है।

  —मनु

- जब ब्रह्मचर्य दृढ़ हो जाता है, तब व्यक्ति को अपार ऊर्जा की प्राप्ति होती है।

  —महर्षि पतंजलि

- जो आजीवन ब्रह्मचारी रहता है, उसे इस संसार में कुछ भी दुःख नहीं होता, सत्य से सदैव प्रेम करने वाले निर्मल ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य व्रत समस्त पापों को नष्ट कर देता है।

—भीष्म पितामह

- काम की सहज प्रवृति जो प्रथम तो एक सामान्य लघूर्मि की भांति होती है, कुसंगति के कारण सागर का परिणाम धारण कर लेती है।

—नारद

- जो इस ब्रह्मलोक को ब्रह्मचर्य के द्वारा जानते हैं, उन्हीं को यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है तथा उनकी सम्पूर्ण लोकों में यथेच्छ गति हो जाती है।

—छान्दोग्योपनिषद

- ब्रह्मचर्य से ही बुद्धि स्थिर होती है और स्थिर बुद्धि ही वेदांत की अनुभूति कर सकती है।

—स्वामी करपात्री जी

- ब्रह्मचर्य केवल देह का विषय नहीं, यह मन, बुद्धि और आत्मा का पवित्र जीवन है। यह महान साधना है जो आत्मशक्ति को जन्म देती है।

—स्वामी चिदानंद सरस्वती

- जब मनुष्य स्त्री और विषयों के आकर्षण से मुक्त हो जाता है, तभी आत्मा को भगवान की सच्ची अनुभूति होती है।

—रामकृष्ण परमहंस

- वीर्य ही साधुता है। दुर्बलता पाप है। बलवान और वीर्यवान बनने की चेष्टा करो। उपनिषद, केवलप्रद, आलोकप्रक और दिव्य दर्शन शास्त्रों का अवलम्बन करो। अन्य दुर्बलता बढ़ाने वाले विषय को छोड़ो। हमें ऐसे ब्रह्मचारी मनुष्य चाहिए, जिनके शरीर की नसें लोहे की भांति और स्नायु इस्पात की तरह दृढ़ हो। उनकी देह में ऐसा मन हो जिसका संगठन वज्र से हुआ हो।

—स्वामी विवेकानंद

- पूर्ण ब्रह्मचर्य के बिना आप ठोस आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकते। आध्यात्मिक मार्ग में अधूरी साधना का स्थान नहीं है।

— शिवानन्द स्वामी

- जिन्होंने ब्रह्मचर्य का सेवन किया, अपने वीर्य की रक्षा की, उन्होंने अद्भुत बल और शक्ति प्राप्त की।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

- ब्रह्मचर्य ही सबसे बड़ा धर्म है।

—चित्ररथ गंधर्व

- ब्रह्मचर्य और योग ही सुख का मार्ग है।

—योगी अरविन्द

- ब्रह्मचर्य की अखण्डता से सहज ही परमात्म दर्शन होता है।

—श्री शंकराचार्य

- जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह ब्रह्मांड की सारी शक्तियों को अपने भीतर समाहित कर सकता है।

—स्वामी रामतीर्थ

- ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए प्रति समय प्रयत्न करना चाहिए। वीर्य से ही आत्मा (जीव) अमरत्व को प्राप्त होता है। शरीर को संयत, सुयोग्य बनाने के लिए नियत समय तक प्रत्येक स्त्री-पुरुष को ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए।

—स्वामी नित्यानंद

- मैं विद्यार्थियों और युवकों से यही कहता हूं कि ब्रह्मचर्य और बल की उपासना करें। बिना शक्ति और बुद्धि के अपने अधिकारों की रक्षा और प्राप्ति नहीं हो सकती। देश की स्वतंत्रता वीर-व्रतियों पर ही निर्भर करती है।

—लोकमान्य तिलक

- ब्रह्मचर्य न केवल व्यक्ति की आत्म-शक्ति को बढ़ाता है, बल्कि यह समाज के लिए भी एक सशक्त और नैतिक वातावरण बनाने में मदद करता है। यह उच्च आदर्शों, निष्ठा और जीवन के उद्देश्य के प्रति समर्पण की ओर ले जाता है।

—माननीय मालवीय जी

- संसार वीर्यवान के लिए है। वीर्यवती जातियों ने संसार भर में राज किया। और वीर्यहीन होने पर उसका अस्तित्व मिट गया।

—स्वामी सत्यदेव

- भीमसेन और हनुमान जी के चित्र मेरे मानसिक पटल पर खिंच रहे थे। मैंने विचार किया कि उनके समान न सही, पर अपने शरीर को अवश्य ही पुष्ट बना सकता हूं। अपने शास्त्रों के अध्ययन से मुझे शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम उपाय ब्रह्मचर्य सूझ पड़ा। मैंने और सब अभ्यासों को छोड़ कर उसी को ग्रहण किया।

—भारत-भीम 'राममूर्ति'

- वह कैसा उत्तम समय था, जब ऐसे (भीष्म जैसे) सदाचारी पुरुष होते थे। आज चाहे हम अपनी मूर्खता से ब्रह्मचर्य पर उपहास करें, परन्तु समय आएगा, जब संसार इन्हीं (ब्रह्मचर्य) के नियमों को पुनः ग्रहण करेगा।

—एक विद्‌यार्थी 'सरस्वती'

- सदाचार संसार की सभ्यता का मूल है। ब्रह्मचर्य सदाचार का बीज है। इसके अभाव में कोई जाति अधिक दिनों तक अपना अस्तित्व नहीं रख सकती। विलासिता वह राक्षसी है, जो उस चीज को निर्मूल करने में लगी रहती है।

—एक दार्शनिक विद्वान

- संसार में मनुष्य को अपना जीवन निष्पाप, व्यभिचार शून्य तथा उच्च सदाचार युक्त बनाने में ही वास्तविक सुख है।

—महात्मा सुकरात

- मेरा मत है कि मनुष्य-जाति में सुख-शांति को स्थापित रखने के लिए, पुरुष और स्त्री, दोनों को सावधानी तथा दृढ़तापूर्वक इस संयमशीलता का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार के आचरण से वे अपने उच्च उद्देश्य की सिद्धि करने में समर्थ होंगे।

—महात्मा टोल्सटोय

- जनेन्द्रिय, मस्तिष्क और पाकस्थली, इन तीनों में अतिघनिष्ठ संबंध है। मानो ये तीनों एक ही सूत्र में ग्रथित हैं। पहली एक के रुग्ण होने से बाद वाली दोनों भी रोग से नहीं बच सकती है।

—डॉक्टर जी. एम. वियर्ड

- वीर्य ही मनुष्य शरीर का जीवन है। इसके बिगड़ने से रक्त का नाश होता है और अन्त में सुधरना असम्भव हो जाता है। इन्द्रिय सम्बन्धी सुखों में आवश्यकता से अधिक लगने वाले ही भयंकर रोगों से घिरे रहते हैं।

—डॉक्टर पी. टी. हॉर्न

- ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ तप है। ऐसा निष्कलंक ब्रह्मचारी मनुष्य नहीं, साक्षात देवता है। अत्यंत प्रयत्नपूर्वक अपने वीर्य की रक्षा करने वाले ब्रह्मचारी के लिए संसार में क्या अप्राप्य है? वीर्य संवरण की शक्ति से कोई भी व्यक्ति मेरे समान बन जाएगा।

—शंकर भगवत्पाद

- शरीर से वीर्य स्राव होने से मृत्यु शीघ्र आती है। तथा उसके परिरक्षण से जीवन की रक्षा तथा आयु की वृद्धि होती है। इसमें संदेह नहीं है कि वीर्यपात से अकाल मृत्यु होती है। ऐसा जान कर योगी को सदा वीर्य का परिरक्षण तथा अतिनियमनिष्ठ ब्रह्मचर्यमय जीवन यापन करना चाहिए।

—शिव संहिता

- भोजन में सावधानी रखना तिगुना उपयोगी है, परन्तु मैथुन में संयम रखना चौगुना उपयोगी है। स्त्री की ओर कभी न देखना, यह संन्यासी के लिए एक नियम था और अब भी है।

—आत्रेय

*****

संदर्भ ग्रंथ सूची

- महाभारत
- श्री भक्तमाल
- मनु स्मृति
- योग वाशिष्ठ
- श्रीमद्भागवत महापुराण
- श्रीमद्भगवद्गीता
- श्री रामचरितमानस
- भक्त नारी
- भक्त चंद्रिका
- आरोग्यम्
- पतंजलि योग सूत्र
- घेरण्ड संहिता, महर्षि घेरण्ड
- हठयोगप्रदीपिका, स्वामी स्वात्माराम
- बोधिचर्य
- शिव संहिता
- अष्टांगयोगहृद्यम्
- चरक संहिता
- भावप्रकाश
- सुश्रुत संहिता
- सात्विक आहार
- ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और काम विकार पर विजय – ब्रह्माकुमार जगदिशचंद्र
- ब्रह्मचर्य साधना – स्वामी शिवानंद सरस्वती

- ब्रह्मचर्यामृत अर्थात् जीवन संदेश - स्वामी ओमानन्द सरस्वती
- मानसिक ब्रह्मचर्य अथवा कर्मयोग - शेठ फकिरचन्द कानोडिया
- स्वप्नदोष चिकित्सा - स्वामी ओमानन्द सरस्वती
- ब्रह्मचर्य ही जीवन है - स्वामी शिवानंद
- ब्रह्मचर्य - स्वस्थ एवं सुखमय साधन हेतु अत्यावश्यक
- ब्रह्मचर्य विज्ञान - पंडित जगन्नारायणदेव शर्मा
- पवित्रता , ब्रह्मचर्य और श्रीमत
- सत्संग और स्वाध्याय - स्वामी शिवानंद
- ब्रह्मचर्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता
- ब्रह्मचर्य - दर्शन - कविरत्न पंडित मुनि श्री अमरचन्द्र जी महाराज
- ब्रह्मचर्य व्रत - शंकरप्रसाद दीक्षित
- ब्रह्मचर्य संदेश - सत्यव्रत सिद्धांतालंकार
- ब्रह्मचर्य दर्शन - उपाध्याय अमर मुनि
- ब्रह्मचर्य की साधना - स्वामी ओमानंद सरस्वती
- ब्रह्मचर्यगौरव - स्वामी जगदीश्वरानंद
- ब्रह्मचर्य और आत्म संयम -
- जीवनाचार्य विज्ञान - गीता प्रेस
- जैन वाङ्मय में ब्रह्मचर्य - डॉ. मुनि श्री विनोद कुमार जी
- सुखी जीवन सत्य व्रत अग्निवेश - स्वामी ओम आनंद जी
- जीवनचर्या अंक - गीता प्रेस
- गृहस्थ जीवन एक तपोवन - पंडित श्रीराम शर्मा
- जीवन देवता की साधना आराधना - पंडित श्रीराम शर्मा
- आध्यात्मिक काम विज्ञान - पंडित श्रीराम शर्मा
- श्री संन्यास गीता 1925 - भारत धर्म सिंडिकेट काशी

- मानसिक ब्रह्मचर्य अथवा कर्मयोग
- Brahmacharya - Celibacy - The true path to God Realization
- PRACTICE OF BRAHMACHARYA by Sri Swami Sivananda
- Brahmacharya in Krishna Consciousness
- Necessity for Sannyasa - Sri Swami Sivananda Saraswati
- Samnyasa Upanishads
- Anthology of The Sanyas Upanishads
- Brahmacharya - Mahatma Gandhi
- Āhāra - Ancient secret of diet in a ayurveda & yoga
- Bhojanakutūhalam - Sūri Raghunātha

"ब्रह्मचर्य" भारतीय सनातन संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का अमूल्य रत्न है। 'ब्रह्मचर्य' का शाब्दिक अर्थ है – 'ब्रह्म में विचरण करना अर्थात् परमेश्वर का चिंतन करना और अपनी जीवन-ऊर्जा, वीर्य-शक्ति का संरक्षण करना'।

आज के भौतिकवादी युग में स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि ब्रह्मचर्य का पालन क्यों आवश्यक है? इसका उत्तर स्पष्ट है – ब्रह्मचर्य एक दिव्य महाव्रत है, जिसकी साधना से साधारण मनुष्य भी महापुरुष बन सकता है। इस व्रत का पालन करने से आत्मा की आंतरिक शक्तियाँ जागृत होती हैं, जिससे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र – बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक में असीम शक्ति, अद्भुत संतुलन, पवित्रता व दिव्यता का प्रसार होता है।

यह पुस्तक केवल सैद्धांतिक उपदेशों का संग्रहमात्र नहीं है बल्कि यह तो एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका है, जो इस जटिल पथ पर चलने वाले साधकों, विशेषकर हस्तमैथुन, स्वप्नदोष जैसी समस्याओं से जूझ रहे युवाओं के लिए एक प्रकाश-स्तंभ का कार्य करती है। इसमें केवल समस्याएँ ही नहीं गिनाई गई हैं, अपितु उनका सरल, वैज्ञानिक और व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

पूज्य महाराजश्री के अनुभव-सिंचित उपदेशों और अमूल्य जीवन-सूत्रों से सुसज्जित यह ग्रन्थरत्न पाठकों को आत्मनियंत्रण, नियमित साधना और अन्तःशक्ति का वास्तविक महत्त्व समझाता है। निःसंदेह, यह पुस्तक आपके जीवन में एक नयी दिशा, अदम्य दृढ़ता और आंतरिक प्रकाश का संचार करने में पूर्णतः सक्षम है।

Bhajan Marg

प्रकाशक

श्रीहित राधा केलि कुंज ट्रस्ट

वाराह घाट, परिक्रम मार्ग

वृंदावन - 281121, जिला - मथुरा (उ.प्र.)

Website: www.radhakelikunj.com

Email: publications@radhakelikunj.com

ISBN 978-81-980039-1-1

9 788198 003911

₹ 299/-


MR.JASVANT
SHARMA